हिन्दी-साहित्य-परिचय

सम्पादक—

हरिशङ्कर शर्मा



लेखक—

दयाशङ्कर शर्मा एम. ए.

कृपाशङ्कर शर्मा बी. ए.

प्रकाशक—

हरप्रसाद भार्गव

एज्यूकेशनल पब्लिशर

कचहरीघाट—आगरा ।

मूल्य २॥)

मुद्रक—

बालकृष्ण बंसल

बंसल प्रेस

छीपीटोला—आगरा ।

दो शब्द

महाकवि गेटे ने कहा है Literature is the humanisation of the whole world अर्थात् साहित्य अखिल विश्व का मानवीकरण है। बुद्धि की अपेक्षा साहित्य का सम्बन्ध अनुभूति और कल्पना से अधिक है। सृष्टि के जिस भाग में भी मानव का वास है, उसमें साहित्य की पहुँच अवश्य है। हृदय से निकली हुई झंकार अन्य हृदयों को भी झंकृत कर हर्ष की हिलोर उठा देती है। भाषा तथा भौगोलिक. व्यवधानों के कारण विभिन्न प्रतीत होती हुई मानवता को साहित्य एक सूत्र में बाँध देता है। सच्चा साहित्य देश और काल की सीमा से परे होता है। वह किसी राष्ट्र विशेष की वैय-क्तिक सम्पत्ति नहीं; वह तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श अपनाकर, सूर्य और चन्द्र के समान 'बहुजन-हित य, बहुजन-सुखाय' की उदार भावना द्वारा, सबको समान रूप से अपना अमर कोष प्रदान करता है। क्योंकि साहित्य मानव-प्रकृति की जन्मजात आदिम वासनाओं और भावनाओं को लेकर चलता है, जो सर्वत्र समान रूप से एक-सी ही पाई जाती हैं। साहित्य जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है और कला जीवन की प्रत्येक वस्तु को सत्य और सौन्दर्य के उपकरणों से सजाकर—सँवारकर उपस्थित करती है। इसीलिये साहित्य के प्रति हमारा आकर्षण स्वाभाविक है।

साहित्य के इतिहास का अध्ययन हम मानव-प्रकृति को अधिक स्पष्ट रूप में जानने के लिए करते हैं। क्योंकि प्रत्येक साहित्यिक कृति के साथ एक विशिष्ट व्यक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, और वह व्यक्ति एक राष्ट्र की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है, तथा राष्ट्र का सम्बन्ध उन प्राकृ-तिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से होता है जिनका प्रभाव साहित्यकार की कृति पर सहज-स्वाभाविक रूप से अनजाने पड़ जाता है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास भारतवर्ष के उत्कृष्ट दिलों और दिमाग़ों का निचोड़ है। हमारे साहित्य-मनीषियों की अनुभूति और उनकी चिन्ता, किसी युग-विशेष में किस प्रकार की थी, इसका उत्तर हमारे साहित्य का इतिहास देता है। उन्होंने जो कुछ सोचा, समझा और अनुभव किया, उसे भरसक सत्य, शिव और सुन्दर की कसौटी पर कस कर—कंचन बनाकर प्रदान किया। प्रस्तुत पुस्तक उस प्रभापूर्ण कंचन के परख-परिचय का एक अल्प प्रयास-मात्र है। इस 'परिचय' के लिखने में हमने जिन पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं से एक भी शब्द लिया है, उनके हम अत्यन्त आभारी हैं। ऐसा किये विना यह कार्य सम्पन्न होना कठिन था। पुस्तक में जो त्रुटियाँ रह गई हैं, उनके लिए हम बड़े विनीत भाव से क्षमा प्रार्थी हैं।

शङ्कर-सदन
आगरा
गङ्गादशहरा
२००३ वि०

दयाशङ्कर शर्मा
कृपाशङ्कर शर्मा

निवेदन

चि० दयाशङ्कर शर्मा और चि० कृपाशङ्कर शर्मा ने यह 'परिचय' लिखा है। मैंने सम्पादक के नाते इसे देखा है। इतनी छोटी पुस्तिका 'इतिहास' तो कही ही नहीं जा सकती। हाँ, उसके द्वारा पाठकों को हिन्दी-साहित्य का कुछ परिचय अवश्य मिलेगा—संक्षिप्त और सार रूप में। हिन्दी में कई इतिहास—बृहद् इतिहास लिखे जा चुके हैं, फिर भी एक ऐसे इतिहास की अभी बड़ी आवश्यकता है, जिसमें साहित्यकारों के साहित्यिक जीवन की इतनी अधिक चर्चा हो और इतनी ज़्यादा सामग्री दी जाय कि पाठक स्वयं ही उनके सम्बन्ध में अपनी स्वतंत्र सम्मति बना सकें। साथ ही यह इतिहास निष्पक्ष और स्वतंत्र भावना से पूर्ण हो। इस प्रकार के इतिहास-लेखन का उद्देश्य साहित्यकारों की कीर्ति-रक्षा होना चाहिए। साहित्यकार सरस्वती के अमर पुत्र हैं, उनकी सत्कीर्ति को अनन्तकाल तक सुरक्षित रखना साहित्यकार का ही काम है। इतिहास भी साहित्य है। हमारी बड़ी अभिलाषा है कि हिन्दी में शीघ्र ही ऐसे इतिहास का निर्माण किया जाय, जिसमें छोटे-बड़े सभी साहित्यिकों का विस्तृत उल्लेख हो। अस्तु, आशा है, प्रस्तुत 'परिचय' हिन्दी-साहित्य से परिचय कराने और उसकी ओर रुचि उत्पन्न करने में अवश्य ही कुछ न कुछ सहायक सिद्ध होगा।

आगरा
गुरुपूर्णिमा
२००३ वि०

हरिशङ्कर शर्मा

विषय-सूची

हिन्दी-साहित्य-परिचय

—:०:—

डिंगल काव्य की पृष्ठभूमि

निशा की गहन गुहा से निकलती हुई उषा के समान सहसा ही हिन्दी-कविता का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। हिन्दी-कविता का नैश काल अनेकों तारक-तारिकाओं से खचित था। जिस प्रकार अगणित नक्षत्र अपना संचित क्षीण प्रकाश उषा को प्रदान कर जाते हैं, ठीक उसी प्रकार सिद्ध, नाथपंथी तथा जैन कवियों ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी के प्रथम कवि की काव्य-भाषा का केन्द्रीकरण करने में सहायता दी। चन्द शैशव कालीन हिन्दी-काव्य-सौर मण्डल के अध्यक्ष हैं। इनसे पूर्व हिन्दी का कोई सुगठित परिमार्जित रूप न था। भाषा सदा भ्रमणशील रही है। अपनी यात्रा में दूरुह से सुगम्य की ओर चलती हुई यह अपना परिधान बदलती रही है। हिम-प्रदेश का यात्री जिस प्रकार समतल भूमि की ओर आते-आते अपना लबादा हलका कर लेता है, भाषा भी उसी भाँति लोक-स्तर तक पहुँचते-पहुँचते बोझ हलका कर डालती है। कलाकारों और देवदूतों को अपना शुभ सन्देश जनता तक पहुँचाने के लिए लोक-भाषा को अपनाना पड़ता है। तभी उनकी विमल वाणी असंख्य हृदयों को स्पर्श करने की क्षमता प्राप्त कर पाती है। संस्कृत के लोक-भाषा न होने के कारण ही महात्मा बुद्ध ने अपने अमर उपदेश पाली में दिए थे।

वेदकालीन भाषा का संशोधित स्वरूप संस्कृत में स्थिर हुआ, किन्तु जन-साधारण की भाषा प्रगति-गामिनी होकर पाली में परिवर्त्तित हो गई। पाली प्राचीन प्राकृत का उन्नत रूप था। पाली की परिपक्वता पर लोक-भाषा (प्राकृत) फिर आगे चली और तीन धाराओं में प्रवाहित होने लगी—

प्राचीन, मध्यकालीन और उत्तरकालीन। यह साहित्यिक प्राकृत चार मुख्य भागों में विभाजित होगई—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्द्ध-मागधी। इन प्राकृतों में भी जब गंभीर साहित्य का सर्जन होना प्रारंभ होगया, तथा व्याकरण की शृंखलाओं में ये कस दी गईं तब लोक-भाषा की विभिन्न धाराएँ, जो स्वाभाविक रूप से अग्रसर हो रही थी, 'अपभ्रंश' कहलाने लगीं। अपभ्रंश के तीन प्रमुख रूप थे—नागर, ब्राचड और उपनागर। अपभ्रंशों में नागर अपभ्रंश अधिक महत्त्वपूर्ण थी। सुप्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र ने नागर अपभ्रंश को अपनाकर इसकी मान्यता बढ़ाई। नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश ने प्रान्तान्तर के कारण अनेक कलेवर बदले किन्तु काव्य-क्षेत्र में इसके दो रूप निर्धारित हुए—डिंगल और पिंगल। राजस्थान और व्रज की साहित्यिक भाषा का नामकरण क्रमशः डिंगल और पिंगल हुआ। यहीं से हिन्दी का आविर्भाव हुआ। इतिहासकारों ने इसका जन्म विक्रम-संवत् ७०० माना है।

अपभ्रंश साहित्य

(क) सिद्ध-कृत (सं० ७००—१२५७)

बौद्ध धर्म का विकृत रूप वज्रयान संप्रदाय के नाम से भारत के पूर्व प्रदेशों में कालान्तर से प्रचलित था। ये लोग तंत्र-मंत्र, जादू-टोना इत्यादि से जनता पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए थे। विहार से आसाम तक इनका बोल बाला था। जन-साधारण में इन वज्रयानी तांत्रिकों के प्रति असीम श्रद्धा थी। अंधविश्वास के कारण लोग इन्हें अलौकिक शक्तियों से संपन्न समझते थे। वज्रयान में 'महासुखवाद' के प्रवर्त्तन से वामाचार का प्रचलन अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। इससे पूर्व संभोग को ब्रह्मानन्द सुख का शतांश बताया गया था, किन्तु इन भ्रष्ट वाममार्गियों ने निर्वाण-सुख और सहवास-सुख में कोई अन्तर ही न रखा। अतएव धर्म के नाम पर व्यभिचार के अड्डे जगह-जगह स्थापित हो गए। मद्यपान और सहवास धर्म-साधन के मुख्य अंग बन गए। महामुद्रा का प्रतीक नारी को

मानकर ये सिद्धि-प्राप्ति के लिए स्त्री-सेवन का प्रचार करने लगे। ये सिद्ध कहलाते थे। संख्या में ये सिद्ध चौरासी माने गए हैं। नालन्दा और विक्रम-शिला इन सिद्धों के विद्या-केन्द्र थे। हिन्दी-कविता का सनातन स्वरूप इन्हीं वज्रयानी सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। धर्म-प्रचारार्थ ये देश-भाषा का ही प्रयोग करते थे जिससे जन-साधारण तक इनकी पहुँच हो सके। मागधी अपभ्रंश से निकली हुई इस भाषा का नाम मगही है और 'सरहपाद' या 'सरोजवज्र' इसके सर्व प्रथम कवि मानेगए हैं। सिद्धों में ये सबसे प्राचीन हैं। कुछ प्रमुख सिद्धों के नाम और उनकी काव्य-कृतियों के उदाहरण निम्नप्रकार हैं:—

१—सरहपाद (विक्रम संवत् ६६०)

जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाहिं पवेस।
तहि बट चित्त बिसाय करु, सरहे कहिय उवेस॥

२—लूहिया (संवत् ८३० के समीप)

काआ तरुवर पंच बिड़ाल।
चंचल चीए पइठो काल॥
दिअ करिअ महासुह परिमाण।
लूइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥

३—बिरूपा (सं० ६०० के निकट)

सहजे थिर करि वारुणी साध।
जे अजरामर होइ दिट काँध॥
दशमि दुआरत चिह्न देखइआ।
आइल गराहक अपणे बहिआ॥

४—कण्हपा (सं० ६०० के पश्चात्)

एक्कण किज्जइ मंत्रण तंत।
णिअ घरिणी लइ केलि करंत॥
णिअ घरिणी जावण मज्जइ।
ताव कि पंच वर्ण बिहरज्जइ॥

(ख) नाथपंथ—कृत

नाथपंथ का प्रादुर्भाव नेपाल की तराई में नवीं और दसवीं शताब्दियों में हुआ। शैव तथा बौद्ध धर्म की साधना-प्रणाली के योग से नाथपंथ की धार्मिक नीति निर्धारित हुई। बौद्धों की वज्रयान शाखा के अन्तर्गत सिद्धों का विकास हुआ था। संवत् १२५७ के पश्चात् भी सिद्धों की परंपरा बहुत काल तक चलती रही और इसी परंपरा का आगे चल कर नाथपंथ नामकरण हुआ।

नाथपंथ के आदि प्रवर्त्तक आदिनाथजी माने जाते हैं। चौरासी सिद्धों में आदिनाथ या 'जलंधरपा' का भी नाम है। सर्व-प्रथम इन्होंने ही सिद्ध-संप्रदाय के भ्रष्टाचार से क्षुब्ध होकर नाथपंथ की अलग परंपरा चलाई और ये प्रचारार्थ पंजाब चले गए। मत्स्येन्द्र (मछंदर नाथ) इन्हीं के शिष्य थे। सिद्धों की एक पुस्तक (रत्नाकर जोपम कथा) में मत्स्येन्द्रनाथ का कुछ विवरण पाया जाता है। उसके अनुसार ये कामरूप के मछवाहे थे। मत्स्येन्द्रनाथ के सुप्रसिद्ध शिष्य गोरखनाथ हुए जिन्होंने नाथपंथ को विकसित कर धार्मिक क्षेत्र में इसकी व्यापक प्रतिष्ठा स्थापित की। नाथपंथ के प्रसार और स्थापन का प्रमुख श्रेय इन्हीं गुरु गोरखनाथ को दिया जाता है। इनके संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि अपने क्रिया-कौशल द्वारा इन्होंने एक बार बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होने दी। राजस्थानी जन-श्रुति के अनुसार बाल्यकाल में इन्होंने एक विषैले भुजंग का भक्षण कर लिया था अतः ये 'जहर पीर' भी कहे जाते हैं।

पतंजलि के दार्शनिक विचारों का अध्ययन कर गोरखनाथ ने एकेश्वरवाद को अपनाया और अपने हठयोग का प्रचार किया। वज्रयानी सिद्धों का प्रभाव-क्षेत्र पूर्वीय प्रदेश था। गोरखनाथ ने भारत के पश्चिमी भागों में नाथपंथ का प्रसार किया तथा राजपूताना और पंजाब में इनका विशेष मान हुआ।

गोरखनाथ का काल-निर्णय पूर्ण प्रामाणिकता से निश्चित नहीं हो पाया। राहुल सांकृत्यायनजी के अनुसार इनका समय विक्रम की दसवीं

शताब्दी ठहरता है। हिन्दी-साहित्य के प्रायः सभी इतिहासों में गोरख का समय सं० १४०७ स्वीकार किया गया है, किन्तु इनके समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

नाथपंथ के एकेश्वरवाद ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को इस पंथ का अनुयायी होने का समान रूप से अवसर दिया। ईश्वर-प्राप्ति के बाह्य आडंबरों की उपेक्षा कर और अन्तः-साधना की ओर ही विशेष ध्यान देने के कारण, मुसलमान भी—जो मूर्त्तिपूजा और बहुदेवोपासना के विरुद्ध थे, सरलता से इस संप्रदाय को अपना सके। आगे चलकर कबीर आदि निर्गुणिया सन्तों पर भी नाथपंथ का स्पष्ट प्रभाव पड़ा, जिस पर आगे विचार किया जायगा।

विक्रम-संवत् १४०० के लगभग गद्य और पद्य में लिखी गई गोरख-पंथ की निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं—

१—गोरख-गणेश-गोष्ठी।
२—महादेव-गोरख-संवाद।
३—गोरखनाथजी की सत्रह कला।
४—गोरख-बोध।
५—दत्त-गोरख-संवाद।
६—योगेश्वरी साखी।
७—नरवइ बोध।
८—विराट् पुराण।
९—गोरख-सार।
१०—गोरखनाथ की बानी।

गद्य का उदाहरण—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप है शरीर जिन्हि को॥ जिन्हीं के नित्य गायैं तै शरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष सो मछन्दरनाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसे वे मछन्दरनाथ॥ आत्मा ज्योति निश्चल

है अन्तरकरन जिनि कौ अरु मूलद्वार तैं छइ चक्र जिनि नीकी तरह जानैं ॥ अरु जुग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिनि गायौ । सुगंध को समुद्र तिनि कौ मेरी दण्डवत् ॥ स्वामी तुमे तो सतगुरु अम्है तो सिष सब्द एक पूछिबा दया करि कहेबा मनि न करिबा रोस ।"

× × × ×

पद्य का उदाहरण—

स्वामी तुम्हइ गुर गोसाईं ।
अम्हे जो सिष सबद एक बूझिबा ।
निरारंबे चेला कूण बिधि रहै ।
सतगुरु होइ स पुछ्या कहै ।
अबधू रहिया हाटे बाटे रूष बिरष की छाया ।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया ॥

(ग) जैन-कृति (सं० १०००–१२००)

हिन्दी-साहित्य के निर्माण-कार्य में जैन मतावलम्बियों के प्रयत्न स्मरणीय हैं । जैन-धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण अपभ्रंश में हुआ । अपभ्रंश हिन्दी का उद्गम स्रोत है । अतः हिन्दी के अर्वाचीन रूप का दिग्दर्शन अप्रभ्रंश कालीन जैन-साहित्य से होता है । जैन-धर्म का विभाजन दो सम्प्रदायों में होगया, जिनके नाम क्रमशः दिगम्बर और श्वेताम्बर हैं । सम्प्रदायों के अनुसार जैन-साहित्य भी दो भागों में बँट गया । इनमें से प्रथम दिगम्बर-सम्प्रदाय ने हिन्दी को विशिष्ट निधि प्रदान की । जैन-साहित्य के वर्ण्य विषयों में अधिकतर तीर्थङ्करों की जीवनियाँ, विश्व-वर्णन, श्रावकों का चित्रण और सांसारिक वर्णन ही हैं । जातक-कथाओं की भाँति जैन-साहित्य में भी गूढ़ नीरस सिद्धान्तों का आकर्षक कथाओं द्वारा प्रतिपादन हुआ । ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी जीवनी के ढंग पर किया गया । तत्कालीन साहित्य में नागर अपभ्रंश से प्रस्फुटित होती हुई हिन्दी का प्रयोग ही प्रचुरता से मिलता है । चरित्र,

रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, कवित्त, छन्द, दोहा आदि विभिन्न छन्दों में काव्य-रचना की गई, किन्तु इन काव्यों में दोहे का प्रयोग बाहुल्य से मिलता है।

जैन कवियों की रचनाओं में काव्य-छटा की झलक नहीं दिखाई देती। कवियों में अधिकतर श्रावक थे जिनका मुख्य उद्देश्य धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण करना मात्र था। मौलिक कृतियों का प्रायः अभाव-सा है। समस्त कविताएँ शान्त रस की एकरसता में डूबी हुई हैं।

प्रमुख जैन आचार्यों की नामावली और उनकी प्राथमिक रचनाओं का परिचय नीचे दिया जाता है—

१—देवसेन

ये 'दब्ब सहाव पयास' (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) के रचयिता थे। यह ग्रंथ सर्व-प्रथम दोहों में लिखा गया था, किन्तु बाद में प्राकृत में गाथा-बद्ध कर दिया गया।

२—धवल

इन्होंने १८००० श्लोकों में हरिवंश पुराण लिखा तथा जैन-धर्म के कुछ लब्धप्रतिष्ठ चरित्रों का चित्रण भी किया।

३—पुष्पदन्त

इन्होंने तीर्थङ्करों की जीवनियाँ लिखकर महापुराण ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें तेरह हज़ार श्लोकों का एक अच्छा खासा जमघट है। 'नाग कुमार चरित' के भी रचयिता यही हैं।

४—धनपाल

इन्होंने 'भविष्य बत्त चरित्र' लिखा था।

५—चन्द्रमुनि

इन की रचना में काव्य-सौन्दर्य की यथेष्ट झलक मिलती है। इन्होंने जैन धर्म सम्बन्धी कथाएँ रोचक ढंग से लिखी हैं।

६—जिनवल्लभ सूरि

संस्कृत में इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, किन्तु हिन्दी में इनका 'वृद्धनवकार' नामक एक ही ग्रन्थ मिलता है।

७—योगचन्द्र मुनि

इनकी भाषा में हिन्दी का काफ़ी परिष्कृत रूप मिलता है। दोहे लिखने में ये विशेष प्रवीण थे। 'योगसार' इनके ग्रन्थ का नाम है।

८—हेमचन्द्र

उपर्युक्त जैन मुनियों की नामावली में इनका प्रमुख स्थान है। गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह पर इनका बहुत प्रभाव था। इन्होंने 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' नामक एक बृहद् व्याकरण-ग्रंथ लिखा था।

९—सोमप्रभु सूरि

इनके लिखे हुए संस्कृत-प्राकृतमय काव्य-ग्रंथ का नाम "कुमारपाल प्रतिबोध" है। इसमें गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १२४१ है।

१०—मेरुतुंग

इन्होंने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक एक ग्रन्थ रचा जिसमें प्राचीन राजाओं और ऐतिहासिक चरित्रों पर आख्यान लिखे गये थे। आख्यानों में राजा मुंज और उसके भतीजे भोज के कहे हुए दोहों का भी सन्निवेश कर दिया गया है। मेरुतुंग के निम्न लिखित दोहे में आगामी चारण युग के वीर-काव्य की स्पष्ट ध्वनि सुनाई देती है—

एऊ जम्मु नग्गुहं गिउ भड सिर खग्गु न भग्गु।
तिक्खाँ तुरिय न माणियाँ गोरी गली न लग्गु॥

यह जीवन व्यर्थ ही बीत गया! भटों के शीश पर खड्ग भङ्ग नहीं हुआ। न तेज़ घोड़े ही दौड़ाए और न गोरी ही गले से लगी।

———०———

डिंगल में वीर-पूजा

चारण-काल

धर्म की समृद्धि के लिए जब तक उसके देवता के मन्दिर में, जीवन-वर्त्तिका प्रज्वलित कर, आरती नहीं उतारी जाती, तब तक अधर्म का घनीभूत अन्धकार घिरा रहता है। डिंगल काव्य-धारा में क्षात्र धर्म एक सुलगता सन्देश है। धर्म के अस्तित्व के लिए, उसके स्थायित्व की चेष्टा में कटिबद्ध वीर क्षत्रिय नृपों की करवाल सौदामिनी की भाँति साहित्याकाश में सदा चमकती रहेगी।

चारण-काल की राजनीतिक परिस्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि देश की राजनीति का संचालन विभिन्न वर्ण के क्षत्रिय राजा कर रहे थे। पारस्परिक मनोमालिन्य ने भ्रातृत्व में कटुता का विनाशकारी बीज बो रखा था। अतः गृह-कलह के कारण सुदृढ़ राज्यों की शक्तियों का क्षीण होना भी स्वाभाविक था।

दूसरी ओर मुसलमानी आक्रमणों का भयानक आतंक छाया था। भारतवर्ष की दशा अत्यन्त अस्त-व्यस्त थी। सब ओर से अशान्ति-पूर्ण रण-चीत्कार वातावरण में समा गया था। ऐसी दशा में राजस्थान के चारण और भाटों की लेखनी भी शान्त न रह सकी। स्वदेश-रक्षा करने और जीवन-मर्य्यादा को आघातों से सुरक्षित रखने के लिए कवियों ने डिंगल काव्य में वीरता का सन्देश अङ्कित कर क्षत्रियों को प्रचुर प्रोत्साहन दिया। राजाश्रयी कवि अपने राजाओं के प्रताप और शौर्य-पूर्ण गौरव का वर्णन अनुपम उक्तियों से करने लगे।

आधुनिक हिन्दी और डिंगल दोनों का उद्गम अपभ्रंश से है। व्याकरण की दृष्टि से दोनों में अन्तर आ जाने का कारण यह है कि हिन्दी बोल-चाल की भाषा है। निरन्तर व्यवहार में आने के कारण इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। डिंगल एक कालविशेष की साहित्यिक

भाषा होने के नाते स्थिर ही रह गई। किन्तु उस काल के डिंगल-काव्यकारों की गणना हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चारण-काल के काव्य-रचयिताओं में की जाती है।

'डिंगल' शब्द के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। महा-महोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री ने इस शब्द की उत्पत्ति 'डगल' से बताई है। प्रारम्भ में इसको 'डगल' (अनगढ़ पत्थर—अपरिष्कृत स्वरूप) कहते थे। किन्तु पिंगल शब्द से तुक मिलाने के लिए बाद में 'डिंगल' बना दिया गया। डा० टेसीटरी के मतानुसार डिंगल का 'डगल' से कोई सम्बन्ध नहीं। राजस्थानी चारण पण्डितों के अनुसार किसी विचित्र और अद्भुत शब्द-रूपावली से ही इसका तात्पर्य है। डिंगल एक विशेषण रूप है; जिसका अर्थ है 'गड़बड़' (अनियमित) अर्थात् जो ऊँचे कवित्व के अनुसार नहीं, संभवतः जो 'असंस्कृत' है। तीसरा मत बिल्कुल नई बात कहता है। वह यह कि डिंगल शब्द की उत्पत्ति 'डिम् (डम् ?) गल' से हुई है। डिम् (डम् ?) का तात्पर्य डमरू-ध्वनि से है और गल का प्रयोजन गले से है। गले से डमरू की ध्वनि के समान गूँज होना। प्रल-यंकर शंकर के डमरू बाजे से वीर और रौद्र रस का आविर्भाव होता है। अतएव डमरू की ध्वनि के समान ध्वनित होने वाली कविता जो वीरों को उत्साहित कर वीर-रस संचार करे वही डिंगल कविता बनी। डिंगल-काव्य पिंगल से प्राचीन माना जाता है। जब राजस्थान पर मुसल-मानों के आक्रमण होने लगे तो वीर-रसपूर्ण कविताओं द्वारा सैनिकों को साहस और प्रोत्साहन देने की आवश्यकता अनुभव हुई। तभी से डिंगल-काव्य में वीरों की कीर्ति का बखान करते हुए वीर-पूजा का युग प्रारम्भ हुआ। यही समय 'चारण-काल' अथवा 'वीर-गाथा-काल' नाम से विख्यात है।

डिंगल-काव्यधारा—हिन्दी का शैशव—

हिन्दी-साहित्य के शैशव काल में सात कवियों का उल्लेख चला आता है, किन्तु इनमें से एक भी कवि की कोई कृति प्राप्त नहीं हो पाई

है। प्रथम कवि पुंड या पुष्य कहलाता है। संवत् ७७० इसका काल माना गया है।

चित्तौराधिपति रावल खुमान द्वितीय की राजसभा में "दलपतिविजय" नामक कवि का उल्लेख आता है। इसने रावल खुमान का जीवन-वृत्तान्त 'खुमान रासो' में दिया है। किन्तु यह प्रति अपूर्ण है और वास्तविक रूप में पाई भी नहीं जाती। इसका समय ८८७ संवत् माना गया है। विक्रम की १७ वीं शताब्दी के महाराणा प्रताप तक का वर्णन इसमें मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ८०० वर्ष तक नयी-नयी लेखनियों द्वारा रंग बदलते रहने से 'खुमान रासो' वास्तविक रूप में नहीं रह पाया। इसके पश्चात् मसूद, कुतुबअली आदि ३–४ कवियों के नाममात्र आते हैं। रचनाएँ किसी की नहीं मिलीं।

आगे भुवाल कवि का उल्लेख है। इसने दोहों-चौपाइयों में भगवद्-गीता का अनुवाद किया था। भुवाल कवि का समय दसवीं शताब्दी लिखा चला आता है। किन्तु १७ वीं शताब्दी का ही इन्हें मानना चाहिए। इनकी भाषा १० वीं शताब्दी की भाषा से कोई समानता नहीं रखती। इसी प्रकार मोहनलालद्विज का काल भी १८ वीं शताब्दी होना चाहिये। द्विज ने श्रीकृष्ण के विवाह की ज्योनार में परोसी हुई पत्तल की भिन्न-भिन्न भोजन-सामग्रियों का वर्णन किया है।

चारण-काल की काव्य-पुस्तकें दो पद्धतियों में मिलती हैं। एक, प्रबन्ध-काव्य की साहित्यक पद्धति, और दूसरी वीर-गीतों के रूप में। प्रथम प्रकार का रूप 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है और वीर-गीतों के रूप में सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'बीसलदेव रासो' मिलता है। इस काल के अनिश्चित कवियों के पश्चात् जो निश्चित कवि हिन्दी के उषःकाल में आँख खोलता है वह 'नरपतिनाल्ह' है। इसी ने 'बीसलदेव रासो' की रचना की। सैकड़ों वर्षों से जनता में गेय होने के कारण भिन्न-भिन्न परिवर्त्तनों में होकर इस 'रासो' को गुज़रना पड़ा। नये हेर-फेर होते हुए भी इसकी प्राचीनता पूर्णतः नष्ट नहीं हो पायी। इसमें अपभ्रंश का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। नरपति अपनी तिथि के विषय में इस प्रकार लिखता है—

बारहसौ बरहोत्तरा (बहोत्तरा?) मँझार।
माघ सुदी नवमी बुधवार ॥

ऐतिहासिकों ने इससे भिन्न-भिन्न अनुमान लगाए हैं। किन्तु पंडित प्रवर ओझाजी के मतानुसार 'बीसलदेव रासो' का रचना-काल संवत् १०३० से १०५६ तक माना गया है। बीकानेर के श्री गजराज ओझा बी० ए० को जो प्रति प्राप्ति हुई है, उसमें 'संवत् सौ बरहोत्तरा....' के स्थान पर—

संवत् सहस विहत्तर जाणि।
नाल्ह कवीसर रसीय बखाणि ॥

मिलता है। इस तिथि के अनुसार भी कवि, नाल्ह बीसलदेव का सम-कालीन सिद्ध हो जाता है। अतएव १०७३ ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक मान्य है।

चारण-काल के ऐसे ग्रन्थ अधिकतर रासो कहलाते हैं। कुछ लोग 'रहस्य' से इसका प्रयोजन समझते हैं। किन्तु 'बीसलदेव रासो' में काव्य के अर्थ में 'रसायण' का प्रयोग बहुत बार आया है। 'रसायण' से 'रासो' बन जाने में ही क्या लगता है। २००० चरणों से इस काव्य का कलेवर सुसज्जित है। बीसलदेव का विवाह, रणयात्रा, चित्तौर-गमन आदि विषयों को लेकर चार खण्डों में 'रासो' की रचना समाप्त होती है। वीर-गीतों का रूप होते हुए भी, प्रबन्धात्मकता का सिलसिला टूटने नहीं पाया। शृङ्गार का भी वर्णन है। अध्ययन से पता चलता है कि जन-साधारण की भाषा में भी रचना होने लगी थी। राजनीति और साहित्य का अनूठा गठबन्धन इस काल में हो चुका था।

———०———

महाकवि चंदबरदाई

महाराजा पृथ्वीराज की राज-सभा में, राज-कवि के नाते चंदबरदाई की अगाध प्रतिष्ठा थी। ऐसा भी कथन है कि इन दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ। यों तो चंदबरदाई की जन्म-तिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतिहासकार, पृथ्वीराज का जन्म दिवस वि० सं० १२०५ में मानते हैं, अतएव चंदबरदाई का जन्म-काल भी यही माना जा सकता है।

चंदबरदाई के पिता का नाम राववेण था और गुरू का गुरूप्रसाद। ये जाति के भाट थे। अजमेर के चौहान-वंश में इनके पूर्व पुरुषों की यजमानी थी। लाहौर में जन्म पाकर, पालन-पोषण के लिए चंद अजमेर ले आए गए। यहाँ पृथ्वीराज और चंद का पारस्परिक सम्पर्क घनिष्ठ मित्रता में परिवर्त्तित हो गया। वयस्क होने पर, अपनी योग्यतानुसार चंद ने पृथ्वीराज की राज-सभा में राजकवि का स्थान पाया। जितनी निपुणतापूर्वक कविता करने में ये विख्यात थे उतने ही युद्धविद्या और राजनीति की चालों में सिद्धहस्त थे। परिणामतः इन्हें सामन्त का पद प्राप्त हुआ और फिर प्रधान मंत्री भी नियुक्त किये गए।

चंदबरदाई ने दो विवाह किये थे। दोनों स्त्रियों से दस पुत्र और एक कन्या कुल ग्यारह सन्तान उत्पन्न हुईं। इनमें जल्हण सबसे योग्य और प्रतिभा-सम्पन्न पुत्र था। पृथ्वीराज के काल में चंदबरदाई की लोक-प्रियता पूर्ण रूप से वृद्धि पा चुकी थी। महाराज के वास्तविक अनुज की भाँति उनका सब जगह सम्मान था।

'पृथ्वीराज रासो'

महाकवि चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' नामक, ढाई हज़ार पृष्ठों के विशाल ग्रन्थ की रचना की थी। महाराज पृथ्वीराज का सम्पूर्ण जीवनचरित्र इसमें वर्णित है। प्रश्नोत्तर-पद्धति पर रासो की रचना हुई है। गौरी (चन्द की पत्नी) प्रश्न करती है, चन्द उसका उत्तर देता है। गौरी शंका

करती है, चन्द उसका समाधान करता है। इस प्रकार यह काव्य-ग्रन्थ ६६ सर्गों में समाप्त होता है।

पृथ्वीराज रासो में छप्पय के प्रयोग की बहुलता है। दोहा, तोमर, त्रोटक, गाहा आदि न्यूनता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। इस महाकाव्य की रचना का क्षेत्र अति व्यापक होने के कारण भिन्न-भिन्न भाषाओं के आधार द्वारा उसे पूरा किया गया है। कन्नोजी, शौरसेनी, मागधी, डिंगल, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश इत्यादि अनेक भाषाओं का विशाल शब्द-भांडार रासो में उपलब्ध है। इस समय तक मुसलमान भारत के भिन्न-भिन्न भागों में डेरे डाल चुके थे, अतः रासो में अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द भी स्वाभाविक रूप से आ गए हैं। प्रक्षिप्त अंशों के जोड़ की भरमार के कारण रासो की प्राचीनता नष्ट होती चली गई है। किन्तु जहाँ चन्द की अपनी भाषा है, अपना मौलिक वर्णन है वहाँ चमत्कार ही निराला है।

रासो में वीर रस प्रमुख है। शेष रस काव्य-सौन्दर्य के निमित्त अपनाए गए हैं। इस ग्रन्थ का महत्त्व, महाकाव्य की दृष्टि से अत्यन्त गौरव-पूर्ण है। कवि की प्रतिभा का ओजस्वितापूर्ण विकास, चरित्रों का स्वाभाविक चित्रण, वातावरण का शुद्ध वर्णन आदि सब सजीवता के साथ अंकित हैं। पृथ्वीराज के केलिगृह का आमोद-प्रमोद, वीर्य्यवान् राजा और उन के पराक्रमी सैनिकों का उत्थान-पतन रासो में मार्मिक दृश्य छोड़ गए हैं। वास्तव में देखा जाय तो रासो में पृथ्वीराज के जीवन-चरित्र के अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की अमर गाथा भी है।

'पृथ्वीराज रासो' का विस्तृत और गंभीर अध्ययन करने के उपरान्त कहना ही पड़ता है कि चन्दबरदाई हिन्दी का प्रथम महाकवि था और उसका 'रासो' प्रथम महाकाव्य।

चन्दबरदाई की मरण-तिथि अभी निश्चित नहीं। रासो के "इक्क दीह अपना इक्क दी है समाय क्रम" आदि शब्दों का अर्थ यही है कि पृथ्वीराज और चन्द एक ही दिवस जन्मे और एक ही दिन संसार से विदा हुए। इतिहासकार पृथ्वीराज का देहान्त वि० सं० १२४६ में

मानते हैं। अतएव चन्दबरदाई की मरण-तिथि भी १२४६ (वि० सं०) माननी उपयुक्त है।

'रासो' की प्रामाणिकता पर मतभेद

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में मतभेद है। श्री मुरारिदान और श्यामलदान ने 'रासो' की प्रामाणिकता पर रॉयल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में अपना सन्देह व्यक्त किया है। डॉ० बुलर ने सन् १८७५ की संस्कृत ग्रन्थों की खोज में, जयानक कृत 'पृथ्वीराज-विजय' नामक ग्रन्थ की एक प्रति काश्मीर से प्राप्त की। इस ग्रन्थ की सामग्री में पृथ्वीराज-कालीन तिथियों की पूर्णतः पुष्टि होती है। सब प्रकार से 'रासो' की अपेक्षा पृथ्वीराज-विजय अधिक विश्वसनीय है, इसलिए डॉ० बुलर ने रॉयल एशियाटिक सोसायटी को 'रासो' का प्रकाशन स्थगित करने के लिए बाध्य किया।

क्षेपकों की भरमार के कारण जार्ज ग्रियर्सन भी 'रासो' के सम्बन्ध में निश्चित मत नहीं रखते। पुरातत्व के पण्डित-प्रवर गौरीशङ्कर-हीराचन्दजी ओझा ने भी 'रासो' के निर्माण-काल पर निबन्ध लिख कर उसे अप्रामाणिक सिद्ध किया है। मुन्शी देवीप्रसाद ने भी अपने लेख में 'रासो' की रचना पर अविश्वास प्रकट किया था।

कुछ विद्वान् इसे वि० सं० १६०० के आस-पास सुने हुए वृत्तान्तों के आधार पर, अशुद्ध ग्रन्थ-रचना मानते हैं। उनके कथनानुसार यह काव्य काल्पनिक गाथाओं से भरा पड़ा है।

विपरीत मतावलम्बियों में, श्री श्यामसुन्दरदास और मिश्र-बन्धु इस ग्रन्थ को अप्रामाणिक नहीं मानते। ओझाजी के प्रमाणों को निर्मूल सिद्ध करने के लिए मिश्र-बन्धुओं ने 'नवरत्न' में युक्ति-पूर्वक दलीलें दी हैं। यह विद्वन्मण्डली 'रासो' में प्रक्षिप्त अंशों का धुआँधार समावेश तो मानती है, किन्तु तिथियों की दृष्टि से ९०—९१ वर्ष का जो अन्तर पड़ता है, उसका कारण किसी 'आनन्द' नामक संवत् का सहारा लेकर स्पष्ट करती है।

समर्थकों का कथन है कि रासो में साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं हुआ। ऐसे संवत् का प्रयोग है जो विक्रमीय संवत् से ६० वर्ष पीछे था। यह 'आनन्द' संवत् कहलाया, जो उस काल में प्रचलित था। अतएव 'पृथ्वीराज रासो' की रचना पृथ्वीराज के राजत्व-काल में ही हुई। इसका एक स्पष्ट कारण यह भी है कि रासो की भाषा कहीं-कहीं अति प्राचीन है, घटनाएँ भी उस अंश में लगभग वास्तविक हैं। रासो में जो तिथियों की अशुद्धियाँ और इतिहास सम्बन्धी भ्रान्तियाँ मिलती हैं, उनका मुख्य कारण इस ग्रन्थ की सुदीर्घ लोकप्रियता हो सकती है। जिस ग्रन्थ का इतना प्रचार हो, कहाँ तक संभव है कि नये जोड़-तोड़ उसको विकृत होने से वंचित् रखते।

मुनि जिन विजयजी को चन्दबरदाई रचित 'रासो' के चार 'छप्पय' प्राप्त हुए हैं। इन छप्पयों की भाषा पृथ्वीराजकालीन भाषा से पूर्णतः समानता रखती है। इनमें से तीन छप्पय नागरी-प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित रासो में भी मिलते हैं। एक छप्पय नीचे उद्धृत किया जाता है। साथ ही उसका परिवर्त्तित रूप है जो उक्त सभा के प्रकाशन में है। इससे इतना तो विदित होता ही है कि चन्दबरदाई नाम का कवि पृथ्वीराज की सभा में अवश्य रहा था। प्राचीन छप्पय इस प्रकार है:—

इक्कु वाणु पहु वीसु जु पई कइं बासह मुक्कओ।
उर भिंतरी खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडिदाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ बारइ पलकउ खल गुलह।
न जांणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन में उक्त स्वरूप इस प्रकार है:—

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहर्‍यौ बीर कष्षंतर चुक्यौ॥

बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसरनंदन ।
गाढ़ौ करि निग्रह्यौ षनिव गाड्यौ संभारि धन ॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुनगहि आगरौ ।
इम जंपै चंदवरद्दिया कहा निघट्टै इह प्रलौ ॥

पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता का प्रश्न अभी निश्चित रूप से हल नहीं हो पाया है। भिन्न-भिन्न मत लेकर विद्वानों ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। अब तक की सामग्री को सम्मुख रखते हुए किसी एक मत का समर्थन करना कठिन-सा है। जब इतिहास और तिथि सम्बन्धी नयी खोजें सामने आएँगी. तभी अन्तिम निर्णय दिया जा सकेगा।

पृथ्वीराजरासो में 'घग्घर नदी के युद्ध-वर्णन' से एक त्रोटक का उदाहरण हम यहाँ देते हैं:—

हुअ सद्द सुसद्दह नद्द भरं, घन घेरिक कीय सु फौज वरं ।
लष लष्ष मिले दल संमिलयं, नर भद्दव वाहल संमिलियं ॥
सु अग्गें हथनारि अपार सजं, तिन देषत काइर दूर भजं ।
तिन पिट्ठह फौज हा हब्बरयं, धरि गोरिय मुट्ठ करं धरियं ॥
कमनेत अमूल सु लष्ष लियं, तिन मध्य ततारह छत्र दियं ।
लष दोय गुरज्ज सगष्षरियं, षुरसान दियं दल पष्षरियं ॥
बलकी उमराव सुसत्त सयं, निसुरत्तह लष्षह कम्म भयं ।
षुरसान तनं दल उप्पटयं, मनु साइर सत्त उलट्ठ भयं ॥
जल बानिय पानिय अद्ध सरं, लोहानिय पानिय खेत वरं ।
हबसी उजबक्क हमीर भरं, कल बानिय क्रम्मिय अग्ग धरं ॥

———o———

पृथ्वीराज-विजय

जयानक

हम ऊपर कह आए हैं कि डा० बुलर ने सन् १८७५ में संस्कृत-ग्रंथों की खोज करते हुए काश्मीर से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त किया था। इसका नाम है 'पृथ्वीराज-विजय'। यह ग्रन्थ शारदा लिपि में लिखित, जीर्ण-शीर्ण दशा में मिला है।

इतिहास की कसौटी पर कस कर विद्वानों ने इस ग्रन्थ को 'पृथ्वीराज-रासो' की अपेक्षा अधिक सत्य और प्रामाणिक माना है। 'पृथ्वीराज-विजय' अपूर्ण ही प्राप्त हो पाया है। इस में बारह सर्ग मिले हैं, जिन में तिथियों के अनुसार पृथ्वीराज का पराक्रम और वीरतापूर्ण वैभव-वर्णन सुन्दरता के साथ हुआ है। बारहवें सर्ग में पृथ्वीराज की राज-सभा में जो काश्मीरी कवि 'जयानक' आता है, संभवतः वही इस ग्रन्थ का रचयिता है। पृथ्वीराजरासो की तुलना 'पृथ्वीराज-विजय' से करते हैं तो वह भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पृथ्वीराज-विजय की सामग्री चौहान सम्राटों के शिला-लेखों से पूर्णतः साम्य रखती है। यही कारण है कि महाकवि चन्दबरदाई के महाकाव्य के सम्बन्ध में विद्वानों का मतभेद है।

भट्ट केदार—

इस कवि का समय संवत् १२२५ माना जाता है। सिंघायच दयाल-दास कृत 'राठौड़ांरी ख्यात' में भट्ट केदार-कृत 'जयचंद-प्रकाश' का उल्लेख मात्र ही मिलता है। इस ग्रन्थ में कन्नौज के राजा जयचन्द का गौरव-गान है। अप्राप्य होने के कारण इस ग्रंथ के सम्बन्ध में अधिक नहीं कहा जा सकता।

मधुकर—

इस कवि का समय संवत् १२४० माना जाता है। 'जय मयंक-जस चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ लिखकर इसने भी राजा जयचन्द का कीर्त्ति-गान

किया है। 'राठौड़ांरी ख्यात' में इसका भी संकेत मिलता है, किन्तु यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो पाया।

चारण-काल के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अन्वेषण अभी नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि डाढी (ढाँड़ी) जाति के लोगों ने ही चारण-काल के प्रारम्भ में अधिकांश ग्रंथ-रचना की थी, किन्तु इस जाति की निम्न वर्ग में गणना होने के कारण इन्हें राज-सभाओं में आश्रय नहीं मिल पाता था। अतएव इनके ग्रंथों का रक्षक राज्य की ओर से कोई न रहा, और न इनकी रचनाएँ ख्याति प्राप्त कर सकीं। डाढियों की फुटकर कविताएँ मिलती हैं। 'वीर-गायण' नामक पन्द्रहवीं शताब्दी का एक ग्रंथ भी मिलता है। इस ग्रंथ में राव वीरमजी राठौड़ की वीरता का वृत्तान्त वर्णित है।

जगनिक—

ये कालिंजर के राजा परमाल के भाट थे। इन्होंने महोबे के दो वीर-चरित्रों—आल्हा और ऊदल—का वीरतापूर्ण वर्णन एक वीरगीतात्मक काव्य में किया है।

मि० वाटर फील्ड ने इसे पृथ्वीराज रासो का एक खण्ड माना है, किन्तु जॉर्ज ग्रियर्सन की सम्मति में यह रासो से भिन्न है। आल्हखण्ड नाम से यह काव्य जन-साधारण में खूब प्रसिद्ध है। गेय होने के कारण इसका रूप मौखिक होता गया और आगे चलकर इसके पाठ में बहुत अधिक विकृति आगई। सब से प्रथम सर चार्ल्स इलियट ने फर्रुखाबाद में आल्हखण्ड का संग्रह किया। फिर वाटरफील्ड ने इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। पृथ्वीराज-रासो के महोबाखण्ड से साम्य रखने पर भी आल्हखण्ड एक स्वतंत्र रचना मानी जाती है। इसके रचयिता का काल सं० १२३० माना गया है।

आल्हखण्ड के लेखक में भौगोलिक ज्ञान का अभाव मालूम देता है, क्योंकि स्थानों की स्थिति और उनका वर्णन अशुद्ध है। कथा में असम्बद्धता है। अत्युक्ति और पुनरुक्ति दोष के कारण तो पाठक को अरुचि-सी हो जाती है।

वास्तव में देखा जाय तो साधारण जनता के लिये उत्साह और वीरता का विशाल सन्देश लेकर इसकी गाथा विकसित हुई है। उसी वर्ग में इसका अधिक महत्त्व है। बांसबाड़ा में आल्हखण्ड के गायकों का अच्छा केन्द्र भी है।

हम्मीर रासो—

इस ग्रन्थ में रणथंभौर के राजा हमीर का यशोगान है। शारङ्गधर ने इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के अन्तर्गत की थी, किन्तु इस ग्रन्थ की कोई भी असली प्रति नहीं मिल पाई।

हमीर की कीर्त्ति-कथा के सम्बन्ध में 'हम्मीर महाकाव्य' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है। इसका निर्माता नभचन्द्र सूरि नामक कवि था, जो गवालियर के राजा वीरमदेव की सभा में रहता था। नभचन्द्र का काल विक्रम संवत् १४६० के लगभग माना जाता है।

विजयपाल रासो—

इस ग्रन्थ में करौली के राजा विजयपाल के वीरतापूर्ण कृत्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। नवलसिंह भट्ट नामक कवि ने इसकी रचना की थी। यह ग्रन्थ काव्य की कसौटी पर बहुत साधारण कोटि का सिद्ध हुआ है। इस के लेखक का समय सं० १३५५ माना जाता है।

चारणकाल के इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं जिनका अन्वेषण अभी परिश्रम और रुचि के साथ नहीं हुआ। डिंगल-साहित्य में, चारण कवियों ने अपनी प्रतिभापूर्ण काव्य-रचना से जो ठोस सामग्री देकर अपना स्थान बनाया, आगे चलकर उनके वंशजों ने उस अमूल्य देन को चिर-स्थायी रखने का कोई दृढ़ प्रयत्न नहीं किया। इस काल के साहित्य में अभी बहुत खोज हो सकती है। डा० रामकुमार वर्मा ने खोज में प्राप्त हुए कुछ ऐसे ग्रन्थों पर प्रकाश डाला है, जो चारण-काल से बहुत पीछे के हैं। चारण-काल की परम्परा में होने के कारण, इन ग्रन्थों के नाममात्र ही नीचे दिये जाते हैं:—

१—जैतसी राने पाबूजी रा छन्द—सं० १५६१—१५६८

२—अचलदास खीची री बचनिका—शिवदास री कही—सं० १६१५

३—माधवानल प्रबन्ध दोग्ध बन्ध—कवि गणपति कृत-१५१४

४—क्रिसन रुकमणी री वेल-राज प्रिथीराज री कही-सं० १६३७

५—सुन्दर सिणगार-१६८८

६—वचनिका राठौर रतनसिंह जी री महेस दासौत री खिड़ियै जगै री कही-सं० १७१५ के लगभग

७—सोढ़ीनाथी री कविता-सं० १७३०

८—ढोला मारवणी चउपट्टी-सं० १६०७

९—बरसलपुर गढ़ विजय-सं१७६९

१०-महाराजा गजसिंहजी रौ रूपक-सं १८०४

११-ग्रन्थ राज गाउण—गोपीनाथ रौ कहियौ-सं० १८१०

१२-महाराजा रतनसिंहजी री कविता-वीठ गों गौरी कही-सं० १८१५

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त फुटकर कविताएँ और छोटी काव्य गाथाएँ भी हैं, जिनका समय अनिश्चित है। ये इतिहास में उल्लेख पाने की दृष्टि से भी अधिक महत्त्व की नहीं हैं।

डिंगल साहित्य पर एक दृष्टि

जब तक क्षत्रिय नृपों के हृदयों में प्रतिशोध और स्वदेश-रक्षा की प्रचण्ड अग्नि धधकती रही, चारण-काल में वीरतापूर्ण गौरव का स्वच्छन्द साम्राज्य रहा, तब तक कवियों की लेखनी में विपुल बल उमड़ता रहा। किन्तु अपने चरितनायक के गुण और वैभव-वर्णन तक ही उन की रचना का आदर्श रहता था। वीरोल्लासिनी भाषा में राजाओं की कीर्ति का ओजपूर्ण वर्णन, और उनकी युद्ध-निपुणता का चल चित्र सदृश सजीव चित्रण ही चारण-काल के चारणों का काव्य-उद्देश्य रहता था। जहाँ अपने राजा का शौर्य वर्णन करने में ये सिद्धहस्त थे वहाँ प्रतिद्वन्द्वी की हीनताओं का चित्र भी अनूठे ढंग से अंकित कर डालते थे। किन्तु कभी-कभी वर्णन की प्रचुरता, अत्युक्ति और पुनरुक्ति काव्य को नीरस बना देने में सहायक होती थी। इनकी रचनाएँ मुक्तक और प्रबन्ध दोनों ही काव्यों में होती थीं।

भाषा की दृष्टि से डिंगल ही इस काल की काव्यधारा के विकास के लिए श्रेयस्कर और उपयुक्त थी। डिंगल के वीरतापूर्ण शब्दों की ध्वनि ऊँचे स्वरों में पढ़ी जाने योग्य होती थी, अतएव वीरता-वर्णन के लिए डिंगल से उपयुक्त कोई भाषा नहीं हो सकती थी। किन्तु आगे चल कर धार्मिक काल के प्रभाव से डिंगल की दीर्घ और ओजमयी ध्वनि क्षीण पड़ती गई। विदेशी शब्दों की भरमार के कारण तो भाषा में और भी शिथिलता आगई। गेय ग्रन्थों का सदियों तक मौखिक पाठ होता रहा, इससे उनकी भाषा का स्वरूप ही विकृत हो गया।

डिंगल काव्यों में वीर रस का प्राधान्य होना तो स्वाभाविक-सी बात थी। राजाओं के आमोद-प्रमोद का चित्रण करते हुए इनमें शृंगार का भी वर्णन है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का रोचक वर्णन करते हुए जहाँ तहाँ अन्य रसों का भी थोड़ा-थोड़ा आभास मिलता है। हाँ हास्य और शान्त रस का पूर्णतः अभाव-सा है। छंदों के प्रयोग भी वीर-भावों की अभिव्यक्ति के अनुरूप ही हैं। सब गुण-दोषों के होते हुए भी यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि हिंदी-साहित्य के विकास की दृष्टि से डिंगल-साहित्य की काव्य-धारा बड़े हीं महत्त्व की वस्तु है।

डिंगल साहित्य का ह्रास

जब मुसलमान लोग राज्य और धर्म की वृद्धि के लिए शक्तिभर कट्टरता-पूर्ण चेष्टाएँ करने लग गए तब उन से हिंदुओं में अशांति और असंतोष फैलने लगा। मुसलमानी प्रभुत्व ने क्षत्रिय राजाओं को जर्जर कर दिया। परिणामतः देश की राजनीति विदेशियों के हाथ आयी और वीर-गाथाओं का युग क्षीणता को प्राप्त होता चला गया। अपने अपमान और आघातों का बदला लेने तक के लिए वीरों में शक्ति न रही। ऐसी अवस्था में एक परमात्मा का ही अवलम्ब रह गया। सांसारिक पीड़ाओं से त्राण पाने के लिए लोग धार्मिकता की ओर बढ़ चले। वे शान्ति और मुक्ति के लिए संसार का मोह त्यागने लगे। इस प्रकार डिंगल-साहित्य की गति अत्यन्त धीमी पड़ गई।

धार्मिक साहित्य की नयी लहर राम और कृष्ण की जन्मस्थलियों से उठ कर विकसित होने लगी। डिंगल भाषा ओजस्वी और वीरता के भावों को ही व्यक्त कर सकती थी, अतः धर्म के कोमल, सरल और शान्त भावों को व्यक्त करने के लिए अवधी और व्रजभाषा अपने-अपने उत्थान के लिए अग्रसर हुईं। इस प्रकार 'पिंगल' के मन्द स्वरों में बोली जाने वाली भाषा डिंगल के अक्खड़ और दीर्घ ध्वनिपूर्ण शब्दों को अपने व्यापक क्षेत्र में स्थान न दे सकी।



अमीर ख़ुसरो

जिन दिनों दिल्ली के मुसलमान शासकों के संरक्षण में एक अनोखे ढंग का मनोरंजक और चमत्कारी साहित्य उदय हो रहा था, वह डिंगल-साहित्य के ह्रास का समय था। धार्मिक साहित्य के केन्द्र भिन्न-भिन्न धार्मिक स्थानों पर पनप रहे थे। ऐसे विचित्र वातावरण में अबुलहसन अथवा अमीर खुसरो नामक मुसलमान कवि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। यह कवि एटा के पटियाली ग्राम का निवासी था। संवत् १३४० में इसने अपनी रचना का श्रीगणेश किया। मुसलमानी राज-सभा में प्रतिष्ठित होकर इसने कई पठान सम्राटों का राज्य-काल देखा था। अपनी विनोद-प्रियता और सहृदयता के लिए अमीरखुसरो अत्यन्त विख्यात थे। फ़ारसी भाषा के कवि और यशस्वी ग्रन्थकार होते हुए भी इन्होंने तत्कालीन जनता की बोल-चाल की साधारण और सुस्पष्ट भाषा में अपनी पहेलियों और मुकरियों की अनूठी रचना की। कुछ मधुर, सरस गीत और दोहे भी इन्होंने सरल भाषा में रचे हैं। इनकी पहेलियों में उक्ति-वैचित्र्य की विशेषता है।

इस समय चारण-साहित्य की जो गति थी, उसके साथ खुसरो ने प्रवाहित होना पसन्द नहीं किया। राजस्थानी में डिंगल काव्य की रचना प्रचलित थी। दूसरी साहित्य-भाषा अपभ्रंश से निकली हिन्दी थी,

जो हम्मीररासो आदि ग्रन्थों के रूप में अवतरित हुई। जनसाधारण की भाषा का आश्रय लेकर अभी तक किसी ने काव्य-रचना नहीं की थी। दिल्ली के आस-पास बोली जानेवाली खड़ीबोली का प्रथम वार काव्य-भाषा-रूप में प्रयोग खुसरो ने किया, इसी कारण खड़ी बोली के आदि कवि खुसरो ही माने जाते हैं। खुसरो ने हिन्दी को अरबी और फ़ारसी से किसी प्रकार भी हीन और निम्न नहीं समझा। प्रो० मुहम्मदहुसेन, मौलाना डाक्टर क़ादरी आदि ने खुसरो की भाषा को व्रजभाषा माना है, किन्तु वास्तव में उस में कुछ शब्द ही व्रजभाषा के आगए हैं, बाक़ी सब कुछ खड़ी बोली का ही है।

अमीर खुसरो के नाम से अनेक पहेलियाँ संगृहीत हैं। कुछ संग्रहों में बाद में जोड़ी हुई पहेलियाँ भी मिल गई हैं। सब से महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि खुसरो के साहित्य से हम तत्कालीन बोल-चाल की भाषा का मूल स्वरूप जान सकते हैं। जनसाधारण की स्वाभाविक, सरस और सुस्पष्ट भाषा खुसरो की कविता में भले प्रकार प्रतिबिम्बित है।

खुसरो ने ग़ज़ल, इतिहास, कोष, सङ्गीत, पहेलियाँ तथा अनेक फुटकर कविताओं की रचना की। उनकी कृतियों में हास्य और विनोद का भी अच्छा पुट है। जीवन के गंभीर अध्ययन का आभास उनकी रचनाओं में नहीं है। स्त्री के व्यथित हृदय का चित्रण करते हुए खुसरो-रचित एक ग़ज़ल अवश्य प्राप्त है। अन्य गंभीर रचनाएँ अप्राप्य-सी ही है। फ़ारसी, अरबी और हिन्दी का एक विशाल कोष जो 'ख़ालिकबारी' नाम से विख्यात है, खुसरो ने ही रचा था। कुछ लोग इस कोष की रचना पर मतभेद रखते हैं। सङ्गीत में भी बरवा राग में लय रखने का ढंग इन्होंने ही आविष्कृत किया था। कव्वाली के नये राग और वसन्त के पद तो इनके खूब प्रसिद्ध हैं।

खुसरो की पहेलियाँ छह प्रकार की हैं—

१—अन्तर्लापिका २—बहिर्लापिका ३—मुकरी ४—दो सखुने ५—बराबरी या सम्बन्ध और ६—ढकोसले। पहेलियों के कारण तो खुसरो का नाम जनसाधारण तक में प्रसिद्ध है। वास्तव में अपनी कौतूहलपूर्ण पहेलियों के क्षेत्र में वे

अद्वितीय कवि माने जाते हैं। खुसरो की पहेलियों के कुछ उदाहरण देखिए :—

१—श्याम वरन और दाँत अनेक, लचकत जैसे नारी।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे, और कहे तू आरी।
(आरी)

२—अरथ तो इसका बूझेगा। मुँह देखो तो सूझेगा॥
(दर्पण)

३—जल से तरुवर उपजा एक, पात नहीं पर डार अनेक।
इस तरुवर की शीतल छाया, नीचे एक न बैठन पाया॥
(फौआरा)

४—फारसी बोली आईना, तुर्की ढूँढी पाईना।
हिन्दी बोली आरसी आए, खुसरो कहँ कोई न बताए॥
(आरसी)

५—बाला था जब सबको भाया, बढ़ा हुआ कुछ काम न आया।
खुसरो कह दिया उसका नाँव, अर्थ करो नहिं छोड़ो गाँव॥
(दीपक)

अन्त में फ़ारसी के समान ही हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए अमीर खुसरो ने संवत् १३८१ में अपनी जीवनलीला समाप्त की।



मुल्ला दाऊद

यह मुसलमान कवि अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन माना जाता है। डा० रामकुमार वर्मा के मतानुसार मुल्ला दाऊद का काव्य-रचना-काल संवत् १३७५ के लगभग ही अधिक माननीय है। मुल्ला दाऊद ने 'नूरक और चन्दा की प्रेम कथा' नामक एक प्रेम-ग्रन्थ की रचना की। किन्तु यह रचना उपलब्ध नहीं है, अतः इसके विषय में निश्चित् रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उस काल में मसनवियों की रचनाएँ खूब प्रचलित थीं। विद्वानों का अनुमान है कि इसी प्रकार की मसनवी के रूप में

मुल्ला दाऊद ने भी सम्भवतः उक्त प्रेम-कथा लिखी हो। आगे चलकर ऐसी ही प्रेम-पद्धति में कुछ और मुसलमान कवियों ने भी अपनी काव्य-रचनाएँ कीं। जायसी की रचना में जैसी आध्यात्मिक झलक दृष्टिगोचर होती है वैसी ही व्यंजना मुल्लाजी की प्रेम-कथा में भी व्यंजित हुई हो, ऐसा प्रामाणिक रूप से कहना कठिन है।

---o---

विद्यापति

विद्यापति की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में निश्चित् रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमानतः विद्यापति का आविर्भाव-काल २३२ लक्ष्मणाब्द संवत् के लगभग निर्धारित किया जाता है। लक्ष्मणाब्द और ईसवी संवत् में १११०वर्ष का अन्तर है।

विद्यापति के पिता का नाम गणपति ठाकुर था, जो राजा गणेश्वर के राजमंत्री और 'गंगा-भक्ति-तरंगिणी' के रचयिता थे। राजसम्मान तथा पांडित्य की पैतृक देन प्राप्त कर कुशाग्रबुद्धि, प्रतिभा-सम्पन्न कवि विद्यापति ने लक्ष्मी और सरस्वती के संगम में काव्य-तरिणी को छोड़ दिया। गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिसिंह राजा बने। शिक्षा समाप्त कर विद्यपति कीर्तिसिंह के दरबार में रहने लगे, और इनकी सर्वप्रथम रचना 'कीर्तिलता' का भी इसी समय अवतरण हुआ। विद्यापति ने इनके राज्यकाल में कई पुस्तकें लिखीं, किन्तु देवसिंह के पुत्र शिवसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही विद्यापति की प्रतिभा अधिक निखर कर काव्य-प्रेमियों को चमत्कृत करने लगी। पृथ्वीराज और चन्दबरदाई के सौहार्द की तरह शिवसिंह और विद्यापति में भी परस्पर आत्मीय घनिष्ठता थी। शिवसिंह की विदुषी पत्नी रानी लखिमादेवी अत्यन्त रूपवती और काव्य-मर्मज्ञ थी। विद्यापति के काव्य-कौशल पर लखिमा मुग्ध थी। वीणा की तरंगों पर सरस्वती के वरद पुत्र की पीयूष-वाणी अन्तःपुर में प्रवाहित होकर दासियों के सुकोमल कण्ठ में मुखरित हो उठती थी। लखिमा से काव्य-प्रेरणा और शिवसिंह से आर्थिक

निश्चिन्तता पाकर विद्यापति की कविता कल्लोलिनी उमड़ कर बहने लगी। यह विद्यापति की शृंगारी रचनाओं का स्वर्णयुग था। पदावली इसी समय लिखी गई, जिसने विद्यापति को अमरत्व प्रदान किया। शिवसिंह की मृत्यु हो जाने पर विद्यापति की सौन्दर्य-शृंगार-भावना शुष्क हो गई और कुछ समय के लिए इन्होंने कविता करना त्याग दिया। शृंगार का स्थान धर्म ने ले लिया और एकाग्र चित्त से ये शिव की उपासना में संलग्न हो गए। शिव के प्रति अपनी उत्कट भक्ति की अभिव्यक्ति इन्होंने 'शैवसर्वस्वसार' लिखकर की। इसके उपरान्त 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' और 'गंगावाक्यावली' की रचना भी हुई।

शिवसिंह की मृत्यु के ३२ वर्ष बाद स्वप्न में विद्यापति को शिवसिंह दिखाई दिए। शिवसिंह गौरवर्ण के थे किन्तु स्वप्न के शिवसिंह श्यामल थे। ब्रह्मवैवर्त-पुराण में ऐसे स्वप्न को मृत्यु-सूचक माना गया है। स्वप्न के सम्बन्ध में विद्यापति ने लिखा है—

सपन देखल हम सिवसिंघ भूप,
बतिस बरस पर सामर रूप।
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन,
आब भेलहु हम आयु बिहीन।

विरक्त विद्यापति को संसार के प्रति कोई आकर्षण शेष न रहा था।

जतन जतेक धन पाय बटोरल,
मिलि मिलि परिजन खाय।
मरन क बेर हरि कोई न पूछय,
करम संग चलि जाय।
बयस, कतए चल गेला।
तोहें सेवइत जनम बहल तैओ न आपन भेला।

मृत्यु-बेला निकट जानकर विद्यापति ने पुरजनों से विदा ली और गंगा-तट की ओर प्रस्थान किया। संध्या हो चली थी। जाह्नवी अभी कुछ दूर थी। विद्यापति ने सेवकों को पालकी नीचे रखने का आदेश देते हुए कहा कि जब वृद्ध होकर मैं इतनी दूर तक आया हूँ तो क्या गंगा मुझ से भेंटने के लिए

कुछ आगे बढ़ आने का अनुग्रह भी मुझ पर न करेगी। कहा जाता है कि गंगा अपनी धारा छोड़ कर सचमुच टेढ़ी होकर उधर आ निकली। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व इन्होंने अपनी पुत्री को बुलाकर कहा——

दुल्लहि तोहर कतय छथि माय,
कहुन ओ आबथु एखन नहाय।
बृथा बुझथु संसार विलास,
पल पल नाना तरह क त्रास।

संसार की निस्सारता पर उदासीन नेत्रों से दृष्टि डालकर ऐश्वर्य और विलास के इस शृंगारी कवि ने लक्ष्मणाब्द संवत् ३२६ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को महाप्रयाण के पथ पर प्रस्थान किया।

विद्यापति-कृत ग्रंथ

शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार-प्रमाण भूत पुराणसंग्रह, भूपरिक्रमा, पुरुष-समीक्षा, लिखनावली, गंगावाक्यावली, दानवाक्यावली, विभाग सार, गया-पत्तनक, वर्ण कृत्य, दुर्गाभक्ति तरंगिणी। [संस्कृत]

कीर्तिलता, कीर्तिपताका। [अवहट्ट]। पदावली। [मैथिली]।

इस प्रकार विद्यापति ने लगभग १४ ग्रंथों का प्रणयन किया, जिन में अधिकांश संस्कृत में लिखे गए हैं।

काल-क्रम की दृष्टि से विद्यापति का आविर्भाव भारत के शौर्य-युग में हुआ, किन्तु प्रवृत्ति के अनुसार उन्हें रीति-कालीन शृङ्गारी कवियों की प्रथम श्रेणी में स्थान दिया जा सकता है। सूर की सरसता, देव का प्रवाह और विहारी की वाग्विभूति का सुन्दर सम्मिश्रण विद्यापति के माधुर्य काव्य-घट में उपलब्ध है। जयदेव की कोमल-कान्त पदावली की समता की क्षमता रखने वाली, प्राकृतयुक्त सरस हिन्दी में विद्यापति का प्रथम सफल प्रयत्न था। राधाकृष्ण की माधुर्य-भावना का निरूपण जयदेव के अतिरिक्त संस्कृत के अनेक कवियों ने भी किया है। किन्तु हिन्दी में राधाकृष्ण के आमोद-प्रमोद और संयोग-वियोग विषयक शृङ्गार का भावुक चित्रण विद्यापति के पूर्व किसी कवि ने नहीं किया।

श्रीमद्भागवत से प्रभावित होकर बंगाल में चण्डीदास और विहार में विद्यापति के कलित कण्ठ से स्नेह-संगीतमय जो काव्यधारा फूट पड़ी, उसने कृष्ण-काव्य की नींव डाल दी। विद्यापति के गेय पदों की मादकता से अभिभूत होकर श्रीचैतन्य महाप्रभु चेतनाविहीन हो जाते थे। कीर्तन-प्रथा के प्रचलन द्वारा श्री चैतन्य ने बंगाल में विद्यापति की सरस पदावली का प्रवेश करा दिया। विद्यापति के पदों ने वहाँ इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि बहुत समय तक वे बंगीय कवि के रूप में ही स्वीकार किए जाते रहे। किन्तु गवेषणापूर्ण खोजों द्वारा यह सिद्ध होगया कि विद्यापति मिथिला निवासी थे और हिन्दी भाषा के अन्तर्गत मैथिली में उन्होंने अपनी काव्य-रचना की है।

विद्यापति के काव्य की आध्यात्मिक ध्वनि के सम्बन्ध में दो मत हैं। जिस प्रकार सुरा-सुन्दरी के पुजारी उमर खय्याम को कुछ लोग उत्कृष्ट सूफ़ी कवि मानते हैं, और कुछ उसे केवल हाला-प्याला की परिधि में ही सीमित करके अपनी आलोच्य मौलिकता का प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार विद्यापति को विद्वानों का एक पक्ष अध्यात्मवादी कवि सिद्ध करता है तथा विरोधी पक्ष उसे भौतिक प्रेम का कलात्मक प्रणेता मानता है। प्रथम पक्ष के समर्थकों में डा० ग्रियर्सन का नाम उल्लेखनीय है। बंगीय एशियाटिक सोसायटी के जर्नल (Journal of Asiatic Society Bengal) में डा० ग्रियर्सन ने विद्यापति को राधाकृष्ण-सम्बन्धी पवित्र प्रेम का उपासक बताया है।

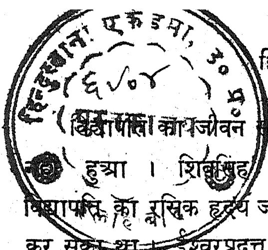
"God is love" is alike the motto of the Eastern and of the Western worlds, while the form of Love proposed is essentially different. The people of a colder Western clime. have contended themselves with comparing the inaffable love of God to that of a father to his children, while the warner climes of the tropics have led to the seekers after truth to compare the love of the worshipper for the worshipped to that of supreme mistress Radha for her supreme Lord Krishna. It is true that it is hard for a Western mind to grasp the idea, but let us not therefore hastily condemn it ; the glowing stanzas of Vidyapati are read by the devout Hindu with as little of the baser part of human sensuousness, as the song of Solomen is by the Christian Priest.

श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने एक भाषण में इसी कथन की पुष्टि की है। डा० ग्रियर्सन की भाँति गुप्त महोदय ने भी विद्यापति के पदों की आध्यात्मिक भावना पर विशेष ज़ोर दिया है। राधाकृष्ण-मिलन की एकान्तिक गुह्य प्रवृत्ति को नगेन्द्रनाथ गुप्त ने रहस्यवाद के सांचे में ढाल दिया है।

रयनि काजर बम, भोम भुअङ्गम कुलिस पड़ए दुरवार।
गरज तरस मन, रोसे बरिस घन संशय पड़ अभिसार॥
चरन वेघल फनि हित कय मानल धनि नेपुर न करए रोल।
सुमुखि पुछो तोहि सरूप कहसि मोहि सिनेह कतए दुर ओल॥

उपर्युक्त पद द्वारा विद्यापति की कृष्णाभिसारिका राधा को परमात्म-प्राप्ति के लिए आतुर आत्मा की उत्कट अभिलाषा के रूप में समझकर विद्यापति के रहस्यवाद का समर्थन किया गया है। इसके अतिरिक्त कुमारस्वामी, डा० जनार्दन राय मिश्र आदि विद्वानों ने भी विद्यापति की कविता को ईश्वरोन्मुख सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

विरोध पक्ष में डा० विनयकुमार सरकार, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० रामकुमार वर्मा, स्व० बाबू शिवनन्दन ठाकुर आदि ने विद्यापति को ठेठ शृङ्गार का लौकिक प्रवृत्ति मूलक कवि माना है। वस्तुतः देखा जाय तो विद्यापति के पद विलासोन्मुख शृङ्गार से ओतप्रोत हैं। श्रीमद्‌भागवत में कृष्ण और गोपियों का प्रणय-सम्बन्ध विशुद्ध आध्यात्मिक रंग से अनुरंजित है। वह प्रेम अलौकिक है और इन्द्रियता से परे है। उस में रूपलिप्सा तथा शारीरिकता की अश्लील झलक नहीं है। इसके विपरीत विद्यापति की पदावली आद्योपान्त रति-रस से ओतप्रोत है। 'कीर्ति पताका' में विद्यापति ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि विरही राम की अतृप्त वासना की पूर्ति के लिए कृष्णावतार हुआ और कृष्ण के रूप में राम ने गोपियों के साथ स्वच्छन्द विहार किया। अतएव स्पष्ट है कि विद्यापति का उद्देश्य राधाकृष्ण-शृङ्गार के वर्णन में कोई गूढ़ दार्शनिक तत्व अथवा विशुद्ध धार्मिक प्रवृत्ति लिए हुए न था।



विद्यापति का जीवन सन्त कवियों के समान आर्थिक संकट में व्यतीत नहीं हुआ। शिवसिंह और लखिमा की छत्रच्छाया में प्रश्रय पाकर विद्यापति का रसिक हृदय जी खोलकर विलासिता की वारुणी का रसास्वादन कर सका था। ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा और राजाश्रय पाकर कुशल चितेरे विद्यापति ने राधा और कृष्ण विषयक माधुर्य रस में अपनी तूलिका को डुबाकर बड़े सुन्दर और सजीव चित्रों का निर्माण किया। लीलाओं का वर्णन कृष्ण-भक्ति-काव्य का प्रमुख अंग है। विरह और मिलन, मान और मनुहार तथा अभिसार आदि के अनेक भावचित्र विद्यापति ने बड़ी कुशलता से अंकित किये हैं। यद्यपि विद्यापति ने अन्तर्जगत् का रहस्योद्-घाटन करने में अपनी विशेषता नहीं दिखाई, तथापि बहिर्जगत् के हाव-भाव आदि अनेक व्यापारों का चित्रण बड़ी खूबी के साथ किया है। अंगरेजी-कवि कीट्स (Keats) की तरह विद्यापति की दृष्टि भी बाह्य सौन्दर्य पर ही अधिक केन्द्रित रही, क्योंकि—

जनम अवधि हम रूप निहारल,
नयन न तिरपित भेल ।

अथवा कीट्स के शब्दों में 'A thing of beauty is a joy for ever में सौन्दर्य के प्रति अनन्त आकर्षण की भावना का प्रकाशन स्पष्ट देखा जा सकता है। फिर भला शाश्वत आनन्द के अजस्र सौन्दर्य-स्रोत में तृप्ति की भावना कैसी! सौन्दर्य के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न होती है, और अनुरक्ति भी साधारण नहीं अपितु—

से हो पिरीति अनुराग बखानिअ,
तिल तिल नूतन होइ ।

वही प्रेम अनुराग रंजित है जो प्रतिपल नवीन रूप धारण करता रहता है।

सद्यस्नाता का वर्णन विद्यापति की एक अपूर्व कृति है। इस में से अनेक वार पारखी समालोचक उद्धरण देते आए हैं, यथा—

कामिनि करए सनाने,
हेरतहिं हृदए हनय पंचवाने ।

चिकुर गरए जलधारा,
जनि मुख-ससि उरें रोअए अंधारा। इत्यादि।

जयदेव द्वारा चित्रित विरहिणी के शिव-भ्रामक रूप को विद्यापति ने अपने कौशल से अधिक मोहक और प्रभावपूर्ण बना दिया है—

कत व वेदन मोहि देसि मदना,
हर नहि वला मोहि जुवति जना।
विभूति—भूखन नहीं चानन क रेनू,
बघछाल नहिं नेतक वसनू।
नहि मोरा जटाभार चिकुर क वेनी,
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क सेनी।
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारू,
फनपति नहिं मोरा मुकता—हारू।
भनइ विद्यापति सुन देव कामा,
एक पय दूखन नाम मोर बामा।

विरहिणी का कैसा अर्थ-चमत्कार-युक्त सजीव चित्र है। शब्द-योजना भी कोमलतापूर्ण तथा उपयुक्त है।

रीतिकालीन कवियों के समान विद्यापति ने भी काव्योचित अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। शब्दालंकार के अन्तर्गत अनुप्रास की छटा निम्न पद में देखते ही बनती है—

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गहल निज ठाये।
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन वड पाँतर दुर गाये॥

उपमा, रूपक और विरोधाभास का सुन्दर सम्मिश्रण एक ही स्थल पर देखिए—

चिकुर निकर तम-सम, पुनु आनन पुनिम-ससी।
नयन-पंकज के पतिआ ओत एक ठाम रहु बसी॥

विद्यापति ने काव्य-क्षेत्र में निर्भीक होकर स्वस्थ काम का प्रतिपादन किया। वासना का गर्हित रूप अनुचित प्रेम का परिचायक है। किन्तु

कृष्ण को नायक और राधा को नायिका मानकर विद्यापति ने स्थायीभाव 'रति' को निखारने का सफल प्रयत्न किया। वज्रयानी सिद्धों की जो गुह्य भावना भ्रष्ट वामाचार की ओर अग्रसर हो रही थी, उसे परिष्कृत कर विद्यापति ने राधाकृष्ण के माधुर्य-सम्बन्ध में परिणत कर दिया। इससे एक ओर तो पतनोन्मुख जनता के मनोविकारों का परिशोधन हो गया, दूसरी ओर व्यभिचार के स्थान पर पारस्परिक प्रेम के अन्तर्गत वासना का निर्मल रूप भी निर्धारित हो गया।

गीत-काव्य की दृष्टि से विद्यापति ने हिन्दी-साहित्य के काव्यकोष को अमूल्य निधि प्रदान की है। संगीत और कवित्व का ऐसा सुन्दर सामंजस्य कठिनाई से ही हो पाता है। हृदय की उत्कट, निश्छल भावना का सरस और सरल निर्वाह विद्यापति ने प्रत्येक पद में किया है। अपभ्रंश-काल में, जब कि भाषा की कर्णकटुता सरस कविता के मार्ग में बाधक थी, विद्यापति ने उस अनुपम साहित्य का सृजन किया जिसके कारण काव्य-मर्मज्ञ 'मैथिल-कोकिल' तथा 'अभिनव जयदेव' आदि समुचित उपाधियों से अलंकृत इस महान् कवि को आज तक श्रद्धा सहित स्मरण करते हैं।

——०——

भक्ति-काल

[१३७५–१७००]

विचार और अनुभूति के समन्वय से सुन्दर साहित्य की सृष्टि होती है। साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय तत्कालीन दार्शनिकों की विचार-धारा पर दृष्टि रखना अत्यन्त आवश्यक है। विचारों की पृष्ठ-भूमि पर ही भावना की तूलिका से कुशल कलाकार विविध रंगों द्वारा साहित्य-चित्रण करते हैं। वेद और उपनिषदों के अजस्र स्रोत से सिंचकर हमारा साहित्य पल्लवित और कुसुमित होता रहा है।

अपभ्रंश-कालीन साहित्य पर बौद्ध (वज्रयानी सिद्ध), जैन और नाथ-पंथियों का स्पष्ट प्रभाव हम देख ही चुके हैं। धर्म अपनी अवनत दशा में

किसी प्रकार अस्तित्व बनाए हुए था। बाह्य आडंबरों की निस्सारता सिद्ध कर धर्म को किस प्रकार 'गुह्य' की ओर प्रेरित किया गया था तथा वाम-मार्ग पर चल कर उसका कैसा दुष्परिणाम निकला, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। जनता की धार्मिक भावना क्षीण हो चली थी और संघर्ष के युग में प्रवेश करते-करते युद्ध-रत जन-समुदाय के हृदय में शौर्य-शैवालिनी तरंगित हो उठी थी। अतएव वीरगाथा-काल में हमें चारणों की ओजस्विनी वाणी डिंगल में गूँजती हुई सुनाई पड़ती है।

मुसलमानी आक्रमणों के प्रभाव से जो काव्य-धारा उमड़ कर गंभीर गर्जन कर उठी थी, जिसने सुप्त वीरत्व को उभाड़ कर राजस्थान में वीरों की मन्दाकिनी उमड़ा दी थी, वही धारा इस्लामी विजय की अचल चट्टान से टकराकर छिन्न-भिन्न हो गई। सम्पूर्ण देश की दशा अस्त-व्यस्त हो गई। निराश्रित चारण इधर-उधर भटक गए और डिंगल-काव्य का ह्रास होने लगा।

इधर मुसलमानों ने जब अपने पैर दृढ़ता से जमा लिए, और उनके निष्कासन के लिए किए गए सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए तो लाचार होकर हिन्दुओं को विजयी विदेशियों के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करना पड़ा। मुसलमान भी धीरे-धीरे भारतीयता की ओर झुकने लगे और दो संस्कृतियों में परस्पर आदान-प्रदान होने लगा। धार्मिक कट्टरता भी ढीली हो चली तथा साहित्य-क्षेत्र में हृदय-परख का कार्य प्रारम्भ हो गया। दोनों एक-दूसरे को पहचानने और समझने का प्रयत्न करने लगे। काव्य-गंगोदक से दिलों का मैल धुलने लगा और कटुता की खाई पर स्नेह का सेतु बनना शुरू हो गया।

भक्ति-काल को उर्वर बनाने में धार्मिक मनीषियों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। दक्षिण में रामानुजाचार्य और गुजरात में स्वामी माधवाचार्य ने क्रमशः सगुण भक्ति और द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय का जो बीजारोपण किया था वह शीघ्र ही सुदृढ़ वृक्ष के रूप में बढ़कर शाखा-प्रशाखाओं में फैलने लगा। पूर्व में जयदेव-कृत गीतगोविन्द की जो मधुर ध्वनि मुखरित

हो रही थी, उसे मैथिल-कोकिल विद्यापति ने अपनी मधुर वाणी से और भी स्निग्ध कर दिया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य के सुप्रसिद्ध शिष्य रामानन्द ने रामोपासना का प्रचार किया और दूसरी ओर कृष्ण-भक्ति-परंपरा में वल्लभाचार्य ने कृष्ण के माधुर्य-रस में जनता को आप्लावित किया।

इधर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील साधु-संतों ने ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का सहारा लेकर मूर्तिपूजा-विरोधी मुसलमानों के लिए निर्गुणवाद का निरुपण किया। इस दिशा में नाथपंथी जोगी पहले ही अग्रसर हो चुके थे। महाराष्ट्र के भक्त-शिरोमणि नामदेव (सं० १३२८–१४००) ने भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए सतत प्रयत्न किया और तदुपरान्त कबीर ने 'निर्गुणपंथ' की प्रस्तावना लेकर सामान्य धर्म का मार्ग-निर्देश किया।

जिस प्रकार सगुणोपासना राम और कृष्ण को अपनाकर दो भागों में विभक्त हो गई उसी प्रकार निर्गुणोपासना भी दो धाराओं में प्रवाहित हो चली। एक में ज्ञान का बाहुल्य था जिसमें आर्द्रता के स्थान पर शुष्क बालुका की प्रचुरता थी, दूसरे में प्रेमतत्त्व की प्रधानता के कारण सरसता का संचार होता था। मस्तिष्क और हृदय अपनी-अपनी शक्ति समेट कर पूर्ण वेग के साथ इन दो धाराओं में बह चले। वेदान्त के रेतीले पथ पर ज्ञानवादी चल पड़े और प्रेम का पल्ला पकड़ कर कवि-हृदय सूफ़ी-सन्तों ने अपने प्रियतम की गैल गही।

इस प्रकार निर्गुण काव्य, प्रेम-काव्य, राम-काव्य, और कृष्ण-काव्य की विविध तरंगों से साहित्य-सरोवर हिलोरें लेने लगा और अपभ्रंश-कालीन धर्म का विकृत रूप परिमार्जित और परिशोधित होकर भक्ति-काल को अपनी सौन्दर्य-श्री से अनुरंजित करने लगा।

———o———

कबीर और ज्ञान-काव्य

कबीर : जीवन-परिचय (सं० १४५४–१५७५)

रहस्यवादी कवि कबीर का जीवन-वृत्तान्त भी कम रहस्यमय नहीं है। कहते हैं, रामानन्दजी ने प्रसन्न होकर एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया और परिणाम-स्वरूप कबीर का जन्म हुआ। लोक-लज्जा-वश नवजात शिशु को उसकी विधवा माँ ने लहरतारा तालाब के निकट फेंक दिया। संयोगवश एक जुलाहा दम्पती उधर आ निकला जिसने उस तेजस्वी शिशु को ईश्वर-प्रदत्त प्रसाद समझ कर स्नेहपूर्वक अंगीकार किया। नीमा और नीरू के वात्सल्य-हिंडोल में झूल कर कबीर का भरण-पोषण हुआ। बाल्यकाल से ही कबीर की प्रवृत्ति धर्म की ओर थी। ये तिलक लगा कर राम-नाम जपते तथा साधु-सन्तों के उपदेश सुनने के लिए सदैव लालायित रहते थे। किन्तु सद्गुरु से दीक्षित न होने का क्षोभ इन्हें निरन्तर मानसिक क्लेश पहुँचाता रहता था। इसी उद्विग्नता में वे एक दिन प्रभात-बेला में गंगा-घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गए। स्वामी रामानन्दजी स्नान के लिए जब सीढ़ियों पर से उतर रहे थे, कबीर के शिर से सहसा पैर टकरा जाने के कारण उनके कंठ से 'राम-राम' निकल पड़ा। बस कबीर के लिए यह 'गुरु-मंत्र' यथेष्ट था। प्रायः मुसलमान लोग इन्हें शेख तकी का शिष्य मानते हैं, किन्तु कबीर ने ऐसा कहीं स्वीकार नहीं किया। हाँ, स्वामी रामानन्द को उन्होंने गुरु-रूप में अवश्य स्मरण किया है।

कबीर का विवाह अत्यन्त रूपवती, धार्मिक अभिरुचि रखनेवाली 'लोई' नामक लड़की के साथ हुआ था, जिससे उनके एक पुत्र तथा एक पुत्री, कमाल और कमाली का जन्म हुआ। पारिवारिक बंधनों में बँधकर भी कबीर की साधना में कोई अंतर नहीं पड़ा। राम और रहीम की अभिन्नता दरसाने के लिए इन्होंने उत्कट प्रयत्न किया। इनकी मर्म-वेधी व्यंग्योक्तियों से आहत होकर एक बार मुसलमानों ने बादशाह सिकन्दर लोदी को इनके

विरुद्ध भड़का दिया। फलतः कबीर को शृंखलाबद्ध कर गंगा में फिकवा दिया गया, किन्तु अपराजित कबीर का बाल भी बाँका न हुआ—

"गंग-लहर मेरी टूटी जंजीर;
मृगछाला पर बैठे कबीर।
कहु कबीर कोउ संग न साथ;
जल-थल राखत हैं रघुनाथ॥

विचार-स्वातंत्र्य के कारण कबीर को अनेकों आपत्तियों का सामना करना पड़ा, किन्तु सत्पथ से ये कभी विचलित न हुए। जीवनपर्यन्त पर्यटन करके ये जन-समुदाय को बाह्याडंबरों से विमुख कर सत्य के प्रशस्त पथ पर अग्रसर करते रहे। काशी में देहावसान होने पर स्वर्ग, और मगहर में अन्तिम श्वास लेने पर नरक प्राप्त होता है, ऐसी कुछ लोगों की धारणा थी, अतएव जीवन का अवसान समीप जानकर ये मगहर में वास करने लगे। मृत्यु-पश्चात् इनके शव के लिये हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही अपना-अपना स्वत्व प्रस्तुत किया। अंत को शव के स्थान पर कुछ फूल पड़े देखे गए।

कबीर-पंथियों की ओर से कबीर के जन्म और मृत्यु-काल-सम्बन्धी निम्नलिखित दो दोहे हैं जिन्हें प्रमाण-सिद्ध माना जाता है—

जन्म—चौदह सौ पचपन सालगिरा चन्दु एक ठार हुए।
जेठ-सुदी बद्साइत को पूरनमासी तिथि भए॥

मृत्यु—पन्द्रहसौ पचहत्तर किय मगहर को गौन।
माघ-सुदी एकादशी रहो पौन में पौन॥

कबीर : सुधारक

कवि अपने युग का स्रष्टा होता है। प्रतिभा-पुष्प के प्रस्फुटन-काल में अपने सौरभ के अतिरिक्त वातावरण को दुर्गन्धमय पाकर उसके प्राण छटपटा उठते हैं। अपनी ही सुगन्ध से वह सम्पूर्ण वायु-मण्डल को

सुरभित देखना चाहता है। जागरण-बेला में वह विगत रात की तन्द्रिल उदासी को दूर कर नव प्रभात की मंगलमय प्रभाती अलापने लगता है। किन्तु जन-रव में जब उसका स्वर-सामंजस्य नहीं हो पाता तो उसकी वाणी में क्रमशः तीव्रता और कठोरता आती जाती है। कबीर का प्रादुर्भाव भारतीय संस्कृति के अवनत काल में हुआ। असंतोष और अशान्ति की अग्नि सर्वत्र दहक रही थी। दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के संघर्ष में जनता पिसी जाती थी। हिन्दुओं के राजमुकुट पराभव की धूल में पड़े हुए थे। धार्मिक विद्वेष के बवण्डर में हाथोंहाथ न सूझता था। अंध-विश्वास-अहि अपना फन फैलाए अज्ञान के अँधेरे बिल में धर्म को समेटे पड़ा था। रूढ़ि-ग्रस्त हिन्दू-समाज की नींव खोखली हो चली थी। निम्न वर्ग के लोग ऊँच-नीच के भेद-भाव से तंग आकर तथा साथ ही आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियोंवश इस्लाम को अपना रहे थे। सर्वत्र धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था। धर्म की आधार-शिला निर्बल हो गई थी और उसने आडम्बर का रूप धारण कर लिया था। विवेकशील सत्पुरुष इस ओर से असावधान या अचेत न थे। रामानन्द प्रभृति महात्मा इस दिशा में सुधार करने के लिए आगे भी बढ़े। उन्होंने भगवान् की समता-सूचक स्नेह-दृष्टि की पुष्टि अवश्य की, किन्तु जाति-भेद के दुर्गम दुर्ग पर सीधा प्रहार करना उचित न समझा। कबीर ने साम्यभाव की दृढ़ता को अपनाकर जाति-भेद का समूलोच्छेदन करने के लिए अदम्य उत्साह दिखलाया। कबीर का धार्मिक सुधारक के रूप में अवतरण होना और धर्म-ध्वजाधारी विशिष्ट वर्ग को जाति-विभेद के एकीकरण की चुनौती देना कोई नवीन घटना न थी। वज्रयानी सिद्धों की पूर्व प्रचलित उद्दण्ड विचार-धारा का पोषण कबीर की उग्र वाणी में हुआ। कबीर के खण्डन-मण्डन का स्वर भी उन्हीं के समान प्रचण्ड था। वर्ण-व्यवस्था के विरोध में सहजयानी सिद्ध सरहपा का कथन कि 'ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे। जब हुए तब हुए होंगे। इस समय वे भी अन्य लोगों के समान ही पैदा होते हैं'; कबीर के 'जो तुम बाम्हन बम्हनि जाए,

और राह तुम काहे न आए !' से कितना मिलता-जुलता है। सरहपा और कबीर की साखी का भाव-साम्य भी देखने योग्य है—

'जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उड़ै नहिं जाय।
रैनि दिवस का गम नहीं, तहँ कबीर रहा लौ लाय॥

—कबीर

'जहि मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि बट चित्त विश्राम करु, सरुहे कहिअ उवेश॥'

—सरहपा

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए नाथपंथी योगियों की ओर से यथेष्ट प्रयत्न किए जा चुके थे। गुरु गोरख की दृढ़ योग-साधना में मुसलमानों को भी सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त था। बाह्याडंबरों की उपेक्षा करके अन्तःसाधना को अधिक महत्त्व देने के कारण नाथपंथ द्वारा एक सामान्य धर्म की प्रस्तावना हो चुकी थी। कबीर में विभिन्न मतों का सम्मिश्रण होना सम्भव हो सका था। मुस्लिम परिवार में भरण-पोषण होने के कारण इस्लाम की साधना-पद्धति का अध्ययन करने का उन्हें सहज सुयोग प्राप्त था, और हिन्दुओं के धार्मिक गढ़ काशी में जन्म लेने के कारण वे पंडितों के प्रवचनों से भी लाभ उठा सके थे। अतः दोनों की कमजोरियों को लक्ष्य करके उन्होंने खरी-खरी सुनाना प्रारंभ कर दिया। मुल्ला की बाँग और हिन्दुओं की पीतल-पीटन्त पर उन्होंने तिलमिलाने वाली चुटकियाँ लीं। उनकी फबतियों में वह अप्रिय सत्य अन्तर्हित था जिसका अनुभव सभी समझदार व्यक्ति करते थे; किन्तु प्रकटीकरण की क्षमता किसी में न थी। धर्म के मूल तत्व को पहचान कर कबीर ने ढोंग के ढोल की पोल खोल दी। मूर्त्ति-पूजा के संबंध में आप कहते हैं—

पाथर पूजत हरि मिलैं तौ मैं पूजूँ पहार।
तातें तौ चाकी भली पीसि खाय संसार॥

सिर घुटानेवाले साधुओं को लक्ष्य कर आपने व्यंग्यात्मक अकाट्य चुटकी ली है—

मूंड़ मुड़ाये हरि मिलैं सब कोई लेइ मुड़ाय।
बार-बार के मुड़े तैं भेड़ न बैकुण्ठ जाय॥

कोरी माला फेरने की निस्सारता दिखलाते हुए आप कहते हैं—

कबीर माला काठ की कहि समुझावे तोहि।
मन न फिरावै आपनो कहा फिरावै मोहि॥

हिन्दू ही नहीं कबीर ने मुसलमानों की भी ख़ूब ख़बर ली है। यथा—

दिन भर रोज़ा रहत हैं राति हनत हैं गाय।
यह तो ख़ून वह बन्दगी, कैसे ख़ुसी ख़ुदाय॥
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिन को कौन हवाल॥

कबीर का मुख्य उद्देश्य पाखण्ड को दूर कर हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृभाव की स्थापना करके दोनों को सन्मार्ग पर चलाना था। राम और रहीम की एकता पर वे जीवन-भर उपदेश देते रहे। जो अल्लाह मस्जिद में बसता है, वही मन्दिर में भी निवास करता है। हिन्दू-मुसलमानों को व्यर्थ झगड़ते देख ये खीझकर कह उठते थे—

'अरे इन दोउन राह न पाई'

कबीरकृत ग्रन्थ

अगाध मंगल, अठपहरा, अनुराग-सागर, अमर मूल, कबीर का अर्जनामा, अलिफ़नामा, अक्षरखंड की रमैनी, अक्षर भेद की रमैनी, आरती, उग्र गीता, उग्रज्ञान मूल सिद्धान्त दश मात्रा, कबीर और धर्मदास की गोष्ठी, कबीर की बानी, कबीर-अष्टक, कबीर परिचय की साखी, कर्मकाण्ड की रमैनी, कायापंजी, चौका पर की रमैनी, कबीर का चौंतीसा, कबीर का छप्पय, जन्म-बोध, तीसा जंत्र, नाम-महातम की साखी, निर्भय ज्ञान, पिय पहचानवे को अंग, पुकार कबीर कृत, बलख की पैज, बारामासी, बीजक, ब्रह्म-निरूपण, माषौं पंड चौंतीसा, मंगल शब्द, रमैनी, राम-रक्षा, राम-सार,

रेखता, विचार-माला, विवेक-सागर, शब्द-अलह टुक, शब्द-राग काफी और राग फगुआ, शब्द-राग गौरी और राग भैरव, शब्द वंशावली, शब्दावली, सत कबीर बंदी छोर, सतनामा, सत्संग को अंग, साधो को अंग, सुरति-संवाद, स्वांस-गुंजार, हिंडोरा वा रेखता, हंस-मुक्तावली, ज्ञान-गुदड़ी, ज्ञान-चौंतीसी, ज्ञान-सरोदय, ज्ञान-सागर, ज्ञान-सम्बोध, ज्ञान-स्तोत्र ।

उपर्युक्त सभी ग्रंथ असंदिग्ध रूप से कबीर के नहीं कहे जा सकते। किन्तु फिर भी इनमें से अधिकांश कबीर-कृत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कबीर : कवि

'मसि-कागद' न छूने वाले दार्शनिक कवि कबीर को, जिसने कभी कलम पकड़ना भी न सीखा था, कुछ समालोचक हिन्दी का महाकवि स्वीकार करने में संकोच अनुभव करते हैं। कबीर की कोई स्थिर भाषा न थी, किन्तु यह अस्थिरता ही उनकी भाषा का सौन्दर्य है। कबीर का छन्द-ज्ञान अत्यन्त अल्प था, किन्तु उनके छन्दों की स्वच्छन्दता ही उनके काव्य की शोभा है। कबीर की कविता में अलंकारों का चमत्कार नहीं है, किन्तु उसकी स्वाभाविक सरलता और सादगी ही अलंकार से बढ़कर है। उत्कट साधना तथा उत्कृष्ट चिन्तन का अभूतपूर्व संयोग कबीर की 'सधुक्कड़ी बानी' में हुआ है।

हिन्दी-साहित्य की काव्य-धारा में कबीर की स्थिति एक विशाल जल-बंध (Reservoir) के समान है । अपने पूर्ववर्ती सिद्धों तथा नाथपंथियों की काव्य-पद्धति अपनाकर कबीर ने वेदान्त-सम्बन्धी ज्ञान के प्रकाश से अपनी कविता को प्रखरता और प्रांजलता प्रदान की, तथा सूफ़ियों के प्रेम की पीर से तड़पकर अपनी विरहिणी आत्मा की व्याकुल पुकार को करुणारस-भीनी 'दरदीली' रागिनी से मुखरित कर दिया। परिणामस्वरूप क्लिष्ट कल्पनायुक्त 'उलटबांसियाँ', उपनिषदों का पांडित्यपूर्ण काव्यमय विवेचन और प्रेम की भावोन्मादमयी आत्मविह्वलता का परिचय पद-पद पर हमें कबीर के काव्य में मिलता है।

सिद्धों द्वारा प्रचलित 'उलटबाँसियों' की प्रणाली को अपनाने में भी कबीर का विशेष प्रयोजन था। नवीनता के प्रति आकर्षण मनुष्यमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिचायक है। पैरों से सभी मनुष्य चलते हैं, किन्तु यदि कोई सिर के बल चलना प्रारंभ कर दे तो लोगों को स्वभावतः कुतूहल होगा। ऐसे व्यक्ति को देखने के लिए अवश्य ही अनेक दर्शक आ उपस्थित होंगे। सत्य का स्थान निश्चय ही असत्य से श्रेष्ठ है, किन्तु यदि कोई कहने लगे कि असत् ही सत् का आधार है, तो सुननेवाले आश्चर्य-चकित हो स्तंभित हो जायँगे।

अँगरेज़ी साहित्य में विरोधाभासमूलक उक्तियों (Paradoxes) के प्रणेताओं में आस्कर वाइल्ट (Oscar Wilde), बर्नार्ड शॉ (Bernard Shaw), और चेस्टरटन (G. K. Chesterton) का विशिष्ट स्थान है। इनकी अनूठी उक्तियाँ पाठकों को चमत्कृत कर अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखती हैं। अतएव साहित्यिक द्रविड़-प्राणायाम भी अपनी विशेषता है। सिद्धों द्वारा प्रचलित 'उलटबाँसियों' के मूल में भी चमत्कृत करनेवाले इसी नवीन आकर्षण का रहस्य अन्तर्हित है। निरन्तर दो और दो—चार सुनने के अभ्यस्त कानों में दो और दो—पाँच अथवा तीन सिद्ध करने की गूँज जब सिद्धों की अटपटी वाणी में सुन पड़ी तो जनता की अभिरुचि उनकी ओर बढ़ चली, तथा—

टालत मोर घर नाहिं पड़वेषी।
हाड़ीति भात नाहिं नित आवेशी॥
वेग संसार बड़हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि बेएटे षामाय॥
बलद बिआएल गविया बांझे।
पिटा दुहिए ए तिना सांझे॥

आदि 'उलटबाँसियाँ' सुनाकर उन्होंने अपना सिक्का जमाना शुरू किया। कबीर ने भी 'उलटबाँसियाँ' कहीं, किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य जनता का

ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना ही प्रतीत होता है। कबीर की उलटबाँसियाँ भी विचित्रता से परिपूर्ण हैं, यथा—

देखि देखि जिय अचरज होई।
यह पद बूझै बिरला कोई॥
धरती उलटि अकासहिं जाई।
चिउंटीं के मुख हस्ति समाई॥
बिन पौने जहँ परबत उड़ै।
जीव जन्तु सब बिरछा बुड़ै॥
सूखे सरवर उठै हिलोर।
बिन जल चकवा करै किलोल।
बैठा पंडित पढ़ै पुरान।
बिन देखे का करै बखान॥
कह कबीर जो पद को जान।
सोई सन्त सदा परमान॥

कबीर का ध्येय कोरी कलाबाज़ी दिखलाकर उटलबाँसियों में अटक रहना न था। अतएव अब हम सूफ़ियों के प्रेम की 'पॉलिश' से निखरे हुए कबीर के रहस्यवादात्मक काव्य पर विचार करेंगे। हिन्दू और मुसलमान दोनों के संस्कारों से समन्वित होने के करण कबीर के रहस्यवाद की रूपरेखा 'शङ्कर' के अद्वैतवाद और फ़ारस के सूफ़ीमत द्वारा निर्धारित हुई। शङ्कर-द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद से माया और सूफ़ियों के उन्मादकारी प्रेम के संयोग से कबीर के रहस्यवाद का जन्म हुआ। सूफ़ियों ने परमात्मा को प्रेयसी के रूप में स्वीकार कर उसके विरह में दाहक संगीत की सृष्टि की, किन्तु भारतीय वातावरण-पोषित कबीर को भगवान् का स्वामी रूप अधिक रुचा। भारतीय सती स्त्री के आदर्श से वे पूर्ण परिचित थे, अतएव पति-परायणा स्त्री के समान उन्होंने अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति ईश्वर को पति मानकर की।

हरि मोर पीव माई, हरि मोर पीव।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव॥
हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥

दाम्पत्य प्रेम की परिधि में ही कबीर की आध्यात्मिकप्रणय-भावना का विकास हुआ है। आत्म-समर्पण एवम् इन्द्रिय-स्वीकरण के लिए यही पूर्ण उपयुक्त क्षेत्र भी है। साधना का दीपक बाल कर कबीर की विरहिणी आत्मा 'सत्पुरुष' के मिलन-मग में 'पलक-पाँवड़े' बिछाए आतुरता से बाट जोहती रहती है—

बाल्हा आव हमारे गेह रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहैं तुम्हारी नारी,
मोको इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै,
तब लग कैसा नेह रे?

ज्ञानाश्रयी होने के कारण 'निरगुनिया' कबीर की मिलन-कामना भी अपनी विशेषता है। रीतिकालीन कवियों के समान विरह-विदग्ध अंग-प्रत्यंगों का वर्णन करना कबीर का ध्येय न था। 'एकमेक ह्वै सेज न सोवै' में शारीरिक संयोग की अभिलाषा नहीं प्रकट की गई अपितु आत्मिक एकीकरण की भावना की झलक है। माया-मरीचिका से सावधान रहनेवाले कवि से हास-विलास में लिप्त होने की सम्भावना ही कैसे की जा सकती है। बाह्य आडंबरों और साज-शृंगार की कबीर ने पूर्ण उपेक्षा की है—

चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लावौं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि॥

इसके अतिरिक्त कबीर तो प्रेम-पथ के कष्ट-कंटकों से स्वयम् परिचित थे—

हँस हँस कन्त न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेलैं पिउ मिलैं; तो को न सुहागिन होय॥

आमोद-प्रमोद में संलग्न रह कर ही यदि प्रियतम प्राप्त होजाय तब तो सभी सुगमता से उसका दर्शनामृत पान करलें, किन्तु वास्तविक साधना उतनी सरल नहीं, वहाँ तो—

येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥

× × × ×

आत्मा (प्रेयसी) और परमात्मा (प्रणयी) के मध्य मुख्य व्यवधान माया का है। माया के आवरण से ही परमात्मा की रूप-राशि जो प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त है, दृष्टिगोचर नहीं होती। कबीर ने माया 'ठगिनो' को 'रमैनी' और 'शब्द' में बड़े आड़े हाथों लिया है। 'रमैया' की 'दुलहिन' ने तीनों लोकों में जो लूटपाट मचाई है, उस की कबीर ने कड़े शब्दों में निन्दा की है। कहीं-कहीं तो कबीर के काव्य में माया की बिभीषिका का बड़ा भयावह और बीभत्स रूप मिलता है। किन्तु सतगुरु के प्रभाव से माया का मोह-पाश नष्ट होजाता है, अतएव कबीर ने गुरु का महत्त्व विशेष रूप से बखाना है —

गुरुदेव के भेव को जीव जाने नहीं
जीव तो आपनी बुद्धि ठानै,
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भवसिन्धु तें
फेरि लै सुक्ख के सिन्धु आनै।
बन्द करि दृष्टि को फेरि अन्दर करै
घट का पाट गुरुदेव खोलै,
कहत कबीर तू देख संसार में
गुरुदेव समान कोई नाहिं तोलै॥

विना गुरु की कृपा के आध्यात्मिकता सफल नहीं हो सकती। आत्मा और परमात्मा के बीच में गुरु मध्यस्थ का कार्य करता है। तिमिराच्छन्न हृदयों में ज्ञान के प्रखर प्रकाश से गुरु दिव्य आलोक भर देता है।

कबीर की कविता में हठयोग के सिद्धान्त भी मिलते हैं। हठयोग, कबीर के पूर्ववर्ती, गोरखपंथी जोगियों की देन है। इसके द्वारा शरीर को कष्टसाध्य प्रणालियों से परमात्म-मिलन के लिये तैयार किया जाता है। प्राणायाम और आसनों का अभ्यास कर के शारीरिक और मानसिक श्रम द्वारा साधक मिलन-मार्ग पर अग्रसर होता है, कबीर के काव्य में इला, पिंगला, कुंडलीचक्र इत्यादि हठयोग सम्बन्धी नाम प्रायः इसीलिए पाए जाते हैं। किन्तु ऐसे अवतरण न्यूनतम हैं, स्पष्ट ही कबीर की प्रवृत्ति इस ओर विशेष न थी। वे तो उस दृश्य के अमर अवलोकन में मस्त रहते थे। जहाँ—

गगन की गुफा तहाँ गैब का चाँदना,
उदय औ अस्त का नाव नाहीं।
दिवस औ रैन तहाँ नेक नहिं पाइए,
प्रेम और परकास के सिंध माहीं॥
सदा आनन्द दुख दुंद व्यापै नहीं,
पूरनानन्द भरपूर देखा।
भर्म औ भ्रान्ति तहाँ नेक आवै नहीं,
कहै कबीर रस एक पेखा॥

रहस्यवादी कवि को ऐसे अनेकानेक दृश्यों के देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है, किन्तु कुछ चित्रों के जो अनुभूति की दृष्टि के आगे बहुत स्पष्ट होते हैं, के चित्रण में कवि को उतनी ही दुरूहता का सामना करना पड़ता है। मस्ती की मौज पर ऊँचा उठ कर कवि जो कुछ देखता है, उसका स्पष्ट निरूपण करने में वह असमर्थ सिद्ध होता है। वाणी विफल होजाती है और अटपटे तथा अस्पष्ट शब्दों द्वारा वह अपूर्ण अभिव्यक्ति को पूर्ण करने की चेष्टा में रत रहता है। अतएव साधारण भाषा का परित्याग कर रहस्यवादी कवि को रूपकों का सहारा लेना पड़ता है। कबीर के रूपक सहज, सुबोध नहीं हैं। और फिर रूपकों की भाषा तो वैसे ही बहुत अस्पष्ट होती है। क्लिष्ट कल्पना और भद्दी भाषा का प्रयोग ऐसे स्थलों पर कबीर की कविता में

विशेष रूप से मिलता है। फिर भी कुछ भक्त सन्तों ने कबीर के रूपकों की व्याख्या करने की चेष्टा की है। चरखा और बढ़ई का रूपक बाँध कर कबीर ने कालचक्र और उसके निर्माणकर्त्ता ईश्वर का बड़े सुन्दर किन्तु असम्बद्ध ढंग से वर्णन किया है। यथा—

जो चरखा जरि जाय, बढ़ैया ना मरै।
मैं कातों सूत हजार, चरखुला जिन जरै॥
बाबा, मोर ब्याह कराब, अच्छा बरहिं तकाय।
जौ लौं अच्छा बर न मिलै, तौ लौं तुमहिं बिहाय॥
प्रथमे नगर पहूँचते, परिगो सोग सँताप।
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप॥
समधी के घर समधी आए, आए बहू के भाय।
गोडे चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय॥
देवलोक मर जायँगे, एक न मरै बढ़ाय।
यह मन रंजन कारणै चरखा दियो दिढ़ाय॥
कहहि कबीर सुनो हो संतो चरखा लखै जो कोय।
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय॥

काव्य-क्षेत्र में कबीर का अवतरण देवदूत के दिव्य सन्देश को लेकर हुआ था। अतएव उनकी कविता में सिद्धान्त और सन्देश की प्रधानता है और काव्यात्मक कला गौण है। हाँ उनका सन्देश काव्य के परिधान से अवश्य ढका हुआ है। सुधारक होने के नाते कबीर की प्रवृत्ति प्रचार की ओर अधिक थी, इसी से विचारों की पुनरावृत्ति इनके काव्य में प्रचुरता से मिलती है। वे युग-प्रवर्त्तक थे तथा देश की अस्तव्यस्त सामाजिक, धार्मिक एवम् राजनीतिक परिस्थित में उन्होंने सन्त-साहित्य की नींव डाली, जिस पर आगे चलकर अन्य अनेक सन्त कवियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर सुन्दर काव्य-भवनों का निर्माण किया। निर्गुण मत की प्रस्तावना लेकर कबीर ने परोक्ष रूप से सगुण काव्य-धारा के प्रवाहित होने के लिए समतल भूमि तैयार कर दी। उत्तम कवि होने के साथ-साथ वे उच्चकोटि के सन्त भी थे।

यही भारतीय सन्त साहित्य की विशेषता है। प्रायः सभी सन्त कवियों में, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, उत्कृष्ट भक्ति और कवित्व का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है।

धरमदास (१५२० — १६४०)

कबीर के शिष्यों में धरमदास का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इनकी जन्म-तिथि अनुमानतः १४८० वि० संवत् और मृत्यु-तिथि वि० संवत् १६०० मानी गई है। ये बाँधवगढ़ के निवासी तथा काफी धनी थे। वैश्य-कुल में इन्होंने जन्म लिया था[1]। बचपन से ही इनकी रुचि धर्म-कर्म की ओर थी। साधु-सत्संग, तीर्थाटन, मूर्ति-पूजा आदि का इनके प्रारम्भिक जीवन में बहुत महत्त्व रहा। साधु-सत्कार, और भजन-पूजन में सगुणोपासक धरमदास जी खोलकर खर्च करते थे। स्व-रचित 'अमर-सुख-निधान' में धरमदास ने अपने जीवन-चरित की चर्चा की है—

> धरमदास बन्धो के बानी।
> प्रेम प्रीति भक्ति में जानी॥
> सालिगराम की सेवा करई।
> दया धरम बहुतै चित धरई॥ इत्यादि

सर्व-प्रथम मथुरा में इन्हें कबीर का दर्शन लाभ हुआ। कबीर की निर्भय पाखण्ड-खंडिनी वाणी सुनकर धरमदास जी बहुत प्रभावित हुए। निर्गुण पंथ की ओर ये आकृष्ट हुए और अन्त में सारी सम्पत्ति लुटाकर काशी पहुँचे। वहाँ कबीर से दीक्षा लेकर उनके प्रधान शिष्य बन गए। कबीर के देहावसान पर ये गुरु-गद्दी पर बैठे और १२० वर्ष की लम्बी आयु भोगकर स्वर्गवासी हुए।

धरमदास जी कबीर के अनन्य भक्त थे। इनकी अधिकांश कृतियों पर कबीर की छाप स्पष्ट झलकती है। कबीर की भाँति ही इन्होंने भी अपने काव्य में आध्यात्मिक तत्त्वों और रहस्यवादी भावनाओं का निरूपण किया।

बारहमासा, वसन्त, होली और सोहर पर भी इन्होंने बहुत कुछ लिखा है। विरह-वर्णन भी इनकी रचनाओं में उच्चकोटि का और अनुभूतिपूर्ण है। इनकी भाषा में कबीर की-सी अक्खड़ता के स्थान पर स्वाभाविकता और सरसता का प्रवाह है। नीचे इनकी कविता के दो नमूने दिये जाते हैं—

आज घड़ी आनन्द की सतगुरु आए मोरे धाम हो।
आये गुरुदेव सजन पठयो, भयो हरष अपार हो।
सकल सुन्दर साजि आरत होत मंगलचार हो॥
दियो दरसन मन लुभायो, सुन्यो बचन अमोल हो।
अछय छाया सघन घन की करत हंस कलोल हो॥
दया कीन्हो निर्गुन दीन्हो, आपनी करि सैन हो।
भक्ति-मुक्ति सनेही सजनै, लियो परथम चीन्ह हो॥
भए कलमल दूर तन के, गई तपन नसाय हो।
अटल पंथ कबीर दीन्हा, धरमदास लखाय हो॥

× × × ×

हमरी उमिरिया होरी खेलन की,
पिय मोसे मिलि के बिछुरि गयो हो।
पिय हमरे हम पिय की पियारी,
पिय बिच अन्तर परि गयो हो॥
पिया मिलै तब जियों मोरी सजनी,
पिय बिना जियरा निकरि गयो हो।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी,
बीच डगर पिय मिलि गयो हो॥
धरमदास बिरहिन पिय पावै,
चरण कँवल चित गहि रहो हो।

———०———

गुरु नानक
(सं० १५२६–१५९५)

गुरु नानक का जन्म लाहौर से तीस मील के अन्तर पर स्थित तलवण्डी नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम बेदी कालूचन्द था जो पटवारी थे, और इनकी माता का नाम तृप्ताजी था। मध्ययुग के साधु-सन्तों के विषय में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। गुरु नानक का जीवन भी ऐसी अनेक किंवदन्तियों से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि बाल्य काल से ही ये चिन्तनशील और एकान्तसेवी थे। खेल-कूद के प्रति ये सर्वथा उदासीन थे। माँ के ठेलने पर जब ये एक बार खेल में सम्मिलित हुए तब सब बच्चों को एक गोल पंक्ति में पद्मासन से बैठाकर आपने 'सत्य कर्त्तार', 'सत्य कर्त्तार' कहकर कीर्त्तन कराया। बड़े होने पर इनके पिता ने इन्हें व्यवसाय के लिए कुछ धन देकर रवाना किया, किन्तु मार्ग में कुछ साधुओं से भेंट होने पर इन्होंने उन्हीं की सेवा में सारे रुपये लगा दिये और ये खाली हाथ घर लौटे। पिता से प्रसाद-स्वरूप इन्हें प्रतारणा मिली। इनकी बहन श्रीजानकी इन्हें बहुत स्नेह करती थीं। वे अपने साथ इन्हें सुलतानपुर ले गईं। वहाँ इन्होंने कुछ दिनों दौलतखाँ लोदी के मोदीखाने में काम किया किन्तु चित्त उचटने पर इन्होंने उसे भी त्याग दिया। सद्गृहस्थ बनने के लिए इनका विवाह श्री सुलक्षणादेवी के साथ कर दिया गया जिससे उन्हें दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए—श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। किन्तु व्रती नानक को गृहस्थ का बंधन अधिक समय तक उलझाए न रख सका। इन्होंने दूर-दूर तक पर्यटन किया और ये निरन्तर धर्म-प्रचार करते रहे। इन्होंने सिख मत चलाया तथा कबीर के निर्गुण पंथ का प्रसार किया। नानक का मरदाना नामक एक सुगायक मित्र था जो उनके गीत-वादन के साथ रबाब बजाया करता था। नाम-माहात्म्य के नानक बहुत बड़े हामी थे। कबीर की भाँति एकेश्वरवाद और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के भी सबल समर्थक थे।

नानक की रचनाओं में निरहंकार—अहंकार विहीन—हृदय की स्वाभाविक भावनाओं की झलक मिलती है। नानक की प्रवृत्ति करुणा-मूलक थी।

इनके पदों में कबीर की-सी जटिलता और कठोरता नहीं है। नीचे इनके दो पद दिये जाते हैं—

गगन में थाल रवि चंद दीपक तारका मंडल जनक मोती।
धूप मल्लान लो पवण चँवरो करे सगल बनराइ फुलत जोती।
कैसे आरती होय अब खंडना तेरी आरती अनहदा शब्द बाजत भेरी।
सहस तव नैन नन नैन हैं तोहि को सहस मूरति नना एक तोही।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही॥

× × × ×

अंतरि बसै, न बाहर जाई।
अमृत छोड़ि, काहे बिषु खाई॥
ऐसा गियानु जपहु मन मोरे।
होवहु चाकर साँचे केरे॥
गियानु, धियानु सभु कोई रवै।
बाँधनि, बाँधिया सभु जगु भवै॥
सेवा करे सु चाकर होइ।
जल थल महि अलि रवि रहिआ सोइ॥
हम नहिं चंगे, बुरा नहिं कोइ।
प्रणवति नानकु तारे सोइ॥

सन्त रैदास

सन्त रैदास जाति के चर्मकार थे; इनका जन्म काशी में हुआ था। इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता; हाँ, कबीर के समकालीन होने के नाते इनका समय ईसवी-सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है। बाल्यवस्था से ही रैदास प्रभु-भक्त और साधु-सेवी थे। इनकी उत्कट धर्म-परायणता देखकर इनके पिता रघु सदा ही कुपित रहते थे। क्रोध में आकर एक दिन रघु ने इन्हें घर से निकाल दिया और

इनके पास कानी कौड़ी भी न रहने दी। किन्तु अलमस्त रैदास को तो प्रभु का पूर्ण विश्वास था, अतएव पिता के अनुचित व्यवहार से इनके मन पर तनक भी मलिनता न आई। साधारण झोंपड़े में रहकर ये जूते बनाते और ईश्वरोपासना में निमग्न रहते। इनकी सती-साध्वी पत्नी जो कुछ भोजन बनाकर सामने रख देती उसे ही ये प्रभु-प्रदत्त प्रसाद समझकर श्रद्धा से स्वीकार करते। जन-श्रुति है कि रैदास को आर्थिक संकट-ग्रस्त देखकर साधु के रूप में एक बार महाप्रभु इन्हें पारस पत्थर दे गए, किन्तु भक्त रैदास को ईश-चिन्तन से अवकाश कहाँ जो उसका उपयोग करते। अस्तु, पारस पत्थर ज्यों का त्यों पड़ा रहा। भक्त-माल में रैदास-विषयक अनेक कथाएँ हैं। कहते हैं चित्तौड़ की रानी ने रैदास को अपना गुरु बनाया था। १२० वर्ष की सुदीर्घ आयु भोगकर रैदास ने चिर-शान्ति प्राप्त की।

स्वामी रामानन्दजी के बारह शिष्यों में रैदास का नाम भी सम्मिलित है। धन्ना, पीपा, मीरा आदि ने रैदास को अपने काव्य में सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। ये भी 'निर्गुनिया' सन्त थे। इनकी कविता सच्चे भक्त की निष्कपट सरस भावना से ओतप्रोत है। नीचे रैदास की कविता का एक उदाहरण दिया जाता है—

प्रभुजी ! तुम चंदन, हम पानी। जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी ! तुम घन, हम वन-मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी ! तुम दीपक, हम बाती। जाकी जोति जरै दिन राती॥
प्रभुजी ! तुम मोती, हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी ! तुम स्वामी, हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

—— ० ——

दादूदयाल

(१६०१–१६६०)

दादू के जन्म और कुल के सम्बन्ध में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। कबीर के सदृश ये भी पानी पर तैरते हुए मिले थे। कुछ लोग इन्हें नागर

ब्राह्मण मानते हैं, तथा कई विद्वान् इन्हें मुसलमान धुनिया, मोची आदि बताते हैं। सन्त किसी कुल विशेष के बन्धन में नहीं जकड़े रहते, अतएव वंश-विवाद अधिक महत्त्व का नहीं है। इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था, किन्तु जीवन का अधिक समय इन्होंने बड़े होकर राजस्थान में व्यतीत किया। अत्यधिक दयालुता के कारण ये दादूदयाल प्रसिद्ध हुए। दादू तुलसीदास के समकालीन थे। एक बार फतेहपुर सीकरी में इनकी भेंट सम्राट् अकबर से हुई थी और चालीस दिन तक अकबर ने इनकी धार्मिक वार्त्ता से ज्ञान-लाभ किया था। खुदा की जाति और उसके अंग तथा रंग के विषय में पूँछे जाने पर इन्होंने निम्न दोहे में उत्तर दिया था—

'इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह मौजूद है, इसक अलह का रंग॥'

उन्नीस वर्ष की आयु में दादूदयाल ने भ्रमण प्रारम्भ किया तथा १४ वर्ष आमेर में निवास कर ये मारवाड़, बीकानेर आदि नगरों में पर्यटन करते हुए जयपुर के समीप नराना और भराना नामक स्थानों में पहुँचे। अन्तिम समय तक ये भराने की पहाड़ी पर निवास करते रहे और वहीं इन्होंने शरीर त्यागा।

दादू ने लगभग पाँच सहस्र पद रचे, जिनमें से अधिकांश अप्राप्त हैं। इन पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सूफ़ियों के समान इन्होंने भी विरहाकुल प्रेम की पीयूषधारा बहाई है। दादू की रचना अधिकतर प्रेम-पदों और दोहों में उपलब्ध है। भाषा में राजस्थानी मिश्रित पश्चिमी हिन्दी का प्रयोग हुआ है। अरबी और फ़ारसी के शब्द भी कहीं-कहीं आ गए हैं। कविता इनकी सरस और विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम-भावना से अनुरंजित है। इनकी कविता का रसास्वादन निम्नलिखित पद्यों से किया जा सकता है।

आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ॥

राम बिरहिनी ह्वै गया, बिरहिनि ह्वै गई राम।
दादू बिरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम॥

× × × ×

बाला सेज हमारी रे तूँ आव
हौं बारी रे, दासी तुम्हारी रे।
तेरा पंथ निहारूँ रे, सुन्दर सेज सँवारूँ रे, जियरा तुम पर वारूँ रे।
तेरा अंगना पेखों रे, तेरा मुखड़ा देखों रे, तब जीवन लेखों रे।
मिलि सुखड़ा दीजे रे, यह लाहा लीजे रे, तुम दीखें जीजे रे।
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रंगड़े राती रे, दादू नारणे जाती रे॥

—o—

सुन्दरदास

महात्मा सुन्दरदास का निर्गुण मतावलम्बी सन्तों में एक विशिष्ट स्थान है। ये खँडेलवाल वैश्य थे। संवत् १६५३ में जयपुर के निकट द्यौसा नामक नगर में इनका जन्म हुआ था। ६ वर्ष की अल्पायु से ही ये दादूदयाल के शिष्य बन गए थे। इनके जन्म का वृत्तान्त भी बड़ा मनोरंजक है। कहते हैं, कि दादू के एक शिष्य जग्गाजी अपनी धुन में मस्त वस्त्र बुनने के लिए पुकार-पुकार कर सूत मांग रहे थे। 'दे माई सूत, ले माई पूत' की उच्च ध्वनि सुनकर एक कन्या ने सूत लाकर इन्हें दिया। सूत लेकर आदत के अनुसार इनके मुख से पुत्र-दान की घोषणा भी हो गई। उस कन्या के भाग्य में पुत्र-प्राप्ति का विधान न था, अतएव दादू की आज्ञा से जग्गाजी को ही सुन्दरदास के रूप में उस कन्या के गर्भ से जन्म लेना पड़ा। तीस वर्ष की अवस्था तक इन्होंने काशी में विद्योपार्जन किया और वहाँ से ये वेद, शास्त्र, नीति, पुराण, आदि के प्रकाण्ड पण्डित होकर निकले। इनका शरीर सबल और स्वस्थ था। देखने-भालने में भी ये बहुत सुन्दर थे। ये बालब्रह्मचारी थे और स्त्री-चर्चा से सदैव दूर रहते थे। इन्होंने भ्रमण भी खूब किया था। 'दशों दिशाओं के सवैया' इसका पुष्ट

प्रमाण हैं। इनके ग्रन्थों में ज्ञान-समुद्र, सुन्दर-विलास और पद अधिक प्रसिद्ध हैं। शृङ्गार के ये घोर विरोधी थे। हास्य रस की छटा भी इनकी कविताओं में यत्र-तत्र मिलती है। इनकी कृतियाँ साहित्यिक, सुकोमल और छन्द-बद्ध हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिए—

बैठत रामहि ऊठत रामही,
बोलत रामहि राम रह्यो है।
जीमत रामहि पीवत रामही,
धामहिं रामहि राम गह्यो है॥
जागत रामहि सोवत रामही,
जोवत रामहि राम लह्यो है।
देतहु रामहि लेतहु रामही,
'सुन्दर' रामहि राम रह्यो है॥

× × × ×

मातु तौ पुकार छाती कूटिकूटि रोवत है,
बाप हू कहत मेरो नन्दन कहाँ गयो।
भैया हू कहत, मेरी बाँह आजु टूट गई,
बहिन कहति मेरो बीर दुःख दे गयो॥
कामिनी कहत मेरो सीस सिरताज कहाँ,
उन्हें ततकाल राई मांग सरापा लयो।
'सुन्दर' कहत कोऊ ताहि नहिं जान सकै,
बोलत हुतो सो यह छिन में कहाँ गयो॥

—o—

मलूकदास

इनका जन्म संवत् १६३१ में कड़ा (जिला इलाहाबाद) के एक खत्री परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम लाला सुन्दरदास था। मलूकदास बचपन से ही प्रतिभासम्पन्न और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इनके

सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। ये सिद्ध सन्त थे तथा ईश्वर पर सच्ची आस्था रखते थे। मलूकदास का निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए सबके दाता राम॥

मुगल सम्राट् औरंगज़ेब इनकी बहुत क़द्र करता था। कहते हैं कि एक बार इन्होंने अपने चत्मकारी प्रभाव से एक डूबते हुए शाही जहाज़ को ऊपर उठा दिया था। इनकी भाषा फ़ारसी, अरबी शब्दों से युक्त है। इनकी लिखी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—रत्नखान और ज्ञानबोध। भाव-सौन्दर्य इनके काव्य की विशेषता है। इन्होंने १०८ वर्ष की लम्बी आयु का उपभोग किया। मलूकदास की कविता की बानगी देखिए—

नैया मेरी नीचे चलन लगी।
आँधी मेंह तनिक नहिं डोलौ साहु चढ़े बड़भागी॥
रामराय डगमगी छोड़ाई, निर्भय कड़िया लैया।
गुन लहासि की हाजत नाहीं, आछा साज बनैया॥
अवसर परै तो पर्वत बोझै, तहूँ न होवै भारी।
धन सतगुरु यह जुगुति बताई, तिनकी मैं बलिहारी॥
सूखे पड़ै तो कछु डर नाहीं, ना गहरे का साँसा।
उलटि जाय तो बार न बाँकै, या का अजब तमासा॥
कहत मलूक जो बिन सिर खेवै, सो यह रूप बखानै।
या नैया के अजब कथा काइ बिरला केवट जानै॥

× × × ×

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूं सुन साहेब रहमाना॥
हुआ अलमस्त खबर नहिं तनकी, पीया प्रेम-पियाला।
ठाढ़ होहुँ तो गिर-गिर पड़ता, तेरे रंग मतवाला॥
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं, दिल ही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये में देखा, पूरा मुरसिद पाया॥

—०—

अक्षर अनन्य

ये जाति के कायस्थ थे और दतिया के राजा पृथिवीचन्द के दीवान थे। पीछे ये विरक्त होकर पन्ना में निवास करने लगे। महाराज छत्रसाल इनके शिष्य थे। छत्रसाल की किसी बात से असन्तुष्ट होकर एक वार ये वन की ओर चले गए, किन्तु विनयपूर्वक क्षमा-याचना कर छत्रसाल इन्हें फिर लौटा लाए। ये वेदान्त के अच्छे पंडित थे। योग और वेदान्त सम्बन्धी इन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग, सिद्धान्त-बोध, अनन्य-प्रकाश आदि अधिक प्रख्यात हैं। दुर्गासप्तशती का भी इन्होंने हिन्दी-पद्यों में अनुवाद किया था। इनकी पद्य-रचना का उदाहरण देखिए—

यह भेद सुनौ पृथिचन्दराय।
फल चारहु को साधन उपाय॥
यह लोक सधै सुख पुत्र बाय।
परलोक बसै बस नरक धाय॥
परलोक लोक दोउ सधै जाय।
सोइ राजजोग सिद्धान्त आय॥
निज राजजोग ज्ञानी करंत।
हठि मूढ़ धर्म साधत अनंत॥
(राजजोग)

———o———

वीरभान

इनका जन्म संवत् १६०० में पंजाब के बिजेसर नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने सतनामी पंथ चलाया। ये अधौदास के शिष्य थे। अपने गुरु की ये श्रद्धा सहित मान्यता करते थे। इनके चलाए हुए पंथ में जाति-बन्धन का अड़ंगा नहीं है। परस्पर विवाह-सम्बन्ध, खान-पान आदि निर्बाध रूप से इनके सतनाम पंथ में स्वीकृत है। इस पंथ का पूजनीय ग्रंथ 'पोथी' है, जिसका गुरु ग्रन्थ साहब के समान ही आदर किया जाता है।

औरंगजेब के शासनकाल में सतनामियों ने जो भयंकर विद्रोह किया था उसका इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्त में दो हजार सतनामियों का रक्त बहाकर इस विद्रोह का दमन किया गया था। सिर घुटाने के कारण ये 'मुँड़िया' भी कहलाते हैं।

चरनदास

महात्मा चरनदासजी का जन्म १७६० वि० सं० के लगभग मेवात के डेहरा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम मुरली था जो जाति के वैश्य थे। चरनदासजी ने चरनदासी पंथ की स्थापना की थी। इनकी दो प्रमुख शिष्याएँ—दयाबाई और सहजोबाई थीं। कहते हैं, कि १६ वर्ष की आयु में महात्मा चरनदासजी को वन में तपस्या-रत देखकर श्री शुकदेवजी ने दर्शन दिए थे। ये बड़े धार्मिक, चिन्तनशील तथा उत्कट गुरु-भक्त सन्त थे। मूर्तिपूजा के ये सर्वथा विरुद्ध थे। इनकी रचना यद्यपि उच्चकोटि की नहीं बन पड़ी, फिर भी ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का उसमें सुन्दर समावेश है। इनके चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—अमरलोक, अखण्डधाम, भक्ति पदारथ, ज्ञान सरोदय और शब्द। नीचे इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

गद गद बानी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो बिरहिन राम की, तलफत है दिन रैन॥
हाय-हाय हरि कब मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरसन करौं अघाय॥

× × × ×

यह सिर नवै तौ राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट॥

× × × ×

जब तू जानै पीवहीं, वह अपनी करि लेहि।
परम धाम में राखि करि, बाँह पकरि सुख देहि॥

धरनीदास

बिहार प्रान्त के छपरा ज़िले में माँझी नामक ग्राम में बाबा धरनीदासजी का जन्म संवत् १७१३ में हुआ था। जाति के ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। माँझी के ज़मीदार के ये दीवान थे। एक बार उपासना की उमंग में इन्होंने पानी से भरा हुआ लोटा कागज़ों पर ढलका दिया। पूँछने पर बताया कि आरती के समय श्री जगन्नाथजी के वसनों में अग्नि प्रज्वलित होगई थी, इसी से पानी ढुलकाया गया। पुरी आदमी भेजकर जाँच कराई गई तो बात सच निकली। गृहस्थाश्रम में इन्होंने चन्द्रदास नामक साधु से दीक्षा ली थी और संन्यास ग्रहण करने पर सेवानन्द को अपना गुरु बनाया। इनके सम्बन्ध में भी अनेक दन्त-कथाएँ प्रचलित हैं जो इनकी शक्ति के चमत्कार की परिचायक हैं। ये कुशल कवि और सच्चे भक्त थे। इनकी दो हस्तलिखित कृतियाँ उपलब्ध हैं—प्रेम-प्रगास और शब्द-प्रकाश। इनकी कविता के नमूने देखिए—

भई कंत दरस बिनु बावरी।
मो तन ब्यापै पीर प्रीतम की मूरख जानै आव री॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि बिसर गयो चित चाव री।
भोजन भवन सिंगार न भावै कुल करतूति अभाव री॥
खिन-खिन उठि-उठि पंथ निहारों, बार-बार पछितावरी।
नैन न अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी॥
देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नाव री।
धरनी धनी अजहुँ पिय पाओं, तौ सहजै अनँद बधाव री॥

× × × ×

अजहुं मिलो मेरे प्राण पियारे।
दीनदयाल कृपाल कृपानिधि करहु छिमा अपराध हमारे॥
कल न परत अति बिकल सकल तन नैन सकल जनु बहत पनारे।
मांस पचो अरु रक्त रहित भे हाड़ दिनहुं दिन होत उघारे।

नासा, नैन, स्रवन रसना रस, इन्द्री स्वाद जुदा जनु हारे ।
दिवस दसो दिसि पंथ निहारति राति बिहान गनत जस तारे ॥
जो दुख सहत कहत न बनत मुख अंतरगत के हौ जाननिहारे ।
धरनी जिव झिलमिलत दीप ज्यों होत अँधार करो उँजियारे ॥

———o———

ग़रीबदास

ग़रीबदास का जन्म वैशाख शुक्ला पूर्णिमा संवत् १७७४ को रोहतक के छुड़ानी गाँव में हुआ था। ये आजीवन गृहस्थ रहे तथा साधु-जीवन व्यतीत कर ६१ वर्ष की अवस्था में परलोकवासी हुए। ये कबीर के अनन्य भक्त और चरनदास के समकालीन थे। ग़रीबदास के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ कही जाती हैं। कहते हैं, इन्होंने १७००० पद रचे थे, किन्तु अब तक इनकी बहुत थोड़ी रचनाएँ मिल सकी हैं। इनकी कविता कबीर के ढंग की है, किन्तु कबीर की कर्कशता के स्थान पर इनकी रचनाओं में सरसता का संचार मिलता है। इन्होंने साखी, सवैया, रेखता, झूलना, रमैनी, आरती आदि अनेक प्रकार की रचनाएँ की हैं। इनकी कविता की बानगी देखिए—

लै लागी तब जानिए जग सूँ रहै उदास ।
नाम रटै निरभय कला हरदम हीरा स्वाँस ॥
लै लागी तब जानिए जग सूँ रहै उदास ।
नाम रटै निरद्वन्द होय अनहदपुर में बास ॥
लै लागी तब जानिए हरदम नाम उच्चार ।
एकै मन एकै दिसा साँई के दरबार ॥
लै लागी तब जानिए हरदम नाम उचार ।
एकै मन एकै दिसा खड़ा रहै दरबार ॥
गगन गरज भाठी चुए हीरा घंटिक सार ।
लै लागी तब जानिए उतरें नहीं खुमार ॥

गगन गरज घन बरसहीं दामिनि खिमै अंखड।
'दास गरीब' कबीर हैं सकल दीप नौ खंड॥

यारी साहब

ये जाति के मुसलमान तथा दिल्ली के निवासी थे। इनकी जन्म-तिथि अनुमान से संवत् १७२५—१७८० के लगभग मानी गई है। इनकी जीवन-वृत्ति के सम्बन्ध में अधिक पता नहीं चलता। कहते हैं, ये शाहज़ादे थे और बचपन से ही प्रभु-चिन्तन में निमग्न रहते थे। बीरू साहब इनके गुरु थे। इन्होंने अपनी उपासना-विधि में भक्ति और प्रेम को प्रधानता दी है। इनकी भाषा चलती हुई और प्रवाहयुक्त है। कविता इनकी सरल और सरस है। निम्न उदाहरणों से इनकी काव्य-कुशलता का परिचय प्राप्त होगा—

दिन दिन प्रीति अधिक मोहिं हरि की।
काम-क्रोध-जंजाल भसम भयो, बिरह-अगिन लगि धधकी।
धुधकि-धुधकि सुलगति अति निर्मल, झिलमिल-झिलमिल झलकी।
झरि-झरि पर अंगार अधर 'यारी' चढ़ि अकास आगे सरकी॥

× × × ×

उड़ु, उड़ु रे बिहंगम, चढ़ु अकास।
जहँ नहिं चाँद-सूर-निस-बासर, सदा अमरपुर अगम बास॥
देखै उरध अगाधि निरंतर, हरष-सोक नहिं जम कै त्रास।
कह 'यारी' उहें बधिक फाँसि नहिं, फल पायो जगमग परकास॥

दरिया साहब

दरिया साहब (मारवाड़वाले) का जन्म संवत् १७३३ में हुआ था। ये जाति के धुनियाँ थे। सात वर्ष की आयु में ही इन्हें पितृ-वियोग का दुसह दुख भोगना पड़ा। अपनी माँ के साथ ये ननसाल में जाकर रहने

लगे। इनके गुरु का नाम प्रेमजी था। मारवाड़ के महाराज बख़्तसिंहजी असाध्य रोग से पीड़ित थे, दरिया साहब की कृपा से ये रोग-मुक्त हो गए। उपहार-स्वरूप महाराज ने इन्हें यथेष्ट जागीर प्रदान करनी चाही, किन्तु निर्लिप्त दरिया साहब ने लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। संभवतः कबीर को ये अपना काव्य-गुरु मानते थे। कबीर के अनुकरण पर इन्होंने साखियाँ और उलट-बासियाँ लिखी हैं। इन्होंने अपने उपास्य देव को राम कहकर संबोधित किया है। नीचे इनकी कविता के कुछ अंश दिए जाते हैं—

मुरली कौन बजावै हो गगन मँडल के बीच।
त्रिकुटी संगम होय कर, गंग-जमुन के घाट।
या मुरली के सब्द से सहज रचा बैराट॥
गंग-जमुन बिच मुरली बाजै, उत्तर दिसि धुन होय।
उन मुरली की टेर ही सुनि-सुनि रही गोपिका मोहि॥
कान्ह गोपी नृत्य करते चरन बपुहि बिना।
नैन बिना दरियाव देखें आनँद रूप घना॥

—o—

जगजीवनदास

इनका जन्म बाराबंकी के सारराह नामक स्थान पर संवत् १७३६ में क्षत्रिय कुल में हुआ था। ये कबीर से बहुत प्रभावित थे तथा कबीर के समान ये भी जाति-बन्धन के विरोधी थे। औरंगज़ेब द्वारा कुचले हुए सतनामी संप्रदाय का इन्होंने पुनः संगठन किया था। भीखापंथी इन्हें 'गुलाल-साहब' का शिष्य बताते हैं, किन्तु सतनामी, विश्वेश्वर पुरी को इनका गुरु कहते हैं। अहिंसा और सत्य के ये बड़े हामी थे। निर्गुन ब्रह्म की उपासना का ही ये उपदेश देते थे। इनके लिखे हुए तीन प्रमुख ग्रंथ हैं—ज्ञान-प्रकाश, महाप्रलय और प्रथम ग्रंथ। इनकी कविता की बानगी देखिए—

पपिहा जाइ पुकारेउ, पंछिन आगे रोय।
तीन लोक फिरि आयेऊँ, बिन दुख लख्यो न कोय॥

जोगिन ह्वै जग ढूँढऊँ' पहिरयों कुंडल कान ।
पिय का अन्त न पायऊँ, खोजत जनम सिरान ॥

दूलनदास

ये जगजीवनदास के शिष्य थे । सतनामी लोग इनका जन्मकाल विक्रम संवत् १७१७ में मानते हैं । इनका जन्म लखनऊ के समैसी गाँव में हुआ था । इनके पिता ठाकुर रामसिंह ज़मीदार थे । दूलनदास के विषय में अनेक अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं । ये गृहस्थ थे और सदैव धर्म-कर्म में संलग्न रहते थे । भ्रमविनाश, शब्दावली, दोहावली, मंगलगीत आदि ग्रंथ इनके लिखे हुए हैं । इनकी कविता के उदाहरण देखिए—

साईं दरस माँगौं तोर ।
आपनो जन जान साँईं मान राखहु मोर ॥
अपथ पंथ न सूझ इत-उत प्रबल पाँचो चोर ।
भजन केहि बिधि करहुँ, साँईं चलत नाहीं जोर ॥
नात लाइ दुरात काहे पतित जन की दौर ।
बचन अवधि अधार मेरे, आसरा नहिं और ॥
हेरिये करि कृपा जन तन, ललित लोचन कोर ।
दास 'दूलन' सरन आयो, राम बंदी छोर ॥

× × × ×

नाम सनेही बावरे, दगि भरि भरि आवत नीर हो ।
रस मतवाले रसमसे, यहि लागी लगन गँभीर हो ॥
सखि इश्क-पियासे आशिकाँ, तजि दौलत दुनिया भीर हो ।
सखि दूलन कासे कहै, यह अटपटि प्रेम की पीर हो ॥

पलटूदास
(सं० १८५०)

ये वैश्य-कुल में उत्पन्न हुए थे। इनकी जन्मतिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। शाहंशाह शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के ये समकालीन थे। इनके गुरु श्रीगोविन्दजी थे जिन्होंने भीखा साहब से दीक्षा ली थी। विचार-स्वातंत्र्य के कारण अयोध्या के ईर्ष्यालु वैरागियों ने इन्हें जीवित ही जला दिया था। पलटूदास की कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता की बानगी देखिए—

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत?
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए।
धिक जीवन है तोर कंत बिन दिवस गँवाए॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोबन की माती।
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती॥
लगै न तेरो चित्त कन्त को नाहिं मनावै।
का पर करै सिंगार फूल की सेज बिछावै॥
पलटू ऋतु भरि खेलि लै फिर पछितैहै अंत।
क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत॥

———o———

कुछ अन्य सन्त कवि

पिछले पृष्ठों में कुछ प्रमुख सन्त कवियों का परिचय दिया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य सन्त कवि भी हुए हैं, जिनकी नामावली नीचे दी जाती है।

१—शेख़ फ़रीद (सं० १२३०)
२—सुथरादास (सं० १६४०)
३—लालदास (सं० १७००)
४—बाबालाल (सं० १७००)

५—हरिदास (सं० १७००)
६—स्वामी प्राणनाथ (सं० १७१०)
७—रज्जब (सं० १७१०)
८—दरिया साहब (बिहार वाले, सं० १७३१)
९—बुल्ला साहब (सं० १७५०)
१०—गुलाल साहब (सं० १७५०)
११—केशवदास (सं० १७५०)
१२—बालकृष्ण नायक (सं० १७६५)
१३—भीखा साहब (सं० १७७०)
१४—रामचरन (सं० १७७५)
१५—रामरूप (सं० १८०७)
१६—सहजानन्द (सं० १८३७)
१७—तुलसी साहब (हाथरस वाले, सं० १८४५)
१८—गाजीदास (सं० १८७७)

———०———

प्रेम-काव्य

निर्गुनिया सन्तों की अटपटी अखंड वाणी ने जनता की प्रसुप्त विशुद्ध धार्मिक भावना को झकझोर अवश्य दिया, किन्तु अलसाई आंखों में निराकार परब्रह्म का विराट् रूप देखने की क्षमता उत्पन्न न हो सकी। खण्डन-मण्डन की तीव्र भर्त्सना कर्ण-कुहरों में नव सन्देश प्रविष्ट कराने में समर्थ भले ही हो सकी, किन्तु सहानुभूतिपूर्ण प्रेम-प्रभाती की सरस तरंग हृदय को आप्लावित न कर पाई। संघर्ष-सुरा का अवसाद खुमार में अवश्य परिवर्त्तित हो गया किन्तु पूर्णतः धुल न पाया। ज्ञान-मार्गी सन्त कवियों की भक्ति-भावना में यद्यपि कोरे बुद्धिवाद को प्रश्रय न मिला था, तथापि हृदय की स्वच्छन्दता पर मस्तिष्क का नियन्त्रण अवश्य था। कबीर तथा अन्य निर्गुण मतावलम्बी सन्त कवियों ने सच्ची साधना द्वारा ज्ञान-चक्षुओं

से अपूर्व दिव्य दृष्टि प्राप्त की, किन्तु जन-साधारण के लिए ज्ञान-सोपान पर संतुलित मनोवृत्तियों के साथ चढ़ना सहज कार्य न था। 'राम की बहुरिया' बनकर आध्यात्मिक अभिसार के लिए कबीर ने प्रस्थान अवश्य किया, किन्तु श्रद्धालु भक्तों के नैना 'सैना बैना' की ओट में ही अटके रह गए। महाकवि अकबर ने कहा है—

'इश्क को दिल में दे जगह 'अकबर'
इल्म से शायरी नहीं आती'

अस्तु, ज्ञान मार्ग के बीहड़ वन से कविता को निकालकर सूफ़ी कवियों ने उसे प्रेम के प्रशस्त पथ पर प्रेरित किया। शून्य की सेज पर सोती हुई कविता-कामिनी को धरातल पर उतारकर प्रेम-कथा सुनाई गई। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने अपने प्रेमपूरित हृदयोद्‌गारों की अभिव्यक्ति द्वारा दो विरोधी संस्कृतियों का समन्वय करने का भरसक प्रयत्न किया, जिसका प्रमुख श्रेय मुसलमान कवियों को है। भारतीय वेदान्त और सूफ़ी मत में बहुत कुछ साम्य होने के कारण इस प्रेम-काव्य-वल्लरी को फलने-फूलने में बड़ी सहायता मिली।

प्रेम-गाथा का प्रादुर्भाव अलाउद्दीन खिलजी के समय में हुआ, जब कि धार्मिक असहिष्णुता का बोलबाला था। हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किए जाते थे। असमानता के व्यवहार से असहाय हिन्दू क्षुब्ध और असंतुष्ट थे। आमोद-प्रमोद से वंचित हिन्दुओं को पालकी अथवा घोड़े पर बैठकर यात्रा करना वर्जित था। किन्तु सच्चे साधु-संतों और साहित्यकारों पर विद्वेष का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता, अतः शासक की संकीर्ण मनोवृत्ति के विपरीत मुल्ला दाऊद ने नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा 'चन्दाबन' नामक प्रबन्ध काव्य में कही जो अप्राप्य है। मुल्ला दाऊद के अतिरिक्त रज्जन ने भी 'प्रेमबन जोव निरंजन' की रचना की। रज्जन का जन्म-काल १४६२ वि० और मृत्यु-समय १५८१ माना गया है। हिन्दी में प्रेमाख्यानों की परंपरा कुतुबन शेख़ से प्रारम्भ होती है।

———o———

कुतुबन

ये शेरशाह के पिता हुसेनशाह के आश्रित कवि तथा चिश्ती-वंशज शेख़ बुरहान के शिष्य थे। सूफ़ी प्रेमकथाकारों में इनका नाम सर्व प्रथम आता है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के मध्य में (सं० १५५०) में इनका आविर्भाव-काल माना जाता है। दोहा-चौपाई की पद्धति पर 'मृगावती' नामक प्रेम-काव्य की रचना इन्होंने सं० १५६६ में की थी। लौकिक प्रेम-कथाओं को लेकर कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। कंचनपुर की रूपवती राजकुमारी मृगावती पर चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव की अनुरक्ति हो जाती है। प्रणय-पीड़ा में पागल होकर वह राजकुमारी को प्राप्त करने की प्राणपण से चेष्टा करता है। अनेक कष्ट सहकर किसी प्रकार जब वह राजकुमार मृगावती के समीप तक पहुँचने में समर्थ होता है तब उड़न-विद्या-विशारदा राजकुमारी उसे तरसाने के लिए उड़कर अन्यत्र चली जाती है। प्रणयी राजकुमार योगी का वेश बनाकर राजकुमारी की खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में एक राक्षस के पंजे से वह रुकमिनी नामक सुन्दरी का उद्धार करता है। रुकमिनी का पिता राजकुमार के शौर्य-साहस पर मुग्ध होकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर देता है। अन्त में राजकुमार की मृगावती से भी भेंट होती है, तथा दोनों पत्नियों को लेकर वह अपने देश पहुँचता है। कुछ दिनों आनन्दपूर्वक राज्य करके आखेट के समय हाथी से गिरकर उसकी मृत्यु हो जाती है और मृगावती तथा रुकमिनी दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं। फ़ारसी-मसनवी की शैली पर इस पुस्तक की रचना हुई है, तथा आद्योपान्त आध्यात्मिक रहस्यवाद का निरूपण करने का सफल प्रयास कवि ने किया है। प्रेमी राजकुमार को साधक का रूप देकर उद्देश्य-प्राप्ति के कंटकाकीर्ण पथ पर प्रेरित कर अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए, कवि ने सूफ़ी साधना को पुष्ट किया है। कुतुबन की रचना के दो उदाहरण देखिए—

साह हुसेन अहै बड़ राजा।
छत्र सिंहासन उनको छाजा॥
पंडित और बुधिवंत सयाना।
पढ़ैं पुरान अरथ सब जाना॥
धरम जुधिष्ठर उनको छाजा।
हम सिर छांह कियो जगराजा॥
दान देह औ गनत न आवै।
बलि औ करन न सरवरि पावै॥

× × × ×

रुकमनि पुनि वैसेहि मर गई।
कुलवंती सत सों सति भई॥
बाहर वह भीतर वह सोई।
घर बाहर को रहै न सोई॥
विधि का चरित न जाने भानू।
जो सिरजै सो नाहिं विरानू॥
गंगतीर लैके सर रचा।
पूजी अवध कही जो वाचा॥
राजा संग जरी रानी चौरासी।
ते सब के गए इन्द्रकविलासी॥

मृगावती और रुकमिनी, लैके जरी कुँवर के साथ।
भसम भई जर छिनक में, चिन्ह न रहा गात॥

मंझन

प्रेमकाव्य-परंपरा के अन्तर्गत कुतुबन के बाद मंझन का नाम आता है। इनके सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता। इन्होंने 'मधुमालती' नामक प्रेमकाव्य की रचना की थी जिसकी केवल एक खंडित प्रति प्राप्

हुई है। इसका रचना-काल अनुमानतः सं० १५५०–६५ के अन्तर्गत माना जाता है। 'मृगावती' की अपेक्षा 'मधुमालती' में काव्य-सौष्ठव का अच्छा परिचय मिलता है। इसमें मंझन की सुकोमल कल्पना, वर्णन-चातुरी और सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का आभास पद-पद पर पाया जाता है। रोचक किन्तु जटिल कथावस्तु का भावनात्मक चित्रण कवि ने बड़ी सहृदयता और सुन्दरता से किया है।

कवेसर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर का महारस की राजकुमारी मधुमालती से प्रेम हो जाता है। किन्तु मधुमालती की माता रूपमंजरी युगल प्रेमियों के प्रणय-सम्बन्ध से असंतुष्ट होने के कारण अपनी पुत्री को चिड़िया बनाकर उड़ा देती है। उड़ते-उड़ते वह ताराचन्द नामक राजकुमार के पास पहुँचती है। मधुमालती की कष्ट-कथा सुन कर कुँवर ताराचन्द उसे मनोहर से मिलाने का वचन देता है। स्वर्ण-पिंजर में पक्षी-रूपी माधुमालती को लेकर ताराचन्द महारस पहुँचता है। रूपमंजरी मन्त्र-बल से पुनः अपनी पुत्री को पूर्व रूप प्रदान कर उसका विवाह ताराचन्द से करने का प्रस्ताव करती है, किन्तु ताराचन्द मधुमालती को अपनी धर्म-भगिनी बताकर इस सम्बन्ध को अस्वीकार कर देता है। इधर राजकुमार मनोहर वियोग-वन्हि में विदग्ध होकर मधुमालती की खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में एक राक्षस का बध करके प्रेमा नामक सुन्दरी का उद्धार करता है। प्रेमा प्रसन्न होकर मनोहर को मधुमालती से मिलाने का आश्वासन देती है। प्रेमा को मनोहर उसके पिता के पास पहुँचा देता है। प्रेमा का पिता मनोहर की वीरता पर मुग्ध होकर अपनी पुत्री का विवाह मनोहर के साथ कर देने का प्रस्ताव करता है, किन्तु मनोहर उसे अपनी धर्म-बहिन बताकर वैवाहिक सम्बन्ध टाल देता है। अन्त में अनेक आपत्तियों के पश्चात् मनोहर के साथ मधुमालती का विवाह सानन्द सम्पन्न होता है। कथा का अग्रभाग खण्डित होने के कारण कथा-सूत्र को देखते हुए प्रतीत होता है कि आगे चलकर प्रेमा और ताराचन्द का परिणय भी सफल सिद्ध हुआ होगा।

उपकथाओं का आयोजन इस पुस्तक की विशेषता है। यह भी मसनवी के

ढङ्ग पर लिखी गई है तथा पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रक्खा गया है। यही क्रम आद्योपान्त चलता है। निःस्वार्थ प्रेम और त्याग का अपूर्व आदर्श उपस्थित कर कवि ने कथा को उपदेशप्रद बना दिया है। विरह का निरूपण करने में मंझन ने अपने हृदय की कोमल-वृत्ति का अच्छा परिचय दिया है। आध्यात्मिक अन्योक्तियों के साथ-साथ सूफ़ी मत के सिद्धान्तों का भी सुन्दर सन्निवेश कर दिया गया है।

नीचे 'मधुमालती' से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं, जिनसे मंझन की काव्य-प्रतिमा का अच्छा परिचय प्राप्त होगा।

बिरह-अवधि अवगाह अपारा।
कोटि माहिं एक परै न पारा॥
बिरह कि जगत अँबिरथा जाही।
बिरह रूप यह सृष्टि सबाही॥
नैन बिरह-अंजन जिन सारा।
बिरह रूप दरपन संसारा॥
कोटि माहिं बिरला जग कोई।
जाहि सरीर बिरह-दुख होई॥
रतन कि सागर सागरहि? गजमोती गज कोई।
चँदन कि बन बन ऊपजै, बिरह कि तन तन होई॥

× × ×

घुनि पिंजर उर लायेस धाई।
देख धधाकत रहे न रोआई॥
खिन-खिन निरखि निरखि कतवारी।
नैन नीर नहिं रहहिं पनारी॥
सखी कहहिं तजु रानी उदासा।
करहु हरख मन पूजी आसा॥
अही जो दुख की दही निरासी।
सूर उदै जिम कमल बिगासी॥

दुख करार तरु निज तन भाजा।
सुख मयूर सिखर चढ़ि गाजा॥
घर घर नगर बधाई आनन्दित सब परिवार।
मधुमालति कर बहुरि जनि भा दुसरें अवतार॥

जायसी

मालिक मुहम्मद जायसी की जीवन-वृत्ति के सम्बन्ध में अधिक सामग्री नहीं मिलती। ये अवध प्रान्त के जायस नामक क़सबे के निवासी थे और सैयद मुहीउद्दीन के शिष्य थे। इनका जन्म-काल 'आख़िरी कलाम' के अनुसार सन् ९०० हिजरी (सं० १५५०) निर्धारित किया गया है। शीतला में इनकी एक आँख जाती रही थी तथा चेहरे पर भी दाग़ पड़ गए थे। जायसी के नेत्रहीन तथा कुरूप होने के कारण शेरशाह इन्हें देखकर हँस दिया था, जिस पर शान्त भाव से इन्होंने केवल इतना ही कहा कि—'मोहिक हँससि कि कोहरहिं' अर्थात् मुझ पर हँसता है कि मेरे निर्मायक कुम्भकार पर। ये उदारचित्त सूफ़ी सन्त थे। धार्मिक कट्टरता का इनमें सर्वथा अभाव था। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का समन्वयमूलक सन्निवेश इन्होंने अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य पद्मावत में बड़ी सुन्दरता से किया है। बचपन से ही साधु-सन्तों के सत्संग का सुअवसर प्राप्त होने के कारण इन्हें विविध विषयों का ज्ञान सहज ही हो गया था। वेद, पुराण, कुरान आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों का परिचय इन्हें साधुओं के संसर्ग से ही हुआ था। हठयोग, ज्योतिष, रसायन इत्यादि की भी इन्हें अच्छी जानकरी थी। अमेठी-नरेश इनसे बहुत प्रभावित थे। जायसी के आशीर्वाद से अमेठी के राजा को पुत्र-रत्न लाभ हुआ था। मृत्यु-पश्चात् जायसी को अमेठी में ही दफ़नाया गया, जहाँ उनकी समाधि अभी तक बनी हुई है। इनका मृत्युकाल रज्जब ९४९ हिजरी माना गया है।

जायसी : कवि

'एक आँख कवि मुहमद गुनी' का हिन्दी-साहित्य में अन्योक्तिकार (Allegorist) के नाते वही स्थान है जो 'फ़ेयरी क्वीन' (Faerie-Queene) के रचयिता स्पेन्सर (Spenser) का अँगरेज़ी-साहित्य में है। जायसी के 'पद्मावत' और स्पेन्सर की 'फ़ेयरी क्वीन' में, कई दृष्टियों से सादृश्य है। धर्म के मंच पर अन्योक्ति के आवरण में रासरंग-रति-विरत 'फ़ेयरी क्वीन' के पात्र-पात्रियाँ जिस प्रकार, अन्त में ईश्वरोन्मुख हो जाते हैं, पद्मावत में भी इसी प्रकार शृङ्गारमूलक प्रवृत्तियों का केन्द्रीकरण अन्ततः साधना-संलग्न भक्ति-भावना में होता है। 'फ़ेयरी क्वीन' और 'पद्मावत' की तुलनात्मक समीक्षा यहाँ उद्दिष्ट नहीं है, केवल प्रसंगवश निर्देशमात्र कर दिया गया है।

प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों में जायसो सर्वोपरि और सर्वोत्तम है। अवधी को अपनाकर इन्होंने उसे प्रबन्ध काव्य के लिए अत्यन्त उपयोगी भाषा सिद्ध कर दिया। दोहा-चौपाई की पद्धति यद्यपि कोई नई योजना न थी, इससे पूर्व सहजयानी सिद्ध भी अपने ग्रंथों में इस काव्यशैली का प्रतिपादन कर चुके थे, तथापि जायसी ने इस विधान का पद्मावत में इतने सुन्दर ढंग से सन्निवेश किया कि आगे चलकर 'रामचरितमानस' के अमर रचयिता ने भी इसका समुचित सदुपयोग किया।

जायसी-रचित प्रेम-काव्य 'पद्मावत' का हिन्दी-साहित्य में विशेष सम्मान है। कल्पना तथा इतिहास के सुन्दर सम्मिश्रण से इस कथा-काव्य का निर्माण हुआ है। कथा-वस्तु के चयन तथा उसके निर्वाह में जायसी ने अपनी प्रबन्ध-पटुता का अच्छा परिचय दिया है। चित्तौरगढ़ के प्रति हिन्दुओं के हृदयों में युग-युग से अपरिमित आदर और आकर्षण रहा है। सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा पद्मिनी की अक्षय कीर्ति भी चिरकाल से हिन्दू-समाज के लिए गौरव की वस्तु रही है। अतः हिन्दू-चरित्रों और आदर्शों का निरूपण कर जायसी ने पद्मावत को अपूर्व लोक-प्रियता प्रदान की है। पतिव्रता हिन्दू नारी का पुनीत आदर्श, राजपूतों की शौर्य-शालीनता, त्याग,

प्रेम, विरह, सौन्दर्य, शृङ्गार आदि अनेक उपकरणों से जीवन की आध्यात्मिक तथा लौकिक कथा को जायसी ने अभिनव चित्रों से सजाया है।

पद्मावत की कथा का संक्षिप्त परिचय स्मृति-खण्ड में जायसी इस प्रकार देते हैं—

सिंहल द्वीप पदमिनी रानी।
रत्नसेन चितउरगढ़ आनी॥
अलउदीन देहली सुलतानू।
राघो चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंका आई।
हिन्दू तुरकन भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै।
लिखि भाखा चौपाई कहै॥

चित्तौर का राजा रत्नसेन हीरामन सुए से सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की कन्या, रूपराशि पद्मावती का बखान सुनकर, उसे प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से, सिंहल द्वीप की ओर जोगी बनकर चल देता है। मार्ग में अनेक आपत्तियों का सामना करके वह पद्मिनी के देश में पहुंचता है। सिंहल द्वीप का प्रवेश-द्वार अत्यन्त दुर्गम तथा अभेद्य होने के कारण रत्नसेन शिव से सहायता की याचना करता है। भीषण युद्ध के पश्चात् अन्त में शिव के प्रताप से रत्नसेन को सफलता मिलती है। पद्मिनी के साथ विवाह संपन्न होने पर, दहेज में अमूल्य निधियाँ प्राप्त कर वह चित्तौड़ को प्रयाण कर देता है। रत्नसेन की अनुपस्थिति में, उसकी पूर्व पत्नी नागमती विरह-व्यथा में सिसक-सिसक कर प्रिय-आगमनार्थ व्यग्रता से प्रतीक्षा करती रहती है। रत्नसेन को पाकर वह सौत के प्रति उठे हुए स्वाभाविक ईर्ष्यालु भावों को भूल जाती है, और दोनों रानियाँ स्नेहपूर्वक रत्नसेन के साथ आमोद-प्रमोद में जीवन बिताती हैं। इसी बीच राघव चेतन नामक पंडित की ज्योतिष-प्रवंचना पर कुपित होकर रत्नसेन उसे निर्वासन-दण्ड देता है। प्रपंची राघव चेतन अलाउद्दीन के पास पहुँचकर उसे पद्मिनी के सौन्दर्य-

सुधा का लोभ दिखाकर उससे चित्तौर पर आक्रमण करा देता है। गोरा-बादल की अद्भुत वीरता और विलक्षण चातुरी से अलाउद्दीन का मनोरथ विफल हो जाता है। रत्नसेन को सुलतान की क़ैद में बन्दी देखकर देवपाल पद्मिनी से प्रणय-प्रार्थना करता है। स्वतंत्र होकर रत्नसेन देवपाल को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारता है। दोनों सुभट योद्धा घोर संग्राम के पश्चात् वीरगति प्राप्त करते हैं। पद्मावती और नागमती दोनों पति के शव के साथ सहमरण-व्रत पालन करती हैं।

आध्यात्मिक अन्योक्ति की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो पद्मावत की आध्यात्मिकता पर व्याघात होता है। वर्णनात्मकता के बीहड़ वन में आध्यात्मिकता भटक-भटक कर चलती है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत, लौकिक और पारलौकिक का सन्तुलित समन्वय नहीं हो पाया। प्रबन्धात्मकता के प्रवाह में जायसी बहे चले जाते हैं और सहसा जैसे चौंककर आध्यात्मिक-संकेत का ध्यान आते ही वे अध्यात्मवाद की चर्चा करने लगते हैं। परिणामस्वरूप प्रबंधात्मकता में मोच-सी आ जाती है। फिर भी जायसी का प्रयत्न अन्य अन्योक्तिकारों की अपेक्षा अधिक सफल और सराहनीय है।

जायसी का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य की एक अनुपम निधि है। विप्रलम्भ शृङ्गार का प्रतिपादन प्रायः सभी सुप्रसिद्ध कवियों ने अपने काव्यों में किया है। विरह-दशा के विभिन्न चित्र हमें मिलते हैं। कहीं तो विरहिणी अन्तस्तल में धधकती भट्टी को तुषार-मण्डित ज्वालामुखी के समान छिपाए रहती है। जहाँ—

न तड़पने की इजाज़त है न फ़रियाद की है।
घुट के मर जाऊँ ये मरज़ी मेरे सैयाद की है॥

वाली उक्ति चरितार्थ होती है। कहीं पर विरहिणी के नयन सावन-घन बनकर निरंतर झरते रहते हैं। ख़ुसरो के शब्दों में विरह-वन्हि को बुझाने वाला जल भी आँसू बनकर बाहर निकलता रहता है। कहीं वह सिसकती है तो कहीं फूट-फूट कर रोदन करती है और कहीं-कहीं पर तो वियोगिनी क़हर बरपा कर देती है। रीति-काल के कवि और उर्दू के शायरों के वर्णन प्रायः

इसी कोटि के हैं। नागमती के नयन भी 'ओरी' के समान टपकते रहते हैं, किन्तु उनसे बाढ़ नहीं आ जाती। एवरेस्ट की चोटी उस नयन-नीर में डूब नहीं जाती। नागमती के नाले पुरअसर ज़रूर हैं पर वे इस आसमान के नीचे दूसरा आसमान बना देने की क्षमता नहीं रखते। काले भ्रमर और काग द्वारा वह अपने प्रिय के पास संदेश पहुँचाती है—

पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम लाग॥

जायसी की यह उक्ति हृदय में पीर जगा देती है। इस पर आप हँस नहीं सकते। नागमती का क्षीण स्वर कठिनाई से सुनाई देता है, किन्तु वहाँ 'माइक्रोफ़ोन' लगाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। टूटी हुई कमल-नाल के मध्य बारीक सूत से कमर की कृशता का आभास कराना 'नाज़ुक ख़याली' है, किन्तु यह कह देना कि—

कौन कहता है सनम तेरे कमर है।
कहाँ है और कैसी है किधर है॥

एक हास्यास्पद-सी बात होगी।

नागमती की विवशता पर जी भर आता है, जब वह कहती है—

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि मैं भेंटों कंत तुम्ह, ना मोहि पावँ न पाँख॥

कितनी असमर्थ है बेचारी। पर्वतों के ऊँचे शिखर उस की राह में अड़े हैं, अगम सिन्धु और बीहड़ वन का सामना है, फिर बेचारी को पंख भी तो उपलब्ध नहीं हैं। भला अपने प्रियतम से वह किस प्रकार भेंटे। मिलन-मार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं। इस अबला के सामने मिलन की बड़ी विकट समस्या है। विरहिणी व्रजांगनाओं की भाँति, कन्हैया के कुंज में छिप जाने मात्र से नागमती अधीरता और विरह का स्वाँग नहीं भरती, नागमती का विरह सलोने श्याम के साथ आँख-मिचौनी का खेल नहीं है। सूर की वियोगिनें सखा-भाव के नाते खीझ और निराशा से तंग आकर अपने प्रिय को जली-कटी भी सुना डालती हैं। वे श्याम को ही नहीं, कालों

की जात को ही कोस डालती हैं। इस प्रकार वे अपना भींकना तो भींक लेती हैं, किन्तु बेचारी नागमती अपने प्रियतम को 'निठुर' के सिवा अन्य किसी कटु संबोधन से संबोधित नहीं करती। दिवाली के आगमन पर वह बस यही कहती है—

अबहुँ निठुर आवहु एक बारा।
परब देवारी होई संसारा॥

वियोगिनी व्रज-वनिताओं ने मधुकर को नाना प्रकार के उपालम्भ दिए हैं, किन्तु शरद जुन्हाई को देखकर नागमती उसे कोसने नहीं लगती—

कातिक सरद चन्द उजियारी।
जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥

कार्तिकीय विभावरी विहँस रही है, संसार शीतल है किन्तु मैं विरह में जल रही हूँ।

तुलसी की सीता अत्यन्त श्लील, सौम्य हैं, अतः उनका विरह-वेश भी पूजनीय है। इस विरह में क्षमा की-सी शालीनता है। वे जलती हैं, किन्तु इस जलन का दाह व्यक्त नहीं होता। इसमें आह और कराह नहीं है, दर्द भरे 'नाले' नहीं हैं। सीता नहीं चाहती कि राम की विरह-वन्हि में वे निरंतर जलती रहें। नागमती के समान—'फिर-फिर तजेसि न भूजहि बारू'—बालू का चना बनना उन्हें पसन्द नहीं। नागमती भी अपने प्रिय से मिलने को अत्यन्त व्याकुल है, किन्तु उसकी टीस में मधुरता है, उसकी कराहट में एक अद्‌भुत संगीत निहित है। उस वियोगिनी को देखकर कष्ट अवश्य होता है, पर जी यही कहता है कि विरहिणी हो तो ऐसी हो। जगदम्बा (सीता) के विरह में माधुर्य-भाव मर्यादा के मग से एक डग भी इधर-उधर नहीं विचलित हो सकता। सीता के प्रेमजन्य विरह में दाम्पत्य प्रेम की विभिन्न भावनाओं का पूर्ण प्रस्फुटन संभव नहीं। वियोग के रोग की बिभीषिका का पूर्ण चित्र तो जायसी-कृत नागमती में ही मिल सकता है। सीता को अपने विरह में भी संतोष था। वे जानती थीं कि राम सदा उन्हीं के रहेंगे। छद्मवेशिनी शूर्पणखा की नाक वे स्वयं अपनी उपस्थिति में विकृत

होते देख चुकी थीं। उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम के अटल अनुराग पर पूर्ण विश्वास था, किन्तु नागमती को तो अपनी सौन्दर्य-राशि-सौत का भी भारी भय था। नागमती को यह भी आशा नहीं कि उसका स्वामी पद्मिनी के प्रेम-पाश से मुक्त भी हो सकेगा कि नहीं।

नागमती शाम होते ही, अकुलाहट से अपने स्वामी के आगमनार्थ टुकुर-टुकुर पथ हेरती रहती है—

साँझ भए फुरि-फुरि पथ हेरा।
कौनि सी घरी करै पिउ फेरा॥

न जाने किस वक्त उसका बिछुड़ा प्रीतम लौट आए। वह सदा सतर्क रहती है। आहट मात्र से उसका उत्कंठित हृदय धड़कने लगता है, किन्तु वह निर्दय नहीं आता।

स्वाति बूँद चातक मुख परे।
समुद सीप मोती महँ भरे॥
सरिवरि संवरि हंस चलि आए।
सारस कुरलहिं खंजन देखाए॥
भा परगास कांस बन फूले।
कन्त न फिरे, बिदेसहि भूले॥

चातक की तृषा शान्त हो गई। सरोवरों में हंस-दल केलि करने लगे, वनों में काँस भी फूल उठे किन्तु पता नहीं उसके 'कन्त' कहाँ विदेश में बिला गए।

जायसी ने जिस प्रेम की पीर का अनुभव किया था उसका आभास नागमती के विरह-वर्णन में स्पष्ट मिलता है। शब्दों की सादगी और भावों का भोलापन देखते ही बनता है। नागमती का चित्रण जायसी ने आत्मानुभूति के अकृत्रिम किन्तु गहरे रंगों से किया है। प्रेमाख्यानों में इससे बढ़कर विरह-जन्य व्यथा का वर्णन कदाचित् ही कहीं किया गया हो।

———o———

उसमान

जायसी के पश्चात् चित्रावली के रचयिता उसमान कवि ने प्रेमकाव्य-धारा को प्रवाहित रखने का प्रयत्न किया। ये हाजीबाबा के शिष्य और सम्राट् जहाँगीर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम शेख़ हुसेन था। ग़ाज़ीपुर इनका निवासस्थान था। चित्रावली की रचना सन् १०२२ हि० सं० १६७० वि० में हुई। यह प्रेमगाथा भी मसनवी के ढंग पर लिखी गई है। चित्रावली, जायसी कृत पद्मावत की अनुकृति-सी प्रतीत होती है। अन्तर केवल यही है कि उसमान की कथा-वस्तु सर्वथा काल्पनिक है। चित्रावली में विशद वर्णन तथा घटना-वैचित्र्य का बाहुल्य है। कवि के ज्ञान का परिचय भी इस ग्रंथ से मिलता है। रूम, साम, मिस्र, इस्तंबोल, काबुल, खुरासान, बदख़्शाँ, आदि अनेक स्थानों का 'जोगी ढूँढ़न खण्ड' में उल्लेख किया गया है। अँगरेज़ों के सम्बन्ध में भी उन्होंने चर्चा की है।

वलंदीप देखा अंग्रेजा।
तहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा॥
ऊँच नीच धन संपति हेरा।
मद बराह भोजन जेहि केरा॥

चित्रावली में रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली तथा नेपाल के राजा धरणीधर पंवार के पुत्र सुजान की प्रणय-कथा का वर्णन है। चित्रावली के सम्बन्ध में लिखा है—

कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ और सुनत सुहाई॥
कहौं बनाय जैस मोहिं सूझा। जेहि जस सूझ सो तैसे बूझा॥
बालक सुनत कान रस पावा। तरुनन्ह के तन काम बढ़ावा॥
बिरिध सुनै मन होइ गियाना। यह संसार धंधा कै जाना॥
जोगी सुनै जोग पढ़ पावा। भोगी कहें सुख भोग बढ़ावा॥
इच्छा तरु एक आह सुहावा। जेह जस इच्छा तैस फल पावा॥
मंजुल मुकुर बिमल कर लेखा। जो देखै सो आपुहि देखा॥

कवियन आगे दीन होइ, बिनति करौं गहि पाय।
अच्छर टूट संवारेहु, दूषन लेहु छिपाय॥

शेख़ नबी

(सं० १६७६)

ये जौनपुर के मऊ नामक स्थान के निवासी थे। जहाँगीर के राजत्व-काल में ये विद्यमान थे। 'ज्ञानदीप' नामक प्रेम-कथा की इन्होंने रचना की थी। इसमें रानी देवजानी और राजा ज्ञानदीप की प्रेम-कहानी कही गई है। नबी के समय में प्रेम-काव्य-धारा का प्रवाह अत्यन्त क्षीण हो चला था। प्रेम-गाथा-परम्परा के ये अंतिम प्रतिनिधि थे।

क़ासिमशाह

(सं० १७८८)

शेख़ नबी के पश्चात् मसनवी-शैली पर कुछ छुटपुट प्रयत्न होते रहे। क़ासिमशाह बाराबंकी के रहने वाले थे। इन्होंने 'हंस जवाहर' नामक प्रेमाख्यान की रचना की थी।

कथा का सारांश कवि के शब्दों में देखिए—

कथा जो एक गुपुत महँ रहा। सो परगट उघारि मैं कहा॥
हंस जवाहिर बिधि औतारा। निरमल रूप सो दई सँवारा॥
बलख नगर बुरहान सुलतानू। तेहि घर हंस भए जस भानू॥
आलमसाह चीनपति भारी। तेहि घर जनमी जवाहिर बारी॥
तेहि कारन वह भएउ बियोगी। गएउ सो छाँड़ि देस होइ जोगी॥
अंत जवाहिर हंस घर आनी। सो जग महँ यह गयउ बखानी॥
सो सुनि ज्ञान-कथा मैं कीन्हा। लिखेउ सो प्रेम, रहै जग चीन्हा॥

नूरमुहम्मद

(सं० १८०१)

इन्होंने इन्द्रावती नामक एक सुन्दर, सरस प्रेम-कहानी लिखी थी। ये मुहम्मदशाह के समकालीन थे। फ़ारसी के विद्वान् तथा प्रतिभाशाली कवि थे। इन्द्रावती के अतिरिक्त इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। 'अनुराग-बाँसुरी' में कवि ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य का अच्छा परिचय दिया है। इनके समय में हिन्दू-मुस्लिम-वैषम्य अत्यन्त तीव्र हो चला था। हिन्दी भाषा अपनाने के कारण द्वेषवश मुसलमान इनकी भर्त्सना करने लगे थे, अतएव 'अनुराग-बाँसुरी' के प्रारम्भ में इन्होंने अपनी सफ़ाई इस प्रकार दी है—

जानत है वह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा॥
हिन्दू-मग पर पाँव न राखेउँ। का जौ बहुतै हिन्दी भाखेउँ॥
मन इसलाम मिस्किलैं माँजेउँ। दीन जेबरी करदस भाँजेउँ॥
जहँ रसूल अल्लाह पियारा। उस्मत को मुक्तावन हारा॥
तहाँ दूसरो कैसे भावै। जच्छ असुर सुर काज न आवै॥

इससे प्रतीत होता है कि मुस्लिम मनोवृत्ति संवत् १८०० के निकट हिन्दी-विरोधी हो चली थी। नूरमुहम्मद की काव्य-रचना का नमूना नीचे दिया जाता है—

मन दृग सों इक राति मँझारा।
सूझि परा मोहिं सब संसारा॥
देखेउँ नीक एक फुलवारी।
देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी॥
दोउ मुख सोना बरनि न जाई।
चन्द सुरुज उतरे भुइँ आई॥
तपी एक देखेउँ तेहि ठाऊँ।
पूछेउँ तासों तिनकर नाऊँ॥
कहा अहैं राजा और रानी।
इन्द्रावती औ' कुँवर गियानी॥

नूरमुहम्मद के पश्चात् कुछ अन्य कवियों ने भी प्रेम-काव्यों का प्रणयन किया किन्तु उनकी रचनाएँ अधिक महत्त्व की नहीं है। इनमें हरिसेवक मिश्र-रचित 'कामरूप की कथा' (सं० १८०१), प्रेमचन्द-रचित 'चन्द्रकला' (सं० १८५३), मृगेन्द्र-रचित 'प्रेम-पयोनिधि' (सं० १९१२) तथा 'चतुर्मुकुटकी कथा' और 'यूसुफ़-जुलेखा' आदि का नाम लिया जा सकता है।

× × × ×

सूफ़ी कवियों ने हिन्दी-कविता के विकास में सराहनीय प्रयत्न किया। वीरत्वकाल की अनगढ़ भाषा कबीर के समय तक अपना सुस्थिर एवं स्वस्थ-स्वरूप न बना सकी थी। जायसी प्रभृति प्रेममार्गी सूफ़ी सन्तों ने भाषा माँजकर एक ऐसी अभिनव शैली का निर्माण किया, जिसका पूर्ण परिपक्व रूप तुलसी के 'मानस' में अवतरित हुआ। मुसलमान होकर भी सूफ़ी कवियों ने भारतीयता को सहर्ष अपनाया। 'तूर के जलवे' को प्रधानता न देकर उन्होंने पर्वतराज 'कैलास' को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। कुतुबन ने हुसेन की धर्म-निष्ठा दिखाने के लिए युधिष्ठिर से उसकी तुलना की और दानवीरता का आदर्श, राजा वलि और कर्ण का उल्लेख कर उपस्थित किया। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भी इन सहृदय कवियों ने भारत के ही शैल, सरोवर, वन-उपवन, लता-द्रुम, पुष्पों तथा वृक्षों का स्मरण किया। सूफ़ी ईश्वर को प्रेमिका के रूप में मानकर उसके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते थे। क़िन्तु अपनी प्रेम-कथाओं के अन्त में प्रेम की अनुरक्ति तथा विरहाकुलता का निदर्शन कर उन्होंने अपनी प्रेम-प्रणाली का भारतीयकरण कर दिया है। उत्कट प्रेम तथा उत्कृष्ट ज्ञान का सम्मिश्रण इन कवियों की रचनाओं में उपलब्ध है। कबीर और मीरा का सम्मिलित स्वरूप हम जायसी में देख सकते हैं। जायसी के प्रतिविम्बवाद ने आधुनिक काल में छायावाद को जन्म दिया, ऐसा कहना अत्युक्ति न होगा। इसके अतिरिक्त अव्यक्त सत्ता को लौकिक कथाओं द्वारा व्यक्त करके सूफ़ी कवियों ने अगामी सगुणोपासना का आभास करा दिया।

——o——

राम-काव्य

रामकाव्यधारा के उद्‌गम स्रोत का श्रेय निर्विवाद रूप से स्वामी रामानन्दजी को दिया जा सकता है। यद्यपि इनसे पूर्व श्री-सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक महात्मा रामानुजाचार्यजी भी अपनी दिव्य वाणी से राम में रमने का सन्देश दे चुके थे, किन्तु इनके राम वैकुण्ठवासी विष्णु थे जिनके अलौकिक रूप की उपासना का प्रचार श्री रामानुजाचार्य ने किया था। रामानन्दजी ने 'श्री रामार्चन पद्धति' में अपनी गुरु-परंपरा की जो सूची दी है, उसके अनुसार रामानन्दजी से १४ पीढ़ी ऊपर होने के नाते रामानुजाचार्य का समय सं० १०७३ ठहरता है। राम-भक्ति-पद्धति की प्रस्तावना में श्री रामानुजाचार्य ने स्व-रचित 'सहस्रगीत' में लिखा है— 'दशरथस्य सुतं तं विना अन्य शरण नान्नास्मि'। शङ्कर के अद्वैतवाद की 'सोऽस्मि' ध्वनि ने विशुद्ध ज्ञान-गरिमा-मंडित चिन्तन की गहरी गुहाओं में अवश्य प्रतिध्वनि पैदा की किन्तु सांसारिक संघर्ष-रत जन-साधारण को इससे विशेष स्फूर्ति नहीं मिली। अतएव श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत द्वारा भक्ति का प्रशस्त पथ तैयार किया। श्री रामानुज के उपरान्त उनके शिष्य कुरेशस्वामी ने भी अपनी 'पंचस्तवनी' में राम-भक्ति का प्रगाढ़ परिचय दिया। किन्तु राम के लोकरंजक रूप का दिग्‌दर्शन स्वामी रामानन्द ने ही कराया। स्वामी रामानन्दजी की शिक्षा-दीक्षा वैष्णव श्री-संप्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानन्दजी द्वारा सम्पन्न हुई थी। आचार्य राघवानन्दजी के परलोकगमन के पश्चात् रामानन्दजी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर अपने मत का प्रसार किया। कहते हैं कि शाह सिकन्दर लोदी के गुरु शेख़ तक़ी से इनका वाद-विवाद हुआ। भक्ति को जाति-संकीर्णता की परिधि से निकाल कर इन्होंने इसे सरल तथा लोकोपयोगी बनाया। 'जाति-पाँति पूछे नहिं कोय, हरि को भजे सो हरि को होय' इनका मूलमंत्र था। इस धार्मिक उदारता ने रामोपासना का द्वार प्रत्येक श्रद्धालु भक्त के लिए खोल दिया। विभिन्न जातियों के व्यक्तियों ने इनका

शिष्यत्व स्वीकार किया। कबीरदास, रैदास, सेनबाई, पीपा आदि इनके प्रधान शिष्यों में हुए हैं। आगे चलकर तुलसीदास जैसे भक्त-शिरोमणि महान् कवि भी इनकी शिष्य-परम्परा में प्रविष्ट हुए।

स्वामी रामानन्द ने संस्कृत के अतिरिक्त जन-भाषा को भी अपनाया। संस्कृत में इनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं—'वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' और 'श्री रामार्चन-पद्धति'। भक्ति की उमंग में कभी-कभी ये हिन्दी के पद भी रचकर गाया करते थे। उत्कट राम-भक्त हनुमान् की स्तुति में इनके लिखे हुए पद का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

आरति कीजै हनुमान लला की।
दुष्ट दलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल-भर ते महि काँपै।
रोग सोग जाकी सिमा न चाँपै॥
अंजनी–सुत महाबल–दायक।
साधु संत पर सदा सहायक॥
बाँए भुजा सब असुर सँहारी।
दहिन भुजा सब संत उबारी॥
लछिमन धरति में मूर्छि परयो।
पैठि पताल जमकातर तोरयो॥
आनि सजीवन प्रान उबारयो।
मही सबन कै भुजा उपारयो॥
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोही।
होहु दयाल देहु जस मोहीं॥ इत्यादि।

स्वामी रामानन्द के महत्त्व का उल्लेख करके अब संक्षेप में राम-भक्ति के विकास पर विचार किया जाता है। राम के दर्शन सर्व-प्रथम हमें महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायण में होते हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने वाल्मीकि-रामायण का रचना-काल ईसा से चार या छह सौ वर्ष पूर्व माना है, परन्तु धार्मिक दृष्टि से वह बहुत प्राचीन समझा जाता है। अस्तु, वाल्मीकि-

रामायण में राम को एक महान् पुरुष के रूप में स्वीकार किया गया है। राम की महत्ता उनके लौकिक कार्य-कलाप द्वारा दरसाई गई है। अलौकिकता तथा दैवत्व का वाल्मीकि के राम में आभास तक नहीं है। राम की वन्दना अवतार के रूप में न करके वाल्मीकि ने महान् लोकनायक मानकर ही की है। वाल्मीकि के राम आदि से अन्त तक मनुष्योचित गुणों से विभूषित हैं। वन-गमन का संवाद माता को सुनाने के लिए जाते समय उनके पैरों और वाणी में कंपन हो उठता है।

बौद्ध धर्म के विकास-काल में जब बुद्ध को ईश्वरीय शक्तियों से विभूषित कर, अवतार के रूप में चित्रित करने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए, तभी से राम को भी ईश्वरत्व से मढ़कर उन्हें अलौकिकता के आसन पर आरूढ़ किया जाने लगा। यह मौर्यवंश का ह्रास-काल था और सुंगवंश अंकुरित हो रहा था। इसी समय वायुपुराण में राम को विष्णु का अवतार मानकर अंगीकार किया गया। इस प्रकार ईसा के २०० वर्ष पूर्व राम को अवतार रूप में ग्रहण करने की भावना का सूत्रपात हुआ।

ईसा के २०० वर्ष पश्चात् स्पष्ट रूप से राम की गणना विष्णु के छह अवतारों में होने लगी। किन्तु दिव्य शक्ति-संपन्न राम का विष्णु-रूप विष्णुपुराण के प्रणयन पर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी तक राम के विभिन्न परिमार्जित तथा परिवर्द्धित संस्करण होते रहे, और १४ वीं शताब्दी में रामानन्द के प्रादुर्भाव के साथ राम के उस रूप की स्थापना होगई जिसे आगे चलकर भक्त-प्रवर तुलसीदास ने अपनाया।

तुलसीदास से पूर्व भूपति नामक कवि ने सं० १३४२ में दोहा-चौपाईयों में 'रामचरित रामायण' की रचना की। इसके अतिरिक्त तुलसीदास के समकालीन कवि मुनिलाल ने भी संवत् १६४२ में रीतिशास्त्र के अनुसार राम-कथा का प्रणयन 'राम प्रकाश' नामक ग्रंथ में किया। किन्तु रामकथा-कारों में जो कीर्ति तुलसीदास को प्राप्त हुई वह पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी अन्य कवि को उपलब्ध न हो सकी।

———०———

तुलसीदास

जीवन-परिचय

हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक इतिहासकार को सखेद स्वीकार करना पड़ता है कि विश्व कवि तथा भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी तुलसीदास का प्रामाणिक तथा पूर्ण जीवन-चरित अभी तक नहीं लिखा जा सका। बहिस्साक्ष्य, अन्तस्साक्ष्य तथा जन-श्रुतियों के आधार पर ही उनके जीवन का परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की गई है। जन्मस्थान के सम्बन्ध में तो अभी तक एकमत होकर निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सका। इनके जीवन-चरित की सामग्री महात्मा रघुवरदास के 'तुलसी चरित', बाबा वेणीमाधवदास के 'गोसाईं-चरित', तथा पंडित रामगुलाम द्विवेदी, शिवसिंह सेंगर और डाक्टर ग्रिअर्सन की गवेषणात्मक खोजों से संगृहीत की गई है। इसके अतिरिक्त गोकुलनाथ की लिखी हुई 'दो सौ बावन वैष्णावन की वार्त्ता,' नाभादास की 'भक्त-माल' तथा प्रियादास की 'भक्तमाल की टीका' में तुलसीदास की जीवन-सम्बन्धी कुछ घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम* में संवत् १५५४ (गोसाईं-चरित, तुलसी-चरित), अथवा १५८६ (डा० ग्रिअर्सन) में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका बचपन का नाम रामबोला था जो वैरागी हो जाने पर तुलसीदास प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं, अभुक्त मूल में जन्म लेने के कारण इनके माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया था। जनश्रुति के अनुसार गोस्वामीजी ने उत्पन्न होते ही साधारण शिशुओं

---

* तुलसीदास के सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि वे सोरों के समीप बदरिया नामक स्थान में पैदा हुए थे, और सनाढ्य ब्राह्मण थे। इस मत की पुष्टि में प्राचीन लिखित प्रमाण भी दिए गए हैं और इसी आधार पर सोरों में तुलसीदासजी की एक बड़ी प्रतिमा भी स्थापित की गई है। इस विषय में कुछ साहित्य भी प्रकाशित हुआ है, जो कि विचारणीय है। लेखक—

की भाँति रोदन न कर केवल 'राम-राम' का उच्चारण किया। साथ ही एक आश्चर्यजनक बात यह भी थी कि देखने-भालने में ये पाँच वर्ष के बालक के समान लगते थे तथा इनकी सम्पूर्ण दन्त-मुक्तावली भी अपनी धवल छटा छिटकाती थी। पिता ने नन्हें तुलसी को अनिष्टकारी समझकर उसके प्रति उपेक्षा का व्यवहार किया, किन्तु माँ की ममता कोमल शिशु के निराश्रित रूप में परित्याग करने का निर्मम या निर्दय संकल्प न कर सकी। अतएव उसने मुनिया नामक परिचारिका को बच्चे के भरण-पोषण का भार सौंप दिया तथा मुनिया बालक को लेकर अपनी ससुराल चली गई। मुनिया की मृत्यु हो जाने पर पाँच वर्ष के बालक तुलसी के पिता को समाचार भेजा गया कि वे आकर उसे ले जायँ, किन्तु कठोर-हृदय पिता ने उसे ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। ऐसी दशा में अनाथ तुलसी के नाथ केवल राम ही थे। सौभाग्य से बाबा नरहरिदास की आश्रय-छाया निराश्रित तुलसी को प्राप्त हो सकी और इन्हीं बाबाजी की संरक्षा में तुलसी का प्रारंभिक पठन-पाठन सम्पन्न हुआ। राम-कथामृत का रसास्वादन भी इन्हें बाबा नरहरिदास-द्वारा ही उपलब्ध हुआ। कुछ समय के बाद गोस्वामीजी बाबा नरहरिदास के साथ काशी में गंगातट पर स्वामी रामानन्दजी के आश्रम पर रहने लगे। वहाँ पर प्रकाण्ड पण्डित शेष सनातनजी से इन्होंने वेद, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि का पूर्ण परिचय प्राप्त कर विद्या-लाभ किया। गहन अध्ययन के पश्चात् तरुण तुलसीदास काशी से विदा लेकर अपने जन्म-स्थान राजापुर पहुँचे। किन्तु वहाँ उनकी परिवार के किसी भी सदस्य से भेंट न हो सकी, क्योंकि सभी इनकी अनुपस्थिति में ही स्वर्ग सिधार चुके थे। हाँ, अतीत स्मृति का भग्नावशेष, खँडहरमात्र घर रह गया था। पण्डित-प्रवर तुलसीदास यमुना-तट पर राम-कथा कहकर संतोष से जीवन यापन करने लगे।

संयोग से यम-द्वितीया स्नान के लिए आए हुए तारपिता ग्राम के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण की तुलसीदास से भेंट हुई और उन्होंने तुलसी की विद्वत्ता पर मुग्ध होकर अपनी रूपवती कन्या 'रत्ना' का विवाह उनके साथ कर दिया।

कवि-जीवन का प्रभात प्रणय-नीड़ में, विरह-वायु के झकोरों और रूप की रेशमी रश्मियों के सुखद स्पर्श से होता है। विमुग्ध विहग की तरह कवि अपनी कल्पना के कोमल पंख फैलाता है और विस्तृत व्योम को किसी विहंग-बाला के वियोग में, विदग्ध उर की करुण रागिनी से मुखरित कर देता है। तुलसी की कवित्व शक्ति का प्रादुर्भाव भी ठीक इसी प्रकार हुआ। रत्ना की रट में दीवाना होकर प्रलयंकरी रात्रि में भी यौवन के उद्दाम वेग की भाँति उमड़ती हुई नदी को पार कर यह पत्नी का पुजारी अपनी सुसराल जा पहुँचा। सोचा था, प्रियतमा की रूप-सुधा से तृषित लोचनों की प्यास बुझाऊँगा, किन्तु मिलन होते ही आशा-लता पर भयंकर तुषार पड़ गया। रत्ना की एक मीठी झिड़की ने इनकी कविता-धारा का सारा प्रवाह ही बदल दिया।

लाज न लागत आपको दौरे आएहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तौ भव-भीति॥

यदि रत्ना की ऐसी लताड़ न पड़ी होती तो सम्भव है, हमारा यह सदाचार-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत महान् कवि भी अपनी कविता-कामिनी को विलासिता के वसनों से सजाता—जैसा कि विद्यापति आदि कवियों ने किया था। किन्तु अब रत्ना की रट छोड़कर ये राम में रम चले। जिस कार्य को महर्षियों के महोपदेश वर्षों में भी न कर पाते उसे प्रणयिनी की एक मीठी चुटकी ने क्षण भर में कर दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक स्थल पर लिखा है—

तोमार सौन्दर्य होक मानव सुन्दर,
प्रेमे तव विश्व होक आलो।
तोमार हेरिया जेन मुगध अन्तर,
मानुषे मानुषो बासे भालो॥

तुम्हारे सौन्दर्य से मानव सुन्दर बने, तुम्हारे प्रेम से जगत् में आलोक प्रसरित हो। तुम्हारी ओर विमुग्ध मन से हेर कर मनुष्य मनुष्य को प्यार करना सीख जाय।

अस्तु, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि तुलसी की काव्य-धारा को उपयुक्त क्षेत्र में संचारित करने का बहुत कुछ श्रेय उनकी पत्नी रत्ना को भी दिया जा सकता है।

वैरागी तुलसीदास मोह के मोहक पाश से मुक्त होकर, गृह और पत्नी का परित्याग कर पर्यटन को चल दिए। साहित्य-तापस एक महान् संकल्प का व्रत लेकर साधना के पथ पर अग्रसर हो चला। लगभग १५ वर्षों तक गोस्वामीजी विभिन्न स्थानों पर जीवन का विशद और व्यापक अध्ययन करते हुए व्यक्तिगत अनुभूति को सार्वजनिकता प्रदान करने के हेतु भ्रमण करते रहे। काशी, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका, बदरिकाश्रम आदि धार्मिक स्थलों से भारतीय भक्ति-चेतना की स्फूर्ति प्राप्त कर ये प्रकृति के एकान्त क्रीड़ा-क्षेत्र कैलास और मानसरोवर तक पहुँचे। अन्त में अपने इष्टदेव के आवास-स्थल चित्रकूट पर इन्होंने अपना आसन जमाया और वहाँ संत-सत्संग लाभ करने लगे। कहते हैं, यहाँ इन्होंने हनुमान् और राम के दर्शन भी किये। चित्रकूट में ही प्रथम वार तुलसी और सूर, भारतीय भक्ति-काव्योद्यान के दो प्रतिमा-प्रसूनों ने एक-दूसरे के सौरभ को पहचाना। सूरदास ने तुलसीदास को अपना सूरसागर सुनाया। इसके पश्चात् मीरा का पत्र इन्हें प्राप्त हुआ जिसका यथोचित उत्तर भी इन्होंने दे दिया। एक बालक के गायनार्थ इन्होंने राम-कृष्ण-सम्बंधी कुछ गीत लिखे जिन्हें संवत् १६२८ में इन्होंने राम-गीतावली और कृष्ण-गीतावली दो गीत-काव्यों के रूप में रख दिया। तत्पश्चात् संवत् १६३१ में अयोध्या जाकर इन्होंने विश्व काव्य 'राम चरित मानस' का पुनीत प्रणयन प्रारम्भ किया। 'मानस' की कीर्त्ति-कौमुदी ने तत्कालीन विद्वज्जनों को तुलसीदास की नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया। मधुसूदन

सरस्वती ने तुलसी की असीम राम-भक्ति तथा काव्य-मर्मज्ञता से प्रभावित होकर मुक्तकंठ से इनकी प्रशंसा की और स्तुति में एक श्लोक भी कहा—

आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥

तुलसीदास के समकालीन विद्वानों में मधुसूदन सरस्वती का बहुत मान था। रहीम से भी गोस्वामीजी का पत्र-व्यवहार होता रहता था। महाराज मानसिंह भी इनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे।

गोस्वामीजी को यद्यपि राम के अतिरिक्त किसी साधारण व्यक्ति के सम्बन्ध में लेखनी उठाना अभीष्ट न था, तथापि अपने घनिष्ठ मित्र टोडर के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन करने के लिए इन्होंने कुछ पंक्तियाँ अवश्य लिखी थीं। यथा—

चार गांव को ठाकुरो मन को महामहीप ।
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप ॥
तुलसी रामसनेह को सिर पर भारी भारु ।
टोडर कांधा नहिं दियो, सब कहि रहे 'उतारु' ॥
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच ।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच ॥

'राम चरित-मानस' की ख्याति से कुढ़कर काशी के कुछ दुष्ट जनों ने इस महाकाव्य को चुराने के लिए षड्यंत्र रचे। अतएव गोस्वामीजी को 'मानस' अपने स्नेही सखा टोडर की सुरक्षा में सौंपना पड़ा। काशी के कुछ ईर्ष्यालु पण्डितों ने गोस्वामीजी को अनेक प्रकार से तंग करना आरम्भ कर दिया। तब इन्होंने संवत् १६३३–१६४० के अन्तर्गत 'विनय-पत्रिका' रचकर भगवान् राम के दरबार में अपनी प्रार्थना प्रेषित की। इसके बाद इन्होंने अन्य काव्य-ग्रन्थों की रचना की।

भक्त-काल के अन्य अनेक कवियों के सम्बंध में जिस प्रकार अनेक जन-प्रवाद प्रचलित हैं, उसी प्रकार गोस्वामीजी के बारे में भी कुछ जन-

श्रुतियाँ हैं, जिनमें कवि केशवदास को प्रेत-योनि से छुड़ाना, एक विधवा के पति को जीवन-दान देना आदि अनेक अलौकिक कार्यों की चर्चा मिलती है।

गोस्वामीजी के मृत्यु-काल के सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामीजी के परम मित्र टोडर के वंशज इस तिथि को तुलसीदासजी के नाम का सीधा दिया करते हैं।

—०—

गोस्वामीजी की कृतियाँ

महाकवि तुलसीदास की कवित्व शक्ति पर समालोचनात्मक दृष्टि डालने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा स्वीकृत तुलसीदास के निम्नलिखित बारह काव्य ग्रंथ हैं—

रामचरितमानस, विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न, बरवै रामायण, रामलला नहछू, कृष्ण-गीतावली, वैराग्य-संदीपनी, पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल।

१—'रामचरितमानस'

मानवता के इस महाकाव्य की रचना का पुनीत प्रणयन विक्रम संवत् १६३१ रामनवमी को प्रारंभ हुआ था। जीवन के इस विराट् चित्र का निर्माण करने में, चतुर चितेरे तुलसी ने अपने हृदय की समस्त अनुभूति केन्द्रित कर एक ऐसे अभिनव अमिट रंग की सृष्टि की, जिसमें राम-भक्ति की तूलिका डुबो-डुबो कर इस विश्व-वन्दित अमर कृति की रचना हुई है।

गोस्वामीजी ने इस महान् काव्य-ग्रंथ का नाम 'रामचरितमानस' रक्खा था तथा उसमें श्रद्धालु भक्त-वृन्दों के अवगाहनार्थ सोपान भी तैयार किए जो बाद में काण्ड के नाम से प्रचलित हुए। इस ग्रन्थ-रत्न के आरंभ में कवि ने गणेशादि देवताओं की स्तुति करके समादरपूर्वक गुरु का

स्मरण किया है । तत्पश्चात्, सन्त, सज्जन, दुर्जन और जीवमात्र का उल्लेख करके ग्रन्थ-परिचय और रचना-उद्देश्य की चर्चा की है।

महाकाव्य की शास्त्रीय विशेषताओं से युक्त 'रामचरित-मानस' मानव-धर्म का एक उज्ज्वल दर्पण है जो युग-युगान्तर तक उन्नत समाज को प्रतिविम्बित करता रहेगा। सुप्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् 'शेतो ब्रिया' ने इसे इसीलिए 'मानवमात्र की बाइबिल' कहा है। जीवन के प्रत्येक पहलू पर 'मानस' में बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। चरित्र-चित्रण तथा विभिन्न चरित्रों की चित्तवृत्ति के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से भी यह ग्रंथ बेजोड़ है। सुन्दर कथोपकथन, प्रबंधात्मकता का सफल निर्वाह तथा भाव-भाषा का अभिनव सामंजस्य तुलसी की अपूर्व प्रतिभा-प्रभा का द्योतक है।

जायसी आदि प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की पद्धति पर मानस में भी अधिकतर दोहों और चौपाइयों का विधान रक्खा गया है। सूफ़ियों द्वारा प्रेमाख्यानों के लिए अपनाई गई दोहा-चौपाई-युक्त प्रबंधात्मक शैली मानस में पूर्णता को प्राप्त हुई है। यद्यपि सूफ़ी कवियों ने भी अवधी का प्रयोग किया था तथापि उनकी भाषा में ग्रामीणता अधिक थी। अवधी का जैसा शुद्ध साहित्यिक रूप कवि-श्रेष्ठ तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' में दिखाई देता है, वैसा अन्यत्र नहीं। धर्म, दर्शन, साहित्य, राजनीति आदि सभी विषयों के सार भाग द्वारा तुलसी ने इस अद्भुत राम-रसायन की रचना करके सचमुच विश्व में हिन्दी-साहित्य और हिन्दू-समाज का नाम ऊँचा कर दिया है।

२—'विनय-पत्रिका'

गीत-काव्य-परम्परा में विनय-पत्रिका का विशिष्ट स्थान है। दास्यभाव से आत्मनिवेदन का ऐसा आकिंचन, निष्कपट दैन्यपूर्ण स्वर अन्यत्र नहीं मिलता। कलि की कुचाल से तंग आकर कवि ने अपने इष्टदेव के दरबार में 'विनय-पत्रिका' को एक फ़रियाद भरी अर्ज़ी के रूप में प्रेषित किया है। प्रारंभ में कवि ने गणेशादि पंचदेवों की वन्दना करके चित्रकूट, काशी आदि धार्मिक स्थलों का वर्णन किया है। फिर ज्ञान, वैराग्य, सांसारिक

नश्वरता, मोहमाया आदि पर उपदेशात्मक दृष्टि डालते हुए कुछ अपने सम्बन्ध में भी निवेदन कर दिया है। इसमें संस्कृत-गर्भित भाषा का प्राधान्य है तथा शान्त रस की पीयूषधारा आद्योपान्त प्रवहमान है। एक ही भाव की पुनरावृत्ति अवश्य कभी-कभी अरोचक-सी लगती है, किन्तु उत्कृष्ट कवित्व तथा संगीत के सुन्दर विधान द्वारा पदों का लालित्य अक्षुण्ण बना रहता है। नीचे 'विनय-पत्रिका' का एक पद दिया जाता है।

केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिए ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिन लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकररूप तेहि माहीं ।
वदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

३—'दोहावली'

इसमें कविशिरोमणि तुलसीदास के ५७३ दोहों का संग्रह है। कुछ दोहे कवि की विभिन्न काव्य-कृतियों में से छाँटकर एकत्र किये गए हैं, तथा कुछ सर्वथा नवीन हैं। इन दोहों में किसी कथा-विशेष का निर्वाह नहीं किया गया। भक्ति, नीति तथा रामवन्दना-विषयक समय-समय पर लिखे गए दोहों के संकलन के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थिति का भी चित्रण इन दोहों में मिलता है। चातक की अटूट प्रीति का रूपक बाँधकर कवि ने भक्त की अचल एकनिष्ठ साधना का सुन्दर निरूपण किया है। कुछ दोहों की बानगी देखिए—

गोंड गँवार नृपाल महिं, यमन महा-महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ॥
साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान ।
भगत निरूपहिं भगति कलि, निंदहिं वेद-पुरान ॥

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥
मान राखिबो, माँगिबो, पियसों नित नित नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु॥

४—'गीतावली'

'सूरसागर' की शैली पर इस ग्रंथ का निर्माण किया गया है। गेय पदों द्वारा कवि ने राम-चरित्र का गुण-गान किया है। इसमें ब्रजभाषा को अपनाकर कवि ने सूरदास की (ब्रज) भाषा के साथ अपनी समीचीनता सिद्ध करदी है। गीतावली के अनेक पदों में सूर के पदों की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने कृष्ण-विषयक प्रीति-काव्य से प्रभावित होकर इसकी रचना की हो। यद्यपि सभी पद राम-कथा से सम्बन्धित हैं, तथापि उनमें कोई विशेष क्रमबद्धता नहीं है। कवि ने अपनी रुचि के अनुसार रामकथा के चुने हुए अंशों को लेकर गीतावली की सृष्टि की है। संगीत-शास्त्र का अधिकारपूर्ण ज्ञान, कविद्वारा प्रयुक्त अनेक राग-रागनियों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। नीचे गीतावली का एक सुन्दर पद दिया जाता है।

भूषन बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम बिवस मन, कंप पुलक तनु,
नीरज नयन नीर भरे पिय के॥
सकुचत कहत, सुमिरि उर उमगत,
सील सनेह सुगुनगन तिय के।
स्वामि-दसा लखि लषन सखा कपि,
पिघले हैं आँच माठ मानों घिय के॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि,
गये निघटि फल सकल सुकिय के।
बरने जामवंत तेहि अवसर,
बचन बिवेक बीररस बिय के॥

धीर बीर सुनि समुझि परसपर,
बल उपाय उघरत निज हिय के।
तुलसिदास यह समउ कहेतें कवि,
लागत निपट निठुर जड़ जिय के॥

५—'कवितावली'

'गीतावली' की भाँति इसमें भी राम-कथा का वर्णन किया गया है। इसमें राम के शौर्यपूर्ण चरित्र का चित्रण है, जब कि गीतावली में राम के सौन्दर्य-शृंगार-मय रूप का ही हृदयग्राही वर्णन मिलता है। कवित्त, सवैया, छप्पय, झूलना आदि छन्दों का प्रयोग ही इसमें बहुलता से हुआ है जो कवि के वर्ण्य विषय को देखते हुए सर्वथा उपयुक्त है। इसकी रचना विशुद्ध ब्रजभाषा में की गई है। कवि ने सामयिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर यत्र-तत्र अपने सम्बन्ध में भी चर्चा कर दी है, जिससे कवितावली का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। राम के प्रचण्ड कोदण्ड की टंकार तथा महाबली मनुमान् की दिग्-दिगन्त को प्रकंपित करनेवाली हुँकार कवितावली के वीर और रौद्ररस विषयक स्थलों पर स्पष्ट रूप से कर्णगत होती है। कवितावली के दो उदाहरण देखिए—

लीन्हो उखारि पहार बिसाल,
चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुत-नन्दन मारुत को,
मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो,
पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की,
नभ-लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥

× × × ×

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।

जीविकाबिहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों 'कहां जाई, का करी ?'।
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
सांकरे समै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु !
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी॥

६—'रामाज्ञा प्रश्न'

इसमें राम-कथा का वर्णन दोहों में किया गया है। दोहों का क्रम इस प्रकार रक्खा गया है कि प्रश्नकर्त्ता को दोहों द्वारा ही शुभाशुभ परिणाम का पता चल जाता है। कहते हैं, कि राजजोतिषी गंगाराम के लिए तुलसीदासजी ने इसे केवल छह घंटे में बनाकर दे दिया था। इसमें प्रबंधात्मकता का ध्यान नहीं रक्खा गया।

७—'बरवै रामायण'

इसमें स्फुट रूप से राम-कथा कही गई है। यह कवि के समय-समय पर लिखे गए रामकथा-विषयक छन्दों का संग्रहमात्र है। बरवै छन्द का इसमें सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। भाषा अवधी है, इसमें भाव-गाम्भीर्य का विशेष परिचय नहीं मिलता। रीतिकालीन कवियों के समान तुलसी ने इस में रस और अलंकार निरूपण का भी प्रयत्न किया है। कथा-वस्तु सर्वथा अव्यवस्थित और अनियमित है। बरवै का इतना सुन्दर प्रयोग तुलसी के अतिरिक्त केवल रहीम ने ही किया है।

८—'रामलला नहछू'

२० छन्दों का यह एक छोटा-सा काव्य-ग्रंथ है। इसमें सोहर छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसे स्त्रियाँ विवाहादि मंगलोत्सवों पर गाती हैं। इसमें राम के नख-कर्त्तन का शृङ्गारात्मक वर्णन है। जनसाधारण में प्रचलित 'नहछू' प्रथा को रामकथा से सम्बन्धित कर गोस्वामीजी ने उसमें शिष्ट शृङ्गार का पुट दे दिया है। इसकी भाषा अवधी है। काव्य-कला की दृष्टि

से नहछू एक साधारण रचना है। तुलसी की प्रतिभा का प्रकाश इसमें नहीं दिखाई देता। नीचे नहछू से एक उद्धरण दिया जाता है—

कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो।
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो॥
नैन बिसाल नउनिआँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥

९—'श्रीकृष्ण-गीतावली'

इसमें कवि के स्फुट गेय पदों का संग्रह है। कृष्ण-लीला सम्बन्धी ६१ पदों में व्रजभाषा की सरसता संचार करके कवि ने उत्कृष्ट और शिष्ट शृङ्गार का वर्णन किया है। भ्रमरगीत-प्रकरण भी इसी में सन्निहित है। इससे व्रजभाषा पर कवि का अधिकार सिद्ध होता है। साथ ही राग-रागिनियों का संयोग-समारोह कवि की संगीत-प्रियता का भी परिचायक है।

१०—'वैराग्य संदीपनी'

इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और शांति का विशद निरूपण किया गया है। यह तुलसीदास की प्रारंभिक रचनाओं में से प्रतीत होती है। दोहा, सोरठा और चौपाइयों का इसमें प्रयोग हुआ है तथा इसकी रचना का उद्देश्य स्वयं कवि द्वारा इस प्रकार बतलाया गया है—

तुलसी वेद पुरान मत, पूरन शास्त्र विचार।
यह विराग-संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार॥

इसमें शांत रस का निर्वाह आदि से अन्त तक कवि ने बड़ी सुन्दरता से नपे-तुले शब्दों में किया है। कहीं-कहीं संस्कृत-श्लोकों के आधार पर भी दोहे लिखे गए हैं। सन्त कवियों की उपदेशात्मक शैली का अनुसरण किया गया है।

११—'पार्वती-मंगल'

इस ग्रंथ में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। 'कुमारसम्भव' के अध्ययन से प्रभावित होकर गोस्वामीजी ने 'पार्वती-मंगल' में कुछ परिवर्तन कर दिया है जो 'मानस' में वर्णित शिव-पार्वती विवाह से साम्य

नहीं रखता। इसकी भाषा पूर्वी अवधी है। अरुण और हरिगीतिका छन्दों का इसमें प्रयोग किया गया है।

१२—'जानकी-मंगल'

इसमें राम-सीता के विवाह का सरस और सुन्दर वर्णन किया गया है। परशुराम का आगमन इसमें विवाहोपरान्त दिखाया है। पार्वती-मंगल की भाँति इसमें भी अरुण और हरिगीतिका का प्रयोग हुआ है। इसकी शैली मानस की समता करती है।

तुलसीदास : कवि

सुप्रसिद्ध धार्मिक महाकाव्य 'पैराडाइज़ लास्ट' (Paradise Lost) के प्रणेता महाकवि मिल्टन का कथन है कि सुकवि बनने के लिए कवि का जीवन भी उसकी कविता की भाँति ही सच्चा और पवित्र होना चाहिए। अमर कवि तुलसीदास के जीवन और उनके काव्य के सम्बन्ध में यह उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है। जिस महान् संकल्प को लेकर तुलसीदास का अभ्युदय हुआ, उसकी पूर्ति के लिए वैसा ही साधना-संयुक्त तपोमय जीवन भी उन्होंने व्यतीत किया। कवि के व्यक्तित्व की जो अमिट छाप तुलसी की रचनाओं पर दिखाई देती है, वह अन्यन्त्र दृष्टिगोचर नहीं होती। उस चिरजीवी कलाकार की दिव्य वाणी का प्रत्येक अक्षर उसके सत्यनिष्ठ धार्मिक जीवन को उदात्त स्वर से उद्घोषित करता है।

कामिनी और कंचन की भोग-भावना से विरत कर्मठ कलाकार तुलसी ने भारतीय संस्कृति तथा आर्य-धर्म के पुनरुत्थानार्थ अपनी समस्त शक्तियों को लोकनायक राम का आदर्श उपस्थित करने में लगा दिया। नैराश्य-निशा में अशान्त-ऊर्मि-विलोड़ित जनसिन्धु के मध्य तुलसी ने राम का विराट् जाज्वल्यमान प्रकाशस्तम्भ खड़ा करके पथ-विचलित आर्य-संस्कृति के डाँवाडोल पोत को जलमग्न होने से बचाया। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का लोकरंजक रूप, निर्गुणत्व की भूलभुलैयों में भटकते हुए हिन्दू-समाज को

अत्यन्त आह्लादकारी और उपयोगी सिद्ध हुआ। केवल चरित्र-चित्रण की दृष्टि से, तुलसीदास द्वारा प्रेषित 'मानस' के चरित-नायक राम, विश्वविख्यात महाकाव्यों तथा आख्यानों के नायकों में अग्रगण्य और अद्वितीय हैं। मानवता की चरम विकसित अवस्था का सात्विक स्वरूप राम में सहज ही देखा जा सकता है। सदाचार, त्याग, विवेक, शक्ति, शील और सौन्दर्य की ऐसी अभिनव मूर्त्ति कुशल शिल्पी तुलसीदास द्वारा ही निर्मित हो सकती थी।

आदर्श शासन-पद्धति के सम्बन्ध में विभिन्न द्रष्टाओं द्वारा अनेक स्वप्न-संसारों की सृष्टि हो चुकी है। प्लेटो के 'रिपबलिक' (Republic) और टामसमूर के 'यूटोपिया' (Utopia) आदि की गणना इनमें की जाती हैं। किन्तु तुलसी द्वारा प्रस्तावित रामराज्य की रूपरेखा एक अभिनव आदर्श है। तुलसी ने जिस रामराज्य के विषय में लिखा है, वह कोई असंभव कल्पना अथवा ख़ामख़याली नहीं है। हमारा देश इसका रसास्वादन कर चुका है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा
रामराज नहिं काहुहिं व्यापा

ऐसे राजतंत्र के आगे विश्व के सभी प्रजातंत्र हेय हैं। इसमें निरंकुशता का बोलबाला नहीं अपितु राष्ट्र और राष्ट्र के नायक का आध्यात्मिक (या मानसिक) एकीकरण दिखाई देता है। सारा राष्ट्र राममय और राम राष्ट्र के अणु-अणु में रमा हुआ है।

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखी, नहिं भय शोक न रोग॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरण सेवक नर नारी॥
एक नारिव्रत रह सब धारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दण्ड यतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहिं सुनिअ जग रामचन्द्र के राज ॥

भक्ति की विभिन्न धाराओं का समन्वय-सागर तुलसी के विराट् मानस के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना कठिन है। समन्वयमूलक नीति द्वारा महामनीषी तुलसी ने शैव और वैष्णवों के धार्मिक विद्वेष को दूर कर भक्ति-मार्ग-गामियों में भ्रातृ-भाव का प्रसार किया। पूर्वप्रचलित तथा समकालीन प्रायः सभी काव्य-शैलियों को तुलसी ने राम-भक्ति-माल में पिरोकर साहित्यिक समन्वय करने की चेष्टा भी की। पण्डितप्रवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के लेखानुसार "तुलसी का सारा काव्य, समन्वय की विराट् चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्व-ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय—रामचरितमानस शुरू से अखीर तक समन्वय का काव्य है"।

पुण्य और पाप, सुरत्व और असुरत्व, रामत्व और रावणत्व, इन दो विरोधी प्रवृत्तियों का संघर्ष अनादि काल से चलता आया है। मिल्टन का पैराडाइज़ लास्ट भी इन्हीं दो विरोधी भावनाओं का युद्ध-क्षेत्र है। तुलसी के मानस में भी प्रधानतः पुण्य और पाप का संघर्ष बड़े प्रचण्ड रूप में दिखाई देता है। आसुरी शक्ति के अत्याचारों से प्रपीड़ित मानवता के आर्त आह्वान पर लोकनायक राम अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होकर आगे बढ़ते हैं, तथा राक्षसी वृत्ति का समूल उन्मूलन कर शांति-सद्भावना के प्रचार द्वारा, संकटापन्न देवत्व की पुनः स्थापना करते हैं। तुलसी के महाकाव्य में राम के प्रतिद्वन्द्वी रावण का समुचित चरित्र-चित्रण किया गया है, किन्तु पाठकों की सहानुभूति एक क्षण को भी रावणोन्मुख नहीं हो पाती, जबकि मिल्टन के Paradise Lost के प्रारंभिक सर्गों में Satan ही कथानक का चरितनायक बन बैठा है। इससे तुलसी

की महाकाव्योपयुक्त कुशाग्र बुद्धि तथा उत्कृष्ट प्रबन्ध-पटुता का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

आन्तरिक अनुभूति तथा चिन्तन-गांभीर्य के अतिरिक्त काव्य के बाह्य उपकरणों की भी उत्कृष्ट कवि उपेक्षा नहीं करते। गहन भाव के अतिरिक्त भाषा की परिपक्वता भी तुलसी-विरचित काव्य में दर्शनीय है। विभिन्न छन्दों की छटा तथा उनका भावानुकूल चयन अत्यन्त सराहनीय है। नए शब्दों का निर्माण करके तथा विदेशी शब्दों को स्वदेशी का बाना पहनाकर तुलसी ने हिन्दी-शब्द-भाण्डार को व्यापक बना दिया है। हिन्दी की प्रान्तिक बोलियाँ अपनाकर तो सचमुच दूरदर्शी तुलसी ने हिन्दी के मातृ-भाषा पदत्व का शिलान्यास कर दिया है। अलङ्कार-विधान, वर्णन-चातुर्य तथा नवरस का सफल निरूपण करने में तुलसी यथार्थ ही महाकवि कहलाने योग्य हैं।

तुलसी के सदृश विस्तृत अध्ययन हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं पाया जाता। सारग्राहिणी प्रवृत्ति के बल पर इस काव्य-मनीषी ने पर्यटन, सत्संग तथा अध्ययन और मनन द्वारा अपने काव्योचित जीवन को सार्थक बनाया। धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य, संगीत आदि सभी विषयों पर तुलसीदास का गम्भीर और व्यापक अध्ययन था। अध्ययन पुस्तकों तक ही सीमित न था, अपितु मानवीय अन्तःकरण की विभिन्न हलचलों को भी तुलसीदास ने गहराई तक झाँककर देखा था। यही कारण है कि तुलसी-निर्मित चरित्रों की मनोदशा का यथार्थ चित्रण हमें 'मानस' में यथेष्ट रूप से मिलता है। प्रो० माल्टन कृत 'विश्व-साहित्य' (World-Literature) में तुलसीदास का कैसा सुन्दर और संस्मरणीय उल्लेख किया गया है।

—"Grasp of human nature the most profound, the most subtle; responsiveness to emotion through out the whole scale from tragic pathos to rolicking jollity, with a middle range; over which plays a humower like the innumerable twinklings of a laughing ocean; powers of

imagination so instinctive that to perceive and create seem the same mental act; a sense of symmetry and proportion that will make everything it touches into art; master of language that is the servant of thought and language that is the beauty in itself; all these separate elements of poetic force, any one of which in conscious degree might make a poet, are in Tulsidas found in complete combination".

इसके अतिरिक्त डा० ग्रिअर्सन प्रभृति विदेशी विद्वानों ने भी तुलसी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

काव्योद्यान में दो विशिष्ट प्रवृत्तिमूलक हवाएँ बहती हैं, जिन्हें Classical और Romantic संज्ञा दी जा सकती है। एक मंथर गति से गंभीरता का भाव प्रसारित करती हुई आती है, और धीरे से शांत पेड़-पत्तों और फल-फूलों को थपथपाकर उन्हें स्पर्श-पुलकित कर जाती है, जबकि दूसरी चपल गति से अठखेलियाँ करती हुई, कली का अवगुण्ठन-रहस्य खोलती और उसे फूल बनाकर उद्यान में मादक सौरभ बिखेर देती है। तुलसीदास में हम प्रथम (Classical) प्रवृत्ति की ही प्रधानता पाते हैं। वे अधिक कल्पनाशील नहीं हैं। पंचतत्व-निर्मित संसार को ही वे आदर्श रूप प्रदान कर सके हैं, जो अधिक उपयोगी तथा अपनाने योग्य है। किन्तु एक कल्पित लोक का निर्माण—जहाँ लौकिक दृष्टि में असंभव संभव हो सकता हो, जहाँ पल और युग की सुइयाँ एक स्थल पर मिल सकती हों, जहाँ शाश्वत सौन्दर्य को परिवर्त्तन पिशाच के आक्रमण का भय न हो—तुलसीदास की विचारशक्ति के परे था। रामचरितमानस के लिए कथानक खोजने में इन्हें विशेष मानसिक श्रम नहीं करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उनके गीति-प्रधान काव्य को भी सदा किसी घटना-चक्र का संबल लेकर ही चलना पड़ा है, मुक्तक का मुक्तत्व उनमें नहीं आ पाया।

सम्भव है, जानबूझकर तुलसी ने अनन्य रामभक्ति के कारण, अपनी कल्पना को कथा-कथानक की क़ैद में रक्खा हो। उनकी उपमाएँ भी अधिकतर दृश्य जगत् की वस्तुओं में से ही दी गई हैं। उन्होंने कवि-परंपरागत उपमानों से ही विशेष सहायता ली है। शृङ्गार-वर्णन में भी तुलसी की अपनी निराली शालीनता है। शिष्ट शृङ्गार की सीमा का कहीं भी अतिक्रमण नहीं हो पाया। मर्यादा का संयमशील पालन भी तुलसी की कल्पना के कुंचित होने का कारण हो सकता है। कवि की विचारशक्ति से मुक्त होकर कल्पना स्वच्छन्द विचरने लगती है। इस उन्माद की अवस्था में कल्पना का असंयत हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। अतएव मर्यादा के माप-दण्ड से काव्य को नापने वाले कवि तुलसी ने, सम्भव है, कल्पना पर बौद्धिक नियंत्रण रखकर उसे बहकने न दिया हो। अस्तु; कल्पना-संकोच तुलसी के सर्वाङ्ग सुन्दर काव्य का दोष नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पूर्ण मयंक के अंक का धब्बा चाँदनी की स्निग्धता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता। अस्तु; हिन्दी-साहित्य में कविता की दृष्टि से भक्तिकाल का महत्त्वपूर्ण स्थान है और तुलसी इस काल के काव्यकलाधर हैं, जिनकी कीर्ति-कौमुदी समय के साथ-साथ निरंतर निखरती जाती है।

किसी विशेष प्रवृत्ति का अतिक्रमण हो जाने पर उसका ह्रास होना स्वाभाविक ही है। राम-काव्य को तुलसी ने पूर्णता के उस सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया था जहाँ से उसे आगे बढ़ने का मार्ग ही शेष न रह गया था। अनन्य भक्ति तथा अनवरत अध्यवसाय द्वारा साहित्य-साधना का जो राममय विकसित स्वरूप तुलसी ने स्थिर कर दिया, उसे परवर्त्ती कवि अपने हीन प्रयासों द्वारा किसी प्रकार भी कोई नवीनता अथवा उज्ज्वलता प्रदान न कर सके। राम-काव्य-परंपरा में तुलसी के बाद भी अनेक कवि हुए किन्तु तुलसी की-सी शालीनता, गम्भीरता, व्यापकता और उत्कृष्ट काव्य-मर्मज्ञता का उनमें सर्वथा अभाव था। इन राम-भक्त कवियों में से उल्लेखनीय व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

स्वामी अग्रदास

(सं० १६३२)

ये तुलसीदास के समय में वर्त्तमान थे तथा भक्तमाल के सुप्रसिद्ध रचयिता नाभादास के गुरु थे। इनकी लिखी हुई 'हितोपदेश उपाख्यान-बावनी' जिसमें कुण्डलिया छन्द का सफल प्रयोग किया गया है, 'कुण्डलिया रामायण' नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त 'ध्यान-मंजरी', 'रामध्यान-मंजरी', तथा कुण्डलियाँ की रचना भी इन्होंने की। कृष्णोपासक नन्ददास की कविता-पद्धति पर ही इनकी काव्य-कृतियों का निर्माण हुआ है। नीचे इनकी कविता का एक उदाहरण दिया जाता है।

'कुण्डल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा॥
मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुख-पंकज के निकट मनो अलि-छौना आए॥

नाभादास

(सं० १६५७)

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है ये अग्रदास के प्रिय शिष्य और बड़ी ही साधु प्रकृति के राम-भक्त कवि थे। ये जाति के डोम थे तथा इनका असली नाम नारायणदास था। रामोपासना-विषयक इन्होंने अनेक सुन्दर पदों की रचना की है। किन्तु इनकी विशेष कीर्त्ति भक्तमाल द्वारा ही प्रसारित हुई, जिसमें दो सौ भक्तों के चरित्र तथा उनके चमत्कारी कार्यों का वर्णन छप्पय छन्द में बड़ी सुन्दरता से किया गया है। ब्रजभाषा में इन्होंने सुललित गद्य और पद्य की रचना की है, जिसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

'तब श्री महाराजकुमार प्रथम श्री वसिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।' इत्यादि—

× × × ×

अवधपुरी की सोभा जैसी ।
कहि नहिं सकहि शेष श्रुति तैसी ॥
रचित कोट कलधौत सुहावन ।
बिविध रंग मति अति मनभावन ॥

तुलसीदास के सम्बन्ध में इनका लिखा हुआ यह छप्पय भी उल्लेखनीय है—

त्रेता काव्य-निबंध करी सत कोटि रमायन ।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म इत्यादि परायन ॥
अब भक्तन सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन-रस-मत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी ॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार-हित बालमीकि तुलसी भयो ॥

प्राणचन्द चौहान

(सं० १६६७)

पद्यात्मक कथोपकथन में इन्होंने 'रामायण महानाटक' की रचना की। वर्णन-चातुर्य के सिवा इस ग्रंथ में काव्यात्मकता का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। राम-कथा को संवाद-रूप में कहकर राम-विषयक प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्यों की श्रेणी में दृश्य काव्य-पद्धति का निर्वाह करके एक नवीन कृति इन्होंने अवश्य जोड़ दी। ये जहाँगीर के समय में वर्त्तमान थे। इनकी रचना का नमूना नीचे दिया जाता है—

कातिक मास पच्छ उजियारा । तीरथ पुण्य सोम कर बारा ॥
ता दिन कथा कीन अनुमाना । शाह सलेम दिलीपति थाना ॥
आदि पुरुष बरनौं केहि भांती । चांद सुरज तहँ दिवस न राती ॥
निरगुन रूप करै सिव ध्याना । चार वेद गुन जोरि बषाना ॥

हृदयराम

गोस्वामीजी राम-कथा का अनेक काव्य-शैलियों में वर्णन कर चुके

थे, केवल नाटक के रूप में राम-महिमा-वर्णन उनसे बच रहा था। इसकी पूर्ति प्राणचन्द चौहान ने 'रामायण महानाटक' में की तथा हृदयराम ने भी संवत् १६८० में संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' के ढंग पर हिन्दी में हनुमन्नाटक का निर्माण किया। कवित्त और सवैयों द्वारा संवाद-शैली में हृदयराम ने सराहनीय काव्य-कौशल का परिचय दिया है। यथा—

जानकी को मुख न बिलोक्यो ताते कुण्डल-
न जानत हौं वीर पायँ छुवै रघुराइ के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइ के॥
पायँन के परिबै को जाते दास लछमन,
यातें पहिचानत है भूषन जे पांय के।
बिछुआ हैं एई, अरु झाँझ हैं एई जुग,
नूपुर हैं तेई राम जानत जराइ के॥

× × × ×

एहो हनू! कह्यौ श्री रघुवीर कछू सुधि है सिय की छिति माँही?
है प्रभु लंक कलंक बिना सु बसै तहँ रावन बाग की छाँही॥
जीवति है? कहिबेई को नाथ, सु क्यों न मरी हमतें बिछुराही?
प्रान बसै पदपंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं॥

रामभक्ति-काव्य की एक धारा हनुमान् का गुणगान करके प्रवाहित हुई। गोस्वामीजी ने भी राम के अचल भक्त महावीर की स्तुति में हनुमानबाहुक की रचना की थी। हनुमान् सम्बन्धी काव्य-प्रवृत्ति का उल्लेखनीय रूप हमें रायमल्ल पाँडे-रचित 'हनुमच्चरित्र' में मिलता है।

रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह और महाराज रघुराजसिंह का नाम भी रामोपासक कवियों के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इनमें महाराज रघुराजसिंह-रचित 'रामस्वयंवर' विशेष उल्लेखनीय है। इसमें अनावश्यक वर्णन-वार्धक्य ही अधिक है, काव्यत्व का चमत्कार दृष्टिगोचर नहीं होता।

कृष्णभक्ति-विषयक शृङ्गार-प्रधान भावना को लेकर जो प्रचार हुआ उसका प्रभाव रामचरितमानस के टीकाकार रामचरणदासजी की रचनाओं में मिलता है। इन्होंने दाम्पत्य भाव को प्रमुखता प्रदान कर पवित्र रामोपासना में शृङ्गार का गहरा पुट दे दिया और स्व-सुखी शाखा का श्रीगणेश किया। इसका बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा तथा श्लीलता की सीमा का उल्लंघन कर शृङ्गार का नग्न चित्रण राम-काव्य के अन्तर्गत चल पड़ा। नीचे 'श्रीरामावतार-भजन-तरंगिणी' का एक पद उदाहरणार्थ दिया जाता है—

हमारे पिय ठाड़े सरजू तीर।
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहँ खड़े लखन के बीर॥
मृदु मुसकाय पकरि कर मेरो खैंचि लियो तब चीर।
झाऊ वृत्त की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर॥

उपर्युक्त उद्धरण से अनुमान किया जा सकता है कि गोस्वामीजी ने जिस सात्विक भाव से रामोपासना को अपनाया था, उसका कुछ मनचले बाज़ारू कवियों ने किस प्रकार दुरुपयोग किया। किन्तु हर्ष की बात है कि राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इस गर्हित भावना का प्रतीकार कर 'पंचवटी' तथा 'साकेत' में राम के पावन चरित्र को विशुद्ध भाव से अपनाया और तुलसी की चिर-संतप्त आत्मा को संतोष दिया है।

सूर और कृष्ण-काव्य-धारा

अपने विभिन्न उद्गम स्रोतों से निकल कर, जन-हृदय को सींचती हुई भक्ति की जो धवल धाराएँ हिन्दी-काव्य-सागर में आ मिली हैं, उनमें कृष्ण-काव्य-धारा अपनी अलग विशेषता रखती है। विद्यापति ने जिस रस में आनन्द-विभोर होकर शृङ्गार-शैवालिनी का संचारण किया था, वही मानो उपयुक्त क्षेत्र पा और व्रजभूमि में प्रकट होकर उद्दाम वेग से प्रवाहित होने लगीं। कोकिल ने सघन कुंजों में बैठकर नई तान छेड़ दी। यमुना पर यौवन का उभार आ गया और पुष्पधन्वा के एक ही वाण से पृथिवी

से वसन्त फूट पड़ा। कल्पना में नई रंगीनी आ गई और लीलावतार कृष्ण की वंशी के मादक स्वर ने कविता में नए प्राण फूँक दिए।

स्वामी रामानन्द ने जिस प्रकार राम के विराट् व्यक्तित्व की स्थापना कर काव्य-प्रेरणा का उपयुक्त उद्गम स्रोत भक्त कवियों को प्रदान किया, उसी प्रकार श्री वल्लभाचार्य ने भी कृष्ण के प्रेममय रूप की स्फूर्तिदायिनी प्रेरणा से कवियों को प्रेरित कर सौन्दर्य और शृंगार की अभिनव काव्य-धारा प्रवाहित की। इनका जन्म संवत् १५३५ वैशाख कृष्णा ११ को और निधन संवत् १५८७ आषाढ़ शुक्ला ३ को हुआ था। ये वेदशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित तथा कृष्ण के अनन्य भक्त थे। शङ्कर के निर्गुण ब्रह्म की निराकार सत्ता के अन्वेषण में कबीर प्रभृति सन्त कवियों की ज्ञान-जन्य प्रतिभा ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की थी। प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों ने भी उस अव्यक्त सत्ता के प्रति लौकिक तत्वों का आधार लेकर अपना असीम प्रेम प्रदर्शित किया था। फिर उसी महान् अदृश्य के साकार रूप का प्रस्फुटन राम के मर्यादा-मण्डित देवत्वपूर्ण व्यक्तित्व में हुआ था। अमूर्त व्यापक ब्रह्म का मूर्त रूप राम की विराटता में निश्चित अवश्य हो गया था, किन्तु यहाँ भी भक्ति-भावना महत्ता के सम्मुख नतमस्तक हो निश्छल श्रद्धा बनकर अभिव्यंजित हुई थी। आराध्य और आराधक के बीच में श्रद्धा का सोपान स्पष्ट दिखाई देता था। हृदय-तरंगित आनन्दोद्-गारों को संयम-सीमित होकर बहना पड़ता था। श्रद्धा-जन्य भक्ति-भावना को संकोच-शृंखलाबद्ध रहना पड़ता था। किन्तु आचार्य वल्लभ ने 'श्रद्धा' को प्रेम की आँच से गलाकर उपास्यदेव के आनन्दस्वरूप में एकाकार कर दिया। भक्त और भगवान् को एक ही समतल भूमि पर खड़ा कर दिया तथा व्रजवीथियों में आनन्दकन्द लीलावतार श्री कृष्ण के रम्यरास में सम्मिलित होने का भक्तजनों को खुला निमंत्रण दे दिया।

भक्ति के प्रति इस नवीन दृष्टिकोण ने साधना-पद्धति में एक अभिनव माधुर्य-रस का संचार कर दिया। प्रेम-विह्वल दो भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के प्रणय-व्यापार का कोमल-कान्त पदावली में सरस वर्णन प्रारंभ कर

दिया। भगवान् के लोकरंजक रूप की प्रतिष्ठा तुलसीप्रभृति कवियों द्वारा राम की कर्मवीरता में स्थापित हो चुकी थी। असुरत्व-विदारक राम के प्रचण्ड कोदण्ड की टंकार अब रासलीला-रत श्याम की वंशी के रव में डूब गई। प्रभु के असीम अनुग्रह से ही यह प्रेम-पूरित भक्ति-भावना जीव में सजग हो उठती है। वल्लभाचार्यजी ने भगवान् की इस प्रेम-प्रेरक अनुकंपा को 'पोषण' या 'पुष्टि' संज्ञा दी तथा 'पुष्टि-मार्ग' का श्री गणेश किया।

'पुष्टि-मार्ग' के अन्तर्गत कृष्ण के सच्चिदानन्द स्वरूप को लेकर जिस काव्य-चेतना का विकास हुआ उसका श्रेय अष्टछाप-मण्डल के कवियों को दिया जा सकता है। आचार्य वल्लभ के सुपुत्र तथा उत्तराधिकारी गोसाईं विट्ठलनाथ ने प्रतिभा-सम्पन्न कृष्णोपासक आठ उत्कृष्ट कवियों को संगठित कर 'अष्टछाप' की स्थापना कर पुष्टि-मार्ग का प्रचार किया। सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास ये आठ कवि अष्टछाप के भव्य भवन के आठ सुदृढ़ स्तंभ बने। इन कवियों में सूरदास का स्थान विशेष महत्त्व का है। भक्ति-भावना का कवित्वमय उभार इस प्रज्ञाचक्षु कवि की सरस वाणी में ही पूर्ण यौवन पर दिखाई देता है।

सूरदास

जीवन-परिचय

सूरदास का जन्म-संवत् १५४० के लगभग माना जाता है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता' के अनुसार सूरदास रेणुका (रुनकुता) क्षेत्र के समीप गऊघाट पर साधु-जीवन व्यतीत करते थे। संगीत के प्रति इनकी स्वाभाविक रुचि थी। मस्ती के क्षणों में वैरागी सूर अपना तानपूरा छेड़कर कुछ गुनगुना भी लिया करते थे। गऊघाट पर एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्यजी पधारे और सूरदासजी ने प्रथम बार आचार्यजी का सत्संग लाभ किया। हर्ष-विह्वल सूर ने स्व-रचित एक पद भी महाप्रभु को

सुनाया। प्रतिभा-पारखी आचार्य वल्लभ ने सूर की कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर इन्हें दीक्षा दी तथा श्रीमद्भागवत की कथाओं को सुललित गेय पदों में रूपान्तरित करने का आदेश दिया। इसके अतिरिक्त श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीनाथजी के मन्दिर की कीर्त्तन-सेवा भी संगीत-मर्मज्ञ-सूर को सौंपी। तब से निरंतर यह विरागी काव्य-मनीषी साधना-संलग्न रह कर श्री कृष्ण का गुणगान करता रहा।

सूर-प्रणीत 'साहित्य-लहरी' के अंतिम पद के आधार पर इन्हें चन्दबरदाई के वंश से सम्बन्धित कर ब्रह्मभट्ट भी माना गया है। महाकवि चन्द के वंशज हरीचन्द के सात सुतों में सब से छोटे दृष्टि-विहीन सूरदास थे। रणक्षेत्र में इनके छह भाइयों ने मुसलमानों के विरुद्ध लड़कर वीरगति प्राप्त की तथा निराश्रित सूर भटकते-भटकते एक कुए में जा गिरे। कहते हैं, उस कुए में ही इन्हें श्री कृष्ण के दर्शन हुए। भगवान् की अनुकम्पा से सूर को दृष्टि-लाभ हो गया, किन्तु भक्त-प्रवर सूर ने जिन नेत्रों से प्रभु-दर्शन-माधुरी का रसास्वादन किया था, उनसे स्थूल जगत् के दृश्यामन् रूप का अवलोकन उचित न समझा और दृष्टि-विहीन रहना ही स्वीकार किया। इस कथा में तथ्य नहीं जान पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कवि ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति का चित्रण करने के लिए इस रूपक की सृष्टि की हो।

'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' के अतिरिक्त 'भक्तमाल' में भी सूर का उल्लेख मिलता है—

उक्ति चोज अनुप्रास बरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरिलीला भासी।
जनम करम गुनरूप सबै रसना परकासी॥
विमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन श्रवननि धरै।
सूर-कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥

उपर्युक्त छप्पय से सूरदास के जीवन-वृत्त पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता; हाँ, उसमें सूर की काव्य-कुशलता की अवश्य जी खोलकर प्रशंसा की गई है।

इसी प्रकार 'आईने अकबरी' और अबुलफ़ज़ल लिखित—मुंशियात-अबुलफ़ज़ल नामक पत्र-संग्रह में सूरदास नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख है। किन्तु इनमें से किसी का भी महाकवि सूर के जीवन से कोई संबंध नहीं है।

सूरदास की मृत्यु महाप्रभु वल्लभ के सुयोग्य पुत्र विट्ठलनाथ की उपस्थिति में पारसोली नामक ग्राम में हुई। अंतिम समय तक पद गाते-गाते इस कृष्णभक्त महान् कवि ने संवत् १६२० के लगभग अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

सूरदास : कवि

कविता की दृष्टि से, हिन्दी-साहित्य में, भक्ति-काल का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा गौरवयुक्त है। भाव-गहनता, प्रेम-विह्वलता तथा तन्मयतापूर्ण काव्य कमनीयता की जैसी सुन्दर झलक भक्त कवियों के सरस-सरल उद्‌गारों में पाई जाती है, वैसी अन्यत्र नहीं दिखाई देती। जिस अजर, अमर अव्यक्त सत्ता की महत्ता का आभास पाकर विभिन्न भक्ति-भावनाएँ काव्य-कानन में उमड़ पड़ी थीं, वे उलझती-सुलझती अन्त में सूर के विशाल 'सागर' में समाकर सौन्दर्य और प्रेम की परिधि में हर्ष से हिलोरें लेने लगीं। शैशव और यौवन के कोमल तथा उद्दीपक तत्वों को लेकर कृष्ण की आनन्ददायिनी मूर्ति निर्मित की गई, जिसकी उपासना से कविता में एक नया निखार और उभार आ गया। शृङ्गार रस की वृष्टि से ऐसे काव्य की सृष्टि हुई जो सौन्दर्य-जन्य मधुरता की चरम सीमा पर पहुँच कर, रीति-कालीन कवियों की सस्ती भावुकता के खिलवाड़ का साधनमात्र बन गई।

जयदेव की अनंग-रंग-रंजित जिस भावना का प्रस्फुटन गीतगोविन्द में हुआ था उसका व्यक्तीकरण विद्यापति की पदावली में अधिक स्पष्ट और मुखर रूप से हुआ। मैथिल-कोकिल के कंठ में नव वसन्त के उद्दाम यौवन का स्वर था। राधा-कृष्ण की प्रणय-केलि के निरूपण में व्यक्तिगत वासना

ही अधिक उभरी हुई दीखती थी। राजाश्रित 'कविशेखर' की विलासी वृत्ति का प्रकाशन संगीतमय सरस शृङ्गारी पदों में होना स्वाभाविक ही था। वैरागी सूर ने भी शृङ्गारी भावना को अपनाया किन्तु संक्रामक अश्लीलता का यथासाध्य प्रतीकार किया। सूर के शृङ्गार में पवित्रता की गंध है जो वासना के उपकरणों के प्रस्तुत रहते हुए भी, कलुषता-पंक के प्रभाव को नहीं पनपने देती।

किशोरावस्था और युवावस्था के मनोभावों का चित्रण अनेक कवियों ने किया है। विद्यापति के पदों में भी मुग्धा के आकर्षक चित्र देखने को मिल जाते हैं, किन्तु सूर की निपट अजान राधा की उक्तियाँ सचमुच हृदय में घर कर लेती हैं। अपने बाल-सुलभ चांचल्य और नटखटपन पर यशोदा की प्रतारणा पाकर भोली राधा जो उत्तर देती है वह देखते ही बनता है—

बार बार तू ह्याँ जनि आवै।
मैं कहा करौं सुतहिं नहिं बरजति, घर तें मोहिं बुलावै॥
मोसों कहत तोहि बिनु देखे रहत न मेरो प्रान।
छोह लगत मोकों सुनि बानी, महरि! तिहारी आन॥

शैशव के प्रथम प्रणय-परिचय का निष्कपट वार्त्तालाप के रूप में सूर ने मनोहर वर्णन किया है—

बूझत श्याम, 'कौन तू, गोरी।
कहां रहति, काकी तू बेटी? देखी नाहिं कहूं ब्रज-खोरी॥'
'काहे को हम ब्रज तन आवति? खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति श्रवनन नंद-ढोटा करत रहत माखन-दधि चोरी॥'
'तुम्हरौ कहा चोरि हम लै हैं? खेलन चलौ संग मिलि जोरी'।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी॥

सूर का बाल-प्रकृति सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक अध्ययन विश्व-साहित्य की एक अनुपम निधि है। सूर का निरीक्षण शैशव-जन्य शृङ्गारी मनोवृत्तियों तक ही सीमित नहीं रहा। बाल-मनोवृत्ति की विभिन्न दशाओं का निरूपण

भी सूर ने बड़ी सजीवता, सुन्दरता और स्वाभाविकता से किया है। खेल-खेल में ऊँच-नीच का भाव सजग होकर बाल-हृदय में कैसा क्षोभ पैदा कर देता है, इसका एक उदाहरण देखिये—

खेलत में को काको गोसैयाँ
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ
जाति-पाँति हमतें कछु नाहीं, ना कछु बसत तुम्हारी छैयाँ
अति अधिकार जनावत याते अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ

बालपन का चित्रण सूर ने जिस उत्तमता से किया है, वह अतुलनीय है। पृष्ठ पर पृष्ठ इसकी प्रशंसा में लिखे जा सकते हैं। बचपन की आनन्द-मयी अवस्था सभी को प्रिय लगती है। विगत शैशव की स्मृति में अनेक कलाकारों ने अपने मनोभावों की मन्दाकिनी बहाई है। सूर ने पकी आयु में भी बालकृष्ण का आश्रय लेकर शैशव की सरलता और सरसता को साकार देख लिया था।

स्त्री प्रेम है और पुरुष सौन्दर्य। सूर की कविता प्रेम और सौन्दर्य के कोमल धागों से बुनी हुई है। कृष्ण सूर की सौन्दर्य-कल्पना के मोहक प्रतीक हैं। ऐसे आकर्षक प्रतीक से स्फूर्तिदायिनी प्रेरणा पाकर सूर ने संगीत की अबाध धारा में सौन्दर्य को राशि-राशि कर बहा दिया। कल्पना की इस अभिनव मूर्ति का लोकरंजक रूप न था। इसमें परुषता न थी, थी केवल स्निग्धता और एक माधुर्यमय ललितता। इसमें चाँदनी की-सी शीतलता का प्रभाव था, धूप की तपन न थी। कृष्ण की प्रत्येक अदा या भाव-भंगिमा पर अनुरक्ति भरी दृष्टि डाल कर सूर ने जो कलापूर्ण चित्र खींचे हैं, सूर-सागर उनका एक आकर्षक 'अलबम' है। कृष्ण के नीरज-नयन, विहँसित अधर, सुघर कपोल, कुंचित केश, विमोहक वसन आदि के वर्णन में सूर ने रूप-नद का बाँध ही खोल दिया है। नेत्रों के सम्बन्ध में एक पद देखिये—

देखिरी ! हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर एक सैन॥

राजिवदल इन्दीवर, शतदल, कमल कुशेशय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये विगसे दिन राति ॥
अरुन असित सित झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गंग जमुन मिलि आगम कीन्हो आय ॥

सौन्दर्य का आदर्श रूप तो सूर ने अपने कृष्ण की कल्पना में स्थिर कर दिया। प्रेम-तत्व के निरूपण के लिए अनुरागमयी राधा की अवतारणा हुई और इस प्रकार राधाकृष्ण के संयोग-शृङ्गार से सज्जित सूर के गीति-काव्य में नई चमक आगई।

प्रथम सनेह दुहुँन मन जान्यो।
सैन-सैन कीनी तब बातें गुप्त प्रीति शिशुता प्रगटान्यो ॥
खेलन कबहुँ हमारे आवहु नंद-सदन ब्रज गाँव।
द्वारे आइ टेरि मोहिं लीजो कान्ह है मेरो नाउँ ॥
जो कहिये घर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिये टेर।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की प्रात साँझ इक फेर ॥
सूधी निपट देखियत तुमकौं ताते करियत साथ।
सूर स्याम नागर उन नागरि राधा दोउ मिलि गाथ ॥

यह 'लरिकाई की प्रीति' धीरे-धीरे नया रंग लाने लगी। शैशव की भोली भावना में बेचैनी आने लगी। मनोज के बाणों से आहत हृदयों में चाह की दाह दहकने लगी। बचपन की आड़ में सजग यौवन की खिलवाड़ कुछ काल तक चलती रही। सूर ने किस ख़ूबी से शैशव के झीने पर्दे में तरुण राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला कराई है—

नीबी ललित गही यदुराई।
जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति गइ आई ॥
तत्क्षण रुदन करत मनमोहन मन में बुधि उपजाई।
देखो ढीठ देत नहिं माता राखी गेंद चुराई ॥
काहे को झकझोरत नोखे चलहु न देहु बताई।
देखि विनोद बाल सुत को तब महरि चली मुसकाई ॥

उपर्युक्त पद से सूर की समयानुकूल सूझ-बूझ का अच्छा परिचय मिलता है। संयोग-शृङ्गार का वर्णन यद्यपि सूर ने बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर ही किया है तथापि शिष्टता और शालीनता का पूरा ध्यान रक्खा है।

चाँदनी रात, यमुना-तट, मुरली-वादन और रम्य रास। सूर की 'रोमांटिक' प्रवृत्ति का आभास प्रेम-व्यापार के लिए प्रस्तुत की गई इन वस्तुओं से हो सकता है। सूर की इस रंगीन कल्पना में पलायन की प्रवृत्ति न थी। यथार्थ के प्रति तन्मय-भावुक चिन्तन ने सूर के अन्तःपट पर ऐसे रमणीय दृश्यों को अंकित कर दिया था।

पशुचारण-काव्य (Pastoral poetry) ग्रीक और रोम के प्रकृति-प्रेमी कवियों का प्रिय विषय रहा है। कृत्रिम सभ्यता की सीमा से दूर प्रकृति के रम्य प्रांगण में स्वच्छन्द विचरण करने वाली आदिम भावना ने पशुचारण-काव्य को जन्म दिया था। सूर ने भी प्रकृति के सुहावने विस्तृत क्षेत्र को अपने काव्य-नायक की केलि-क्रीड़ा का रंगमंच बनाया। करील के कुञ्ज, कलिन्दजा का कल-कल नाद और रोमन्थ करती गौओं का वंशी के स्वर से पुलक-कंपन आदि दिव्य दृश्यों से सूरसागर भरा पड़ा है।

विरह-जन्य करुण संगीत की जो धारा कवि ने बहाई है, उसके तीक्ष्ण प्रवाह और आप्लावित करने वाली शक्ति का परिचय हमें विरहिणी-व्रजांगनाओं के शोकाकुल कातर उच्छ्‌वासों में मिलता है। कृष्ण के मथुरा-गमन पर समस्त व्रज में उदासी छा गई है। जो व्रज-वनिताएँ श्याम की मुरली-ध्वनि से स्नेहाभिभूत होकर सब काम-काज भूल जाती थीं, वे अब अश्रुपूरित दृगों में प्रतीक्षा लिए, सिर झुकाए बैठी रहती हैं, क्योंकि—

> बिन गोपाल बैरिनि भई कुंजैं।
> तब ये लता लगति अति सीतल,
> अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।
> वृथा बहति जमुना खग बोलत,
> वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।

पवन पानि घनसार संजीवनि,
दधि-सुत-किरन भानु भई भुंजैं।
ए ऊधो कहियो माधव सों,
बिरह करद करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत,
अंखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

विप्रलंभ शृङ्गार का सूर ने बड़ा ही हृदयग्राही और करुणोत्पादक वर्णन किया है। वियोगिनी राधा का चित्र खींचने में सूर ने समस्त करुणा-सागर को मथ डाला है। कृष्ण-वियोग-व्यथिता राधा की दशा देखकर हृदय में गहरी टीस जाग उठती है, निम्नाङ्कित पद देखिए—

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरिश्रम जल अन्तर तनु भीजे जा लालच न धुवावति सारी।
अधो मुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजे अलि जारी।
सूरस्याम बिनु यों जीवति है ब्रज बनिता सब श्याम दुलारी॥

भ्रमरगीत के वेदनामय वातावरण में व्यंग्य की फुलझड़ियाँ उद्विग्न हृदय को थोड़ा सहला देती हैं। सलोने श्याम के स्मृति-शर से आहत ब्रजांगनाएँ उद्धव की ज्ञान-चर्चा से झुँझला उठती हैं। निर्गुण की महिमा का उपदेश उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालता—

निर्गुन कौन देश को बासी।
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दे बूझति साँच न हाँसी।
कोहै जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो चहि रस में अभिलासी॥

सूरदास का काव्य-क्षेत्र तुलसी के समान व्यापक न था, किन्तु परिमित क्षेत्र में भी अनुभूति की गहरी अन्तर्दृष्टि डालकर सूर ने 'सागर' को 'मानस' की गहराई तक पहुँचा दिया है। वात्सल्य का निरूपण तुलसी ने

भी किया है, किन्तु सूर के आगे वह बिल्कुल फीका दीखता है। लावरायमय जल-पूरित विस्तृत सागर को यदि हम 'मानस' की महत्ता प्रदान करें तो विरहिणी के कोमल कपोल पर झलकते हुए खारे अश्रु-विन्दु से सूर के पद की समता की जा सकती है। वास्तव में सूर और तुलसी हिन्दी-काव्याकाश के दो जाज्वल्यमान प्रचराड प्रकाश-पिराड हैं।



नन्ददास

सूरदास के पश्चात् काव्य-कौशल की दृष्टि से अष्टछाप के अन्तर्गत नन्ददास का नाम आता है। इनका जन्म संवत् १५६० के आस-पास माना जाता है। नाभादास-कृत भक्तमाल में नन्ददाससम्बन्धी एक छप्पय मिलता है, किन्तु इससे इनके जीवन-वृत्त पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। ये सूरदास के समकालीन थे। दोसौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता में इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का भाई बताया गया है। कहते हैं कि, एक रूपवती खत्रानी की सौन्दर्य-शिखा पर ये शलभ बनकर कुछ काल तक मँडराते रहे, किन्तु गोसाईं विट्ठलनाथजी के सदुपदेश सुन मोह-पाश से मुक्त होकर भगवद्-भजन में लीन होगए।

इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें रासपंचाध्यायी, भँवर-गीत, रूप-मंजरी, विरह-मंजरी, रस-मंजरी, मान-मंजरी, नाम-माला, अने-कार्थ-मंजरी, श्याम-सगाई, दशम-स्कंध, रुक्मिणी-मंगल और पदावली अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने गद्य-रचना भी की थी। हितोपदेश और नासिकेत-पुराण इनके दो गद्य-ग्रन्थ कहे जाते हैं।

इनकी कविता में सरसता और प्रवाह है। भरती के शब्द बहुत कम पाये जाते हैं। भावोन्माद में ये काव्य के बाह्य सौन्दर्य के महत्त्व को विस्मृत नहीं कर देते। शब्दों का चयन और भावों का स्पष्ट निरूपण इनके काव्य की विशेषता है। इनके सम्बन्ध में 'और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया' वाली उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। इनकी कविता के उदाहरण देखिये—

यह सब सगुन उपाधि रूप निर्गुन है उनकौ ।
निरविकार निरलेप लगति नहिं तीनों गुन कौ ।
हाथ न पाँव न नासिका, नैन बैन नहिं कान ।
अच्युत ज्योति प्रकाश है, सकल बिस्व को प्रान—
सुनो ब्रजनागरी ॥
जो उनको गुन नाहिं और गुन भए कहाँ ते ।
बीज बिना तरु जमैं मोहि तुम कहौ कहाँ ते ।
वा गुन की परछांह री माया दरपन बीच ।
गुन ते गुन न्यारे भए अमल बारि मिलि कीच—
सखा सुन श्याम के ॥
ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ ।
प्रेम सहित हम पास नन्दनन्दन गुन गावौ ।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भर पूरि ।
प्रेम पियूसै छाँड़ि के कौन समेटै धूरि—
सखा सुन श्याम के ॥

———o———

परमानन्ददास

कन्नौज में जन्म लेने के कारण इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना जाता है। ये संगीतकला में विशेष निपुण थे। अष्टछाप के अन्तर्गत इनका भी नाम है। वल्लभाचार्यजी ने इन्हें दीक्षा दी थी। संगीत की सरस तरंगों पर तैरते हुए भावोन्माद में ये पद रचना करते थे। इनके काव्य-संग्रह का नाम 'परमानन्द-सागर' है। इनके दो पद देखिये—

प्रेम उमँगि बोलत नँदरानी ।
अहो श्रीदामा ले वाकूं किन टेरि टेरि मधुबानी ॥
भोजन बार अबार जानि के सुरत भई अकुलानी ।
ढूंढ़त घर द्वारे लौं जाई तन की दशा हिरानी ॥

जसोमति प्रीति जनाइ उठि दौरे मुख कच रज लपटानी ।
परमानंद नंदनंदन को अँखियां निरखि सिरानी ।।

× × ×

कहा करौं बैकुंठहि जाय ।
जहँ नहिं नंद, जहाँ न जसोदा, नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय ।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल, और नाहिं कदमन की छांय ।
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ।।

कृष्णदास

ये शूद्र कुल में जन्मे थे, किन्तु भगवद्भजन में इनकी बड़ी निष्ठा थी। इनका जन्म अहमदाबाद के निकटवर्ती किसी स्थान पर हुआ था। इनके पिता दस्यु-वृत्ति के थे। पिता का विरोध करने के कारण इन्हें गृह-निष्कासन का दण्ड मिला। कुछ समय तक ये इधर-उधर भ्रमण करते रहे, फिर आचार्यजी से भेंट होने पर इन्हें भी दीक्षा मिली। श्रीनाथजी के चरणों की ये श्रद्धासहित सेवा करते थे। कहते हैं कि एक स्त्री से इनका सम्बन्ध होजाने के कारण गोसाईंजी से इनका मतभेद होगया। षड्यंत्र रच के इन्होंने गोसाईंजी को गद्दी से हटा दिया, किन्तु राजा बीरबल ने इन्हें क़ैद करके गोसाईंजी को फिर गद्दी सौंप दी। गोसाईंजी ने उदारतापूर्वक इन्हें मुक्त करा दिया। ये मीराबाई से भी मिले थे।

इन्होंने राधा-कृष्ण विषयक शृंगारी पदों की रचना की थी। पदावली, रासलीला, भ्रमरगीत, जुगलमानचरित्र, प्रेमरस-राशि, प्रेम-तत्त्व-निरूपण आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। इनकी कविता की बानगी देखिए—

जय जय तरुन घनस्याम वर सौदामिनी रुचि बास ।
बिमल भूषन तारका गन तिलक चंद बिलास ।
जय जय नृत्य गान संगीत रस बस भामिनी संग रास ।
बदन स्रम जल कन विराजित मधुर ईषत हास ।

जय जय बन्यो अद्‌भुत भेष गावत मुरलिका उल्लास ।
कृष्णदास नमित चरन हरिदासवर्य निवास ॥

कुम्भनदास

ये भी 'अष्टछाप' मण्डल के सदस्य और परमानन्ददास के समकालीन थे। इनका जन्म गोवर्धन के निकट क्षत्रिय कुल में हुआ था। बहुला नामक स्त्री से इनका विवाह हुआ था। इससे इन्हें एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ जो आगे चल कर चतुर्भुजदास के नाम से अष्टछाप के अन्तर्गत प्रसिद्ध कवि हुए। ये बड़े ही निर्लिप्त और निर्विकार भक्त थे। आचार्यजी से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीनाथजी के चरणों में इनकी बड़ी प्रीति थी। धन-वैभव का मोह इन्हें छू तक न गया था। एक बार बादशाह अकबर के निमंत्रण पर इन्हें अनिच्छापूर्वक फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा था, जैसा कि निम्न पद से प्रतीत होता है—

संतन को कहा सीकरी सों काम ।
आवत जात पनहियां टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम ।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम ।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिनु और सबै बेकाम ॥

इनकी कविता उच्चकोटि की नहीं है। दानलीला और पदावली नाम से इनके दो काव्य-संग्रह मिलते हैं। कृष्णस्तुति विषयक इनका एक पद देखिए—

जयति जयति श्री हरिदासवर्य धरने
बारि वृष्टि निवारि घोष आरति टारि देवपति अभिमान भंग करने ।
जयति पटपीत दामिनी रुचिर वर मृदुल अंग सांवल सजल जलद बरने ।
कर अधर बेनु धरि गान कलरव सब्द सहज बृज जुवति जन चित्त हरने ।
जयति बृन्दा बिपिन भूमि डोलति अखिल लोक बंदनि अंबुसह चरने ।
तरनि तनया निहारि नंद गोपकुमार दास कुम्भन नत मन बसि सरने ॥

चतुर्भुजदास

अपने पिता कुम्भनदास की परम्परा निभा कर इन्होंने भी अष्टछाप के अन्तर्गत अपनी कीर्ति-कौमुदी का प्रसार किया। ये कवि की अपेक्षा संगीतज्ञ अच्छे थे। इनकी रची हुई दानलीला, भक्ति प्रताप, मधुमालती कथा, द्वादश-यश, कीर्तनावली, पदावली आदि छह पुस्तकें पाई जाती हैं। इनका एक पद देखिये—

रस ही में वश कीने कुंवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रस ही रीझत रस मिल रस त्यज माई।
पिय को प्रेमरस सुन्यो है रसीली बाल रसमै बचन स्रवन सुखदाई।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर सब रसनिधि रसता मिलिहै रहसि हृदय लिपटाई॥

—— o ——

छीतस्वामी

ये मथुरा के चौबे थे तथा अपने प्रारम्भिक जीवन में आवारागर्दी और गुण्डागिरी के लिये बदनाम थे। संवत् १५९२ के लगभग गोसाईंजी ने इन्हें दीक्षा दी। तब से इनका जीवन-क्रम ही बदल गया और भगवद्भक्ति की ओर इनकी अनुरक्ति बढ़ चली तथा इन्होंने श्रीकृष्ण का गुणगान प्रारम्भ कर दिया। इनकी कविता साधारण है। एक पद देखिये—

भोर भये नवकुंज-सदन तें आवत लाल गोवर्धन-धारी।
लटपट पाग मरगजी माला, सिथिल अङ्ग डगमग गति न्यारी।
बिनुगुन माल बिराजति उर पर, नखछत द्वैजचंद अनुहारी।
छीतस्वामी जब चितए मो तन, तब हौं निरखि गई बलिहारी॥

—— o ——

गोविन्द स्वामी

इनका जन्म भरतपुर राज्य के आँतरी नामक ग्राम में सं० १५६२ के लगभग एक सनाढ्य कुल में हुआ था। ये संगीत के विशेषज्ञ थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्हें गुरु रूप में मानते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी से इन्होंने

दीक्षा ली थी। कहते हैं, ये अपने रचे पदों को तन्मयतापूर्वक गाने के पश्चात् यमुना में प्रवाहित कर देते थे। इनकी भतीजी ने कुछ पद छिपा कर बचा लिए थे, वे ही अब उपलब्ध हैं। इनकी कविता में विशेष काव्य-सौष्ठव नहीं है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है।

कही न परै हो रसिक कुँवर की कुँवराई।
कोटि मदन नख ज्योति बिलोकत परसत नव इंदु किरण की जुन्हाई।
कंकण बलय हार गजमोती देखियत अंग अंग में वह आई।
सुघर सुजान स्वरूप सुलक्षण गोविन्द प्रभु सब विधि सुन्दरताई॥

अष्टछाप की स्थापना करके आचार्य वल्लभ ने हिन्दी साहित्य को आठ चुने हुए कवि तथा संगीतज्ञ प्रदान किए। यद्यपि ये सभी कवि सूरदास और नन्ददास की कोटि के नहीं थे फिर भी अपनी भक्ति-भावना को उत्कृष्ट संगीतमय गेय पदों में व्यक्त करके इन्होंने गीतिकाव्य के विकास में सहयोग दिया। यह ठीक है कि आगे चलकर सात्विक शृङ्गारी भावना की प्रवृत्ति अश्लीलता की ओर झुक गई, किन्तु इसके लिए अष्टछाप के कवियों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। मुग़ल कालीन विलासिता का प्रभाव कविता पर भी पड़ा तथा परिणामस्वरूप कृष्णकाव्य की ओट में कलुषित मनोभावों का प्रसार हुआ।

हितहरिवंश

अष्टछाप के कृष्ण-भक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी राधा-कृष्ण के प्रति अपनी भावनाञ्जलि चढ़ाई। इनमें हितहरिवंशजी का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने राधावल्लभीय संप्रदाय चलाया जिसके अन्तर्गत कृष्ण-काव्य ने अच्छी प्रगति की। हितहरिवंशजी संस्कृत के प्रसिद्ध पण्डित थे। इन्होंने संस्कृत में भी रचना की थी। १७० श्लोकों में 'राधासुधानिधि' नामक ग्रंथ लिखा था। इनके स्फुट पदों का संग्रह 'हित चौरासी' नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने राधा की उपासना पर ही विशेष बल दिया है। हरिराय

व्यास, सेवकजी, ध्रुवदास आदि इनके शिष्य थे जो अच्छी कविता करते थे। हितहरिवंशजी की काव्यगत सरसता और सुमधुरता के कारण इन्हें श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार कहा गया है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए—

बिपिन घन कुंज रति केलि भुज मेलि रुचि,
स्याम स्यामा मिले सरद की जामिनी।
हृदय अति फूल, रसमूल पिय नागरी,
कर निकर मत्त मनु बिविध गुन रागिनी॥
सरस गति हास परिहास आवेस बस,
दलित दल मदन बल कोक रस कामिनी।
हितहरिबंस सुनि लाल लावण्य भिदे,
प्रिया अति सूर सुख-सुरत संग्रामिनी॥

———o———

हरिदास

निम्बार्क मत के अन्तर्गत इन्होंने अपना टट्टी सम्प्रदाय चलाया। ये सुकवि और सुगायक थे। इनकी संगीत-निपुणता से तानसेन बहुत प्रभावित थे। सम्राट् अकबर इनका बहुत मान करते थे। अनेक राग-रागिनियों में इन्होंने पद रचना की है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है—

ज्योंही ज्योंही तुम राखत हौ, त्योंहीं त्योंहीं रहियत हौं हे हरि।
और अपरचै पाय धरों सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि।
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं कैसे करि सकौं जौ तुम राखौ पकरि।
कहै हरिदास पिंजरा के जनावर लौं तरफराय रह्यो उड़िबे को कितोऊ करि॥

———o———

सूरदास मनमोहन

ये विप्रवंश स्थित गौड़ीय संप्रदाय के वैष्णव थे। अकबर के राजत्वकाल में ये संडीले के अमीन थे। साधु-सत्संग-प्रेमी थे तथा साधुओं का उदारता-

पूर्वक सत्कार करते थे। एक वार इन्होंने मालगुज़ारी का सारा धन साधुओं के आतिथ्य में ख़र्च कर दिया था, किन्तु अकबर ने इनकी धार्मिक प्रवृत्ति का आदर करते हुए इन्हें कोई दण्ड नहीं दिया। इनकी कविता बड़ी सरस है। उदाहरणार्थ निम्न पद पढ़िए—

मधु के मतवारे स्याम! खोलो प्यारे पलकैं।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं।
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु कलकैं।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं।
कटि पीतांबर मुरली कर स्रवन कुण्डल भलकैं।
सूरदास मदनमोहन दरस दैहौ भल कैं॥

———०———

श्रीभट्ट

इन्होंने 'युगल-शतक' और 'आदि वाणी' की रचना की है। अकृत्रिम ढंग से छोटे पदों में ये अपना भक्ति-भाव प्रकट करते थे। ये बड़ी तल्लीनता से अपने पद गाया करते थे। एक पद देखिए।

भीजत कब देखों इन नैना।
स्यामाजू की सुरंग चूनरी, मोहन को उपरैना।
स्यामा स्याम कुंजतर ठाढ़े, जतन कियो कछु मैं ना।
श्रीभट उमड़ि घटा चहुँ दिसि तें घिरि आई जल-सेना॥

———०———

हरिराम व्यास

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हितहरिवंशजी के शिष्य और ओरछा-नरेश मधुकरशाह के राजगुरू थे। ये संस्कृत के धुरंधर विद्वान् तथा शास्त्रार्थ-महारथी थे। हितहरिवंशजी से दीक्षा ग्रहण कर ये वृन्दावन में ही रम गए। श्रीकृष्ण के बाल-लीला और सौन्दर्य-श्रृङ्गार-सम्बन्धी सुन्दर

पदों की इन्होंने रचना की है। इन्होंने एक 'रास पंचाध्यायी' भी लिखी थी। इनकी कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

सुघर राधिका प्रवीन बीना, बर रास रच्यो,
स्याम संग बर सुढंग तरनि-तनया तीरे।
आनँदकंद बृन्दावन सरद मंद मंद पवन,
कुसुमपुंज तापदलन, धुनित कल कुटीरे।
रुनित किंकनी सुचारु, नूपुर तिमि बलय हारु,
अंग बर मृदंग ताल तरल रंग भीरे।
गावत अति रंग रह्यो, मोपै नहिं जात कह्यो,
ब्यास रसप्रवाह बह्यो निरखि नैन सीरे॥

मीराबाई

माधुर्यभाव-रंजित रहस्य भावना-निहित मीरा की प्रेमोपासना सूफ़ी कवियों की प्रणाली पर थी। कृष्ण के प्रेम में हर्षोन्मत्त हो भक्तशिरोमणि मीरा 'लोकलाज' का परित्याग कर अपने 'गिरधर गोपाल' के आगे नाचती-नाचती मूर्च्छित होजाती थीं। ये राठौर फूलसिंह की पुत्री और राव दूदाजी की पौत्री थीं। इनका जन्म-काल सं० १५७३ के लगभग माना जाता है। उदयपुर के राजकुमार भोजराज से इनका विवाह हुआ था, किन्तु विवाह के कुछ समय पश्चात् ही मीरा का सुहाग-सिन्दूर पुछ गया। विधवा होजाने पर इन्होंने श्रीकृष्ण से अपना नाता जोड़ लिया और उन्हीं की उपासना में जीवन-यापन करने लगीं। साधु-सन्तों से मिलने-जुलने के कारण राज-परिवार के लोग इनसे असंतुष्ट रहने लगे। यहाँ तक कि इनके प्राण लेने के लिये भी कई वार प्रयत्न किये गए जो भगवान् की कृपा से निष्फल सिद्ध हुए। इनकी कविता बड़ी ही मधुर और भक्ति-भाव से भरी हुई है। इनके रचे हुए चार ग्रन्थ बताये जाते हैं—नरसीजी का मायरा, गीत गोविन्द टीका, राग गोविन्द और राग सोरठ के पद। अनेक भक्त कवियों ने मीरा को आदर-

सहित स्मरण किया है। इन्होंने अपनी कविता में व्रजभाषा का प्रयोग किया है, जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी का पुट भी है। इनका एक पद नीचे दिया जाता है—

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जबके तुम बिछुरे प्रभु मेरे कबहुँ न पायौ चैन॥
सबद सुनत मेरी छतिया काँपै मीठे मीठे बैन।
कल न परत पल हरि मग जोवति भई छमासी रैन॥
बिरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण सुख दैन॥

रसखान

ये जाति के पठान थे। विधर्मी होते हुए भी कृष्ण के प्रति इनकी अत्यंत भक्ति थी। इनका हृदय प्रेम-रस से ओत-प्रोत था। व्रजभाषा में इन्होंने बड़ी ही सरस और प्रभावोत्पादक काव्य-रचना की है। विट्ठलनाथजी के ये प्रिय शिष्यों में से थे। इनकी दो पुस्तकें मिलती हैं–प्रेम-वाटिका और सुजान रसखान। नीचे इनका एक प्रसिद्ध सवैया दिया जाता है।

मानुस हों तो वही रसखान बसौं सँग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हों तौ कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर-धारन।
जो खग हों तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

ध्रुवदास

इन्होंने लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की। स्वप्न में ये हितहरिवंशजी-द्वारा दीक्षित हुए थे। इन्होंने अनेक छन्दों में प्रेम-तत्त्व का निरूपण किया है। ये वृन्दावन-वासी थे। नीचे इनका एक कवित्त दिया जाता है—

रूपजल उठत तरंग हैं कटाछन के,
अंग अंग भौंरन की अति गहराई है।

नैनन को प्रतिबिम्ब पर्यौ है कपोलन में,
तेई भये मीन तहाँ, ऐसी उर आई है ॥
अरुन कमल मुसुकान मानो फबि रही,
थिरकन बेसरि के मोती की सुहाई है ।
भयो है मुदित सखी लाल को मराल-मन
जीवन जुगल ध्रुव एक ठाँव पाई है ॥

सन्धि-काल के कवि

रीतिकाल के पूर्व और भक्तिकाल (कृष्ण भक्ति-शाखा) के अन्त में कुछ ऐसे कवि हुए जिनमें प्रतिभा थी, कवित्व शक्ति थी, किन्तु उसका उपयोग करने के लिये उनके सम्मुख कोई निश्चित उद्देश्य नहीं था। सम्प्रदायवादी कवियों का मार्ग पूर्णतः निर्धारित था, अतएव उनकी सम्पूर्ण शक्ति एक निश्चित लक्ष्य की ओर केन्द्रित होकर आगे बढ़ चली थी। किन्तु सन्धि-काल में अनेक प्रवृतियाँ काम कर रहीं थीं। कहीं नीति के दोहे कहे जाते थे तो कहीं शृङ्गार के सोहले गाये जाते थे। वीरता के वर्णन में कृत्रिम रूपकों की धड़ी बाँध दी जाती थीं। शब्द-चमत्कार, अर्थ-चमत्कार आदि काव्य-गत कौशल के फेर में पड़कर कुछ कवि अपनी-अपनी कलाबाजियाँ भी दिखला रहे थे। राम और कृष्ण का आश्रय छोड़कर कविगण राजा-महा-राजाओं की ओर झुकते जारहे थे। अतएव इस काल में एक-दो कवियों को छोड़कर श्रेष्ठ कवियों का अभाव-सा ही था। यहाँ हम सन्धि-काल के कुछ कवियों की चर्चा करेंगे।

नरहरि बन्दीजन

(सं० १५६२–१६६७)

'रुक्मिणी मंगल' 'और 'छप्पय-नीति' के रचयिता नरहरि बन्दीजन असनी फतेहपुर के निवासी थे। अकबर के दरबार में इनका यथेष्ट आदर

था। इनके एक छप्पय से प्रभावित होकर अकबर ने अपने राज्य में गोबध बन्द कर दिया था। वह छप्पय नीचे दिया जाता है—

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ।
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं।
कह कवि नरहरि अकबर सुनो बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

नरोत्तमदास (सं० १६०२)

'सुदामा-चरित' के रचयिता कवि नरोत्तमदासजी सीतापुर जिले के रहने वाले थे। इनकी कविता प्रवाहयुक्त, सरल और आकर्षक है। सुदामा की निर्धनता का वर्णन इन्होंने बड़े ही सजीव ढंग से किया है। नीचे इनका एक प्रसिद्ध सवैया दिया जाता है।

कैसे बिहाल बिवाइन सों भए, कंटक-जाल गड़े पग जोए।
हाय महादुख पायो सखा! तुम आए इतै न, कितै दिन खोए।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सों पग धोए॥

आलम

ये अकबर के राजत्वकाल में वर्त्तमान थे। संवत् १६३६–४० में इन्होंने 'माधवानल कामकंदला' नामक श्रृङ्गार-रस प्रधान प्रेमाख्यान लिखा था। ये श्रृङ्गार-प्रिय प्रेमी जीव थे तथा जाति के मुसलमान थे।

गंग

संधिकाल के कवियों में सुकवि गंग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये अकबर के दरबारी कवि थे। वाग्विदग्धता तथा हास्य व्यंग्य का इनकी कविताओं में

अच्छा पुट है। शृङ्गार और वीर रस सम्बन्धी इनके लिखे हुए अनेक उत्तम कवित्त हैं। ये बड़े ही निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। कहते हैं, किसी नवाब ने इनकी किसी बात से असंतुष्ट होकर इन्हें हाथी से चिरवा दिया था। इनकी कविता की बानगी देखिये—

बैठी तो सखिन सँग, पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग-आगि भरकी।
गंग कहैं त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई बिथा जर की॥
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ,
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि दरकी॥

रहीम

शाहंशाह अकबर के दरबार में ये प्रतिष्ठित पद पर आसीन थे। इनके नीति-सम्बन्धी दोहे खूब प्रचलित हैं। बरवै छन्द पर इनका पूर्ण अधिकार था। भावों की मार्मिकता और भाषा की मधुरता का रहीम के काव्य में सुन्दर समन्वय मिलता है। ये गोस्वामी तुलसीदास के मित्र थे तथा गोस्वामीजी के समान अवधी और व्रजभाषा दोनों में सफलतापूर्वक कविता करते थे।

बीरबल और टोडरमल

ये दोनों भी अकबरी दरबार के विशिष्ट रत्न थे। व्रजभाषा में इन्होंने सरस काव्य-रचना की है। कवित्त्व की दृष्टि से इनकी रचनाएँ उच्चकोटि की नहीं गिनी जा सकतीं, किन्तु फिर भी सहृदयता, भावुकता और काव्य-मर्मज्ञता के नाते इनका आदर किया जाता है।

सेनापति

प्रकृति-प्रेमी कवियों में 'सेनापति' का प्रमुख स्थान है। ये राज्याश्रय से प्रायः मुक्त ही रहे। जीवन के अंतिम चरण में इन्होंने संन्यास ले लिया था। इन्होंने विभिन्न ऋतुओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके वर्णन किया है। भक्ति और वैराग्य सम्बन्धी कुछ कविताएँ भी इन्होंने लिखी हैं। नीचे इनके ऋतु विषयक दो कवित्त दिये जाते हैं—

सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारिहू दिसानि घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति,
आए हैं पहार मानों काजर के ढोइ कै॥
घन सों गगन छयो तिमिर सघन भयो
देखि न परत मानो रवि गयो खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि
मेरी जानि याही ते रहत हरि सोइ कै॥

× × ×

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो,
आई रितु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी सु-
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की हिए में आनि खरकी,
सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

———०———

रीतिकालीन काव्य

जब मुसलमानों के आक्रमण-उद्वेग ने हिन्दुओं के असंगठित समुदाय को भयभीत-सा कर दिया, तब निराशा, खिन्नता और ग्लानि के सघन घन भारतीय व्योम-मंडल में छा गए। उन दुर्दिनों में यदि किसी ने उनकी मनोव्यथा का अनुभव किया तो वह दिव्यवाणी युक्त भारत के भक्त कवियों का हितैषी-मंडल था। इन पवित्र जीवनावलम्बी भक्त कवियों ने शांति और सहानुभूति का शुभ संदेश देकर हिन्दू-समाज के विदीर्ण हृदय को नवीन उत्साह और आशा के मरहम से सुगठित किया। उन महापुरुषों की सात्विक कविता जनता को सन्मार्ग पर अग्रसर करती हुई अमरत्व को प्राप्त हुई। कबीर, तुलसी, सूर और जायसी जैसे महात्माओं ने चिरस्थायी काव्य-ग्रन्थों का निर्माण कर अपने-अपने आदर्शों और उद्देश्यों का सफल प्रचार किया। साहित्य-भांडार में अनेक मूल्यवान् रत्न एकत्र होते गए। उधर सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों के सरस, मधुर, मुक्तक गीतों और पदों से हिन्दी भाषा में विशेष कोमलता आई। कृष्ण-राधा-विलास और व्रजभूमि की विरहिणी गोपिकाओं के हाव-भाव-चित्रण ने आगे के कवियों को शृङ्गाररस के काव्य-निर्माण की प्रेरणा दी। यद्यपि सूरदास के गोपाल-गोपिकासम्बन्धी संयोग-वियोग वर्णन में भक्त और भगवान् का ही वास्तविक प्रकटीकरण है, तथापि नवीन उत्साही कवियों पर एक नई धारा प्रवाहित करने की धुन सवार हुई। सरस पद्य-रचना करने की लिप्सा में, अलंकारों के लक्षणों पर कविताएँ रची जाने लगीं। कुछ लोग और भी आगे बढ़कर रस-निरूपणसम्बन्धी नायक-नायिका के भेद-उपभेद कर बैठे और उनके लक्षणों पर काव्यमय सरस शृङ्गारयुक्त उदाहरण लिखने लगे। इसी प्रकार की नई काव्य-धारा को इतिहासकारों ने रीतिकालीन कविता कहकर पुकारा।

रीति-कालीन कविता के विषय में सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस युग का काव्य-लोक जीवन से नगण्य प्रेरणा प्राप्त करता हुआ मर्यादाहीन

लौकिक हास-विलास का दर्पण था। साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक संस्कृत-ग्रंथों की रचना हो चुकी थी और तद्विषयक नये ग्रंथों का निर्माण चालू था। पर इस काल के शास्त्रीय ग्रंथ कहे जाने वाले शृङ्गारी ग्रंथों में वैसी शास्त्रीय विवेचना की कोई झलक नहीं थी। रस और अलंकार के लक्षण की आड़ में अश्लील शृंगार की रचनाएँ पनपने लगीं। कृष्ण-भक्ति के नाम पर व्रज की 'विरहिनों' के अमर्यादित चित्रण हुए। रीतिकाल की इस कविता को लोक-सहानुभूति से इसलिए भी विमुख रहना पड़ा कि अधिकतर रीति-कालीन कवि राजा-महाराजाओं के आश्रय में चैन की नींद सोते थे। अपने आश्रयदाताओं की विलास-प्रियता को तृप्त करने के लिए इन्हें रसीली-चटकीली कविताएँ रचनी पड़ती थीं। फिर उन्हें लोक-हित की चिन्ता कैसे सता सकती थी।

रीति-कालीन कवियों ने नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी रस-निरूपण के अनेक अंगों से विरत हो नायक-नायिकाओं का भेद इसलिए भी किया था कि व्रजविहारी कृष्ण के प्रेम-भाव के विभिन्न रूपों को उनकी भूमिकाओं के अनेक हाव-भावों के साथ चित्रित किया जा सके। इसीलिए तो हिन्दी भाषा का भक्ति-कालीन स्वरूप जो गीतों के बन्धन में जकड़ा हुआ था, शास्त्र के प्राचीन छन्दों में भी पूर्णतः विकसित होता रहा।

काव्य-निर्माण करने के निमित्त रीति-कालीन कवियों में एक ऐसी परिपाटी प्रचलित हुई, जिसमें न तो वे आचार्य रूप में ही विकसित और प्रतिष्ठित हुए और न कवि के आदर्श का ही पालन कर सके। आचार्यत्व और कवित्व दो भिन्न शाखाओं को मिश्रित कर हिन्दी के कवियों ने अलग से शास्त्रीय काव्यांगों का स्पष्ट विवेचन करने का उत्तरदायित्व नहीं लिया। संस्कृत-साहित्य के आचार्य और कवि दो भिन्न ग्रंथकार समझे जाते थे। उनके विषय-प्रतिपादन के क्षेत्र ही पृथक् थे। हिन्दी-साहित्य के इस काल में आचार्यत्व-प्रदर्शन के लिये जिस सूक्ष्म दृष्टिकोण की आवश्यकता थी उसकी अधिकतर कमी ही रही। कवियों ने संक्षेप में अलंकारों या रसों के लक्षण लिखे और उदाहरण स्वरूप अपना कवित्व प्रदर्शन करने के लिए

वे सवैयों या कवित्तों की रचना में रम गए। अलंकार-ग्रंथों का निर्माण प्रायः 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक' के सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए होने लगा। अतः लक्षण-ग्रन्थों का धुँधला आभास मात्र ही रीतिकाल के काव्यों में दृष्टिगत हुआ। रीतिकाल के कवियों को रस और अलंकार-निरूपण-सम्बन्धी प्रेरणा देने वाले सर्व प्रथम कवि केशवदास थे। भामह और उद्भट के काल की लक्षण-ग्रंथ-पद्धति को अपनाकर केशव ने अपनी अलंकारवादिनी चमत्कारपूर्ण परम्परा का संचालन किया। आगे के कवियों में काव्यांग-निरूपण की कुछ मौलिक विवेचना भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' में अवश्य मिलती है। अन्य सब कवियों ने तो सरस, मधुर और मनोरम कविता रचना ही अपना प्रमुख लक्ष्य समझा। शास्त्रीय विवेचना से दूर हट कर इन कवियों ने शृङ्गार के संयोग और वियोग की मुक्तक ग्रंथ-रचना द्वारा ही शृङ्गारी काव्यप्रियता की ओर अधिक रुचि दिखाई। नखशिख और षट्ऋतु-वर्णन के काव्यों से पूर्ण पोथे पर पोथे रँगे गए।

रीतिकाल के कोमल शृंगारी भावों के प्रभाव से हिन्दी भाषा भी कोमलाङ्गिनी बने विना न रही। तत्कालीन भाषा में अधिक चमक और मधुरता पाई जाती है। व्रजभाषा का विकसित माधुर्य यदि कहीं प्राप्त हो सकता है तो उस के लिये रीति-ग्रंथों के अतुल भांडार का निरीक्षण ही अनिवार्य समझना चाहिए। हिन्दी की इस सरस और कोमल शैली ने भाषाशास्त्र का बन्धन स्वीकार नहीं किया। अवधी आदि भाषाओं के मृदुल शब्द स्वच्छन्दता के साथ प्रयुक्त हुए, और परिणामतः सजीव, प्रवाहयुक्त कोमल-कान्त पदावलियों की झड़ी-सी लग गई।

रीतिकाल के जिन प्रमुख कवियों की संक्षिप्त विवेचना हमने इस पुस्तक में की है, उनमें कुछ ग्रंथकार ऐसे भी हैं जिन्होंने हास्य और वीर रस को भी अपनी काव्य-रचनाओं में अपनाया है। भूषण और बेनी इस दिशा में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यों तो किसी कवि के लिए रस सम्बन्धी कोई बंधन नही है, किन्तु उस समय अधिकांश रचनाएँ शृंगार के विविध पक्षों को लेकर ही रची जाती रहीं।

साहित्य-सृजन में सभी उद्देश्यों की पूर्ति होना बड़ा दुर्लभ है। रीतिकाल के कवियों ने अपनी सौन्दर्य-भावना को परंपरागत पद्धति के अनुसार प्रेम और शृङ्गारसम्बन्धी जो देन हिन्दी-साहित्य को दी वह सराहनीय ही नहीं बल्कि उनके व्यक्तित्व को अमरत्व प्रदान करनेवाली है। और इन कवियों की प्रवृत्ति लोकचिन्तन की ओर नहीं हुई अतः इस मधुर काल के शृंगार-प्रिय कवियों और रति-गाथा-प्रेमी आश्रयदाताओं की यह सबसे बड़ी त्रुटि समझी जानी चाहिए।



रीतिकालीन कवि

महाकवि केशवदास

जीवन-परिचयः—महाकवि केशवदास का जन्म संवत् १६०८ और १६१२ के लगभग माना जाता है। इनके पिता पं० काशीनाथ सनाढ्य ब्राह्मण थे। काशीनाथ ने 'शीघ्रबोध' नामक एक ज्योतिष-ग्रंथ की रचना की है। इनके पिता को ओरछा राज्य की ओर से वृत्ति मिलती थी। सम्भवतः उनकी पीढ़ी भी इस वृत्ति को प्राप्त करती रही। अतः केशवदास को पिता और पितामह की ओर से ज्योतिष तथा संस्कृत-ग्रन्थों के अध्ययन की प्रचुर पैतृक सम्पत्ति प्राप्त हुई।

काल विभाग की दृष्टि से केशवदास को भक्ति कालीन कवियों में प्रतिष्ठित करना चाहिये, किन्तु संस्कृत-साहित्य से अधिक प्रभावित होने के कारण वे हिन्दी-काव्य-परम्परा के साथ पग मिलाकर न चल सके। यद्यपि इनकी 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन करने पर इन्हें कोरा रीतिवादी कवि नहीं कहा जा सकता, तथापि रीति-ग्रन्थों की परम्परा को जन्म देने के कारण ये रीतिकालीन ग्रन्थकारों में प्रथम स्थान पाने के अधिकारी हैं।

जब मधुकरशाह के पुत्र रामशाह ओरछा के राजा हुए, तो इन्होंने अपने कनिष्ठ भ्राता महाराज इन्द्रजीत के ऊपर समस्त राज्य-भार छोड़ दिया। मधुकरशाह के पिता रुद्रप्रताप के दरबार में केशव के पितामह पं०

कृष्णदत्त मिश्र नियुक्त थे। मधुकरशाह ने केशव के पिता की प्रतिष्ठा-वृद्धि की और महाराज इन्द्रजीत ने महाकवि केशवदास जैसे चमत्कारी कवि को श्रद्धापूर्वक आश्रय दिया। राज-सभा में इन्हें गुरु की भाँति सम्मानित किया जाता था। संभवतः ३५ वर्ष की आयु में केशवदासजी ने कविता लिखनी प्रारम्भ की। इनको अपने जन्मस्थान से प्रवाहित होने वाली बेतवा नदी के मनोहर दृश्यों से बड़ी प्रेरणा मिलती थी।

महाराज इन्द्रजीत की सभा में संगीत तथा नाच-रंग की एक प्रसिद्ध मंडली थी। इसमें छह वाराङ्गनाएँ थीं। रागप्रवीन नामक गणिका महाराज की प्रेयसी थी। एक वार इस रूपवती की सौन्दर्य-कीर्ति सुनकर सम्राट् अक-बर ने उसे अपने दरबार में बुला भेजा; किन्तु रायप्रवीन बड़ी पतिव्रता थी। उसने सम्राट् अकबर की आज्ञा अस्वीकार की। परिणाम स्वरूप सम्राट् ने क्रुद्ध हो इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ रुपया जुर्माना किया, किन्तु केशवदास ने अपनी युक्ति तथा प्रभाव से बीरबल द्वारा सब जुरमाना माफ़ करा दिया। रायप्रवीन ने भी निम्नलिखित दोहा लिख कर अपने पातिव्रत धर्म का सराह-नीय परिचय देते हुए सम्राट् का समाधान किया—

बिनती रायप्रबीन की सुनिए साहि सुजान।
जूठी पातरि खात हैं बारी, बायस, स्वान॥

केशवदास को पांडित्य तो उनकी पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला ही था, साथ ही वाक्पटुता तथा राजनीति के दाव-पेचों के कारण भी उनकी बड़ी ख्याति थी। केशव की कविता पर तो महाराज इन्द्रजीतसिंह को इतना गर्व था कि उन्होंने अपनी मंडली को चिरस्थायी रखने के लिये 'प्रेतयज्ञ' किया था। यह घटना सत्य हो अथवा असत्य, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि केशवदास की कविता का महाराज आदर करते थे। बड़े-बड़े संकटों के समय अपनी अमूल्य मंत्रणा प्रदान करके केशवदासजी ने महाराज को चिन्ता-मुक्त किया था।

केशवदास के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि ये वृद्धावस्था में संसार से विदा हुए। गोस्वामी तुलसीदास से पूर्व इनका

शरीरान्त हुआ बताया जाता है, अतः सम्भवतः संवत् १६७४ के आसपास इनका देहवसान हुआ होगा। वृद्धावस्था तक ये रसिक बने रहे। एक दिन अपने बुढ़ापे से खीझकर इन्होंने लिखा—

'केसव' केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाहिं॥

केशवदासजी द्वारा सात ग्रन्थों की रचना मानी जाती है। १—रामचन्द्रिका, २—कविप्रिया, ३—रसिकप्रिया, ४—विज्ञानगीता, ५—छन्द बावनी, ६—वीरसिंह देव चरित्र और ७—जहाँगीर जस चन्द्रिका। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थों का और उल्लेख है: १—राम अलंकृत मंजरी, २—नखसिख और ३—छन्दःशास्त्र। इन सब पुस्तकों में रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया तथा विज्ञान गीता ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

'रामचन्द्रिका'

जिस काल में केशवदासजी काव्य-रचना के लिए समर्थ हुए, वह भक्त कवियों की विमल वाणी से गूंज रहा था। अतएव वे भी भक्ति-काव्य की रचना किए विना न रह सके। 'रामचन्द्रिका' की रचना इसी उद्देश्य से की गई। भगवान् राम को इन्होंने अपना आराध्यदेव स्वीकार किया है। उन्हीं की जीवन-गाथा 'रामचन्द्रिका' में वर्णन की गई है। अध्ययन की दृष्टि से केशव की सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक यही है। न तो इस ग्रन्थ को कोरा प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है, न मुक्तक। कारण यह है कि कथा-प्रवाह में प्रबन्ध-सौष्ठव कुशलता के साथ नहीं निवाहा गया। साथ ही संवाद-पद्धति नाटक का-सा स्वरूप प्रदर्शित करती है। और वास्तव में सम्पूर्ण ग्रन्थ में उसी की प्रधानता है। संवादों को मर्यादित रखकर केशवदास ने अपनी वाक्पटुता का सुन्दर परिचय दिया है, किन्तु छन्दों और अलंकारों के चमत्कारी चकाचौंध में ग्रंथ की भाव-व्यंजना कुछ निस्तेज-सी पड़ गई है। वर्णन में गंभीरता का आभाव है। चरित्र-चित्रण में गहराई नहीं है। यह सब होते हुए भी 'राम-चन्द्रिका' के सजीव और सुन्दर संवादों में अध्ययन की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। कुछ उदाहरण देखिए:—

मूलन ही की जहां अधोगति 'केसव' गाइय ।
होम-हुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय ।
दुर्गत दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कविकुल के जी में ।
अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि ।
मन मोह्यो ऋषिराज को अद्भुत नगर निहारि ॥

× × × ×

तरु तालीस, तमाल, ताल हिंताल, मनोहर ।
मंजुल बंजुल, तिलक, लकुच-कुल, नारिकेर वर ।
एला, ललित लवंग, संग पुंगीफल सोहैं ।
सारी-सुक-कुल कलित, चित्त कोकिल-अलि मोहैं ।
सुग, राजहंस, कलहंस-कुल, नाचत मत्त मयूरगन ।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै 'केसवदास' विचित्र वन ॥

राम-जनकपुर-गमन—

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे ब्रत-भंग भयो सु-कहौ अब 'केसव' को धनु ताने ॥
सोक की आगि लगी परिपूरन, आइ गए घनस्याम विहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने ॥

× × × ×

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी, जग जीव जतीन की छूटी तटी ॥
अघ-ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रगटी गुरुज्ञान-गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नहीं गुन धूरजटी जटी पंचवटी ॥

'कवि प्रिया'

इस ग्रन्थ में कवि केशव, आचार्य केशव के रूप में अवतरित होते हैं। अलंकारों का स्पष्ट और विस्तृत विवेचन 'कविप्रिया' में दृष्टिगत होता है।

किन्तु अलंकारों का वर्णन शास्त्रीय रीति से नहीं हुआ। काव्य-रचना-सम्बन्धी शिक्षा भी इस ग्रंथ से मिलती है। एक दो उदाहरण देखिए—

रतनाकर लालित सदा परमानंदहि लीन।
कमल अमल कमनीय कर रमा कि रायप्रवीन॥
रायप्रवीन कि सारदा सुचि रुचि-रंजित अंग।
बीना–पुस्तक–धारिनी राजहंस सुत–संग॥
वृषभ–वाहिनी अंगजुत वासुकि लसत प्रवीन।
सिव सँग सोहति सर्वदा सिवा कि रायप्रवीन॥

× × × ×

को है दमयंती इन्दुमती, रति राति-दिन,
होहि न छबीली छिन इनको सिंगारिए।
'केशव' लजात जलजात जातवेद योंऽब,
जातरूप बापुरो विरूप-सो निहारिए॥
मदन निरूपम निरुपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनरूपक विचारिए।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप हू को रूप सो लै वारि-वारि डारिए॥

'रसिक प्रिया'

इस ग्रन्थ में रसिकों के लिए ठोस सामग्री है। रसों का विवेचन करते समय केशवदास शृङ्गार रस की ही प्रधानता मानते हैं। अन्य रसों का विवेचन शृङ्गार के वर्णन में डूब-सा गया है। 'रसिक प्रिया' में केशव ने श्रीकृष्ण को एक 'रसिया' के रूप में चित्रित किया है। आचार्य की गंभीरता का परिचय इस ग्रन्थ में नहीं मिलता। फिर भी रामचन्द्रिका की अपेक्षा इसमें माधुर्य और प्रवाह अधिक है। यद्यपि केशव का यह प्रथम ग्रंथ है, तथापि श्रेष्ठ ग्रंथों में इसकी गणना है। 'रसिकप्रिया' से दो-एक उदाहरण नीचे दिए जाते हैं:—

कानन के रँगे रंग, नैनन के डोलौ संग,
नासाअग्र रसना के रस ही समाने हौ।

और कहा कहौं गूढ़ गूढ़ हौ जू जानि जाहु,
'केसौदास' प्रौढ़ रूढ़ नीके करि जाने हौ ॥
तन आन, मन आन, कपट-निधान कान,
सांची कहौ मेरी आन काहे को डराने हौ ।
वे तो हैं बिकाती हाथ मेरे, हौं तुम्हारे हाथ,
तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ ॥

× × × ×

तोरि तनी, टकटोरि कपोलन, जोरि रहे कर हौं न रहौंगी ।
पान खवाइ पिआइ सुधारस, पाइँ गहे तप हौं न गहौंगी ॥
'केसव' चूक सबै बकसी मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी ।
कै मुख चूमन दे फिर मोहिं, कै आपनी धाइसों जाइ कहौंगी ॥

'विज्ञान गीता'

इसमें दार्शनिक विचार रख कर कवि ने अपना ज्ञान और पांडित्य दर्शाया है । आरम्भ के अध्यायों में महा मोह और विवेक का संघर्ष वर्णित है, शेष अध्यायों में ज्ञान की व्याख्या की गई है । श्रीमद्भगवद्गीता के टक्कर का ग्रन्थ निर्माण करने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु दर्शन तो क्या काव्य की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ 'गीता' तक नहीं पहुँच सका । सीधे-सरल योग की व्याख्या करते हुए केशव लिखते हैं—

निसि-बासर बस्तु-बिचारहि कै मुख-सांचु, हिये करुना-धनु है,
अघ-निग्रह, संग्रह-धर्म-कथानि, परिग्रह साधुनि को गनु है ।
कहि 'केसव' भीतर जोग जगै अति बाहिर भोगनि सों तनु है,
मन हाथ सदा जिनके, तिनको बनु ही घरु है, घरु ही बनु है ॥

'विज्ञान गीता' का एक छंद और देखिये—

लोग चले सिगरे अपमारग, पोच भलो-बुरो जानि न जाई,
चंचल हस्तिन को सुखदा अचला बिच दामिनि को दुखदाई ।
हंस, कलानिधि, सूर प्रभा हत, खंड सिखंडनि की अधिकाई,
'केसव' पावसकाल, किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई ॥

केशवदास की कविता

कवि केशव की काव्य-भाषा व्रजभाषा है। बुन्देलखंडी शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है। संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता के कारण भाषा में प्रायः क्लिष्टता आगई है, जो सुनने में कटु-सी प्रतीत होती है। 'राम-चन्द्रिका' की अपेक्षा 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' की भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की मात्रा अधिक है। किन्तु यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि उत्तम भाषा लिखने वालों की दृष्टि से केशव का प्रमुख स्थान है। केशव के काव्य-क्षेत्र में पहुँचते हैं तो ऐसा लगता है मानो उन्होंने काव्योचित कल्पना तथा संयम का सहारा लेना व्यर्थ समझा है। शृङ्गार-रस के माधुर्य ने इनको ऐसा मुग्ध किया है कि अन्य रसों की तो उन्होंने उपेक्षा ही कर डाली है। 'राम-चन्द्रिका' में अनेक ऐसे मार्मिक स्थल हैं जिनका प्रभाव केशव के कवि-हृदय पर अवश्य पड़ना चाहिये था। राम का अयोध्या-त्याग, दशरथ की मृत्यु आदि स्थल कोरे रह गए हैं। केशव की दृष्टि को तो केवल राजसी शृङ्गार, नगर की सजावट, उत्सवों की रमणीयता जैसे स्थलों पर ठहरने का ही अवकाश मिला है। जहाँ केशवदास के काव्य में स्वाभाविकता का थोड़ा-सा भी आभास मिलता है, वहाँ अलंकार-योजना तुरन्त क्षुधार्त सिंहनी की भांति आ खड़ी होती है। वर्णन में सादगी के स्थान पर चमत्कार छा जाता है। अलंकारों का प्रचुर प्रयोग केशव के काव्य-कानन की असहनीय सुगन्ध है। किन्तु फिर भी कवि केशव की कला अलंकारों के बल पर चिरकाल तक सराहनीय रहेगी।

साधारण-से-साधारण कवि भी प्रबन्ध-काव्य की भौंड़ी रचना करते समय प्रकृति-चित्रण के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। किन्तु केशवदासजी को न जाने प्रकृति के मनोहर दृश्यों से क्यों इतनी अरुचि थी। 'राम-चंद्रिका' में अनेक स्थल ऐसे आते हैं, जहाँ पाठक को प्रकृति के अनुपम रंग-विरंगे चित्र मिल सकते हैं, किन्तु बेतवा नदी के तीर निवास करनेवाले कवि ने लहरों का कल-कल नाद तक अपने प्रकृति-वर्णन-विहीन काव्य में नहीं भरा। रस और अलंकार की मोहकता पर केशव ऐसे मुग्ध होगए हैं कि

राज-प्रासाद और राज-सभा की चिकनी-चुपड़ी दीवारों के परे उन्हें कुछ नज़र ही नहीं आया। यदि थोड़ी-बहुत दृष्टि उठी भी है तो सूर्योदय के मनोमोहक दृश्य में 'सोनित कलित कपाल' दृष्टिगत हुआ है।

केशव का आचार्यत्व

केशवदासजी के काव्य पर संस्कृत के ग्रन्थों का बहुत प्रभाव पड़ा है। 'राम-चंद्रिका' में 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक' और कादम्बरी आदि ग्रंथों की अनेक उक्तियों के विकृत अनुवाद मिलते हैं। बहुत से संवाद 'रावण-अंगद-संवाद' में से ज्यों के त्यों अनूदित करके फिट कर दिये हैं। आचार्य दंडी का प्रभाव केशव की 'कविप्रिया' पर और भी अधिक पड़ा है। 'काव्यादर्श' और 'अलंकारशेखर' नामक ग्रन्थों के आधार पर तो 'कविप्रिया' की रचना ही हुई है। इतने पर भी अलंकारों के विवेचन में भारी अस्पष्टता रह गई है। इसी प्रकार 'रसिकप्रिया' में भी रसों का शास्त्रीय विवेचन नहीं हुआ है।

कवि की श्रेष्ठता

'राम-चंद्रिका' के रचयिता के नाते केशव का हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यों तो इनकी काव्य-धारा 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' में और भी अधिक प्रसादगुणयुक्त होती गई है, किन्तु 'चंद्रिका' के संवादों की सजीवता, सुन्दरतम छंदों की परवर्तित शृंखला तथा रस और अलंकारों के पांडित्यपूर्ण प्रयोग ने पुस्तक को विभूषित कर दिया है। कुछ स्थलों में अवश्य कवि की नीरसता का आभास मिलता है, किन्तु जहाँ हृदयग्राही वर्णन मिलते हैं, वहाँ केशव की कला विशेष रूप से प्रशंसनीय है। परशुराम और राम का संवाद, भरत की सेना, लंका-दाह, वर्षा और शरद्-वर्णन पढ़ने योग्य हैं। अंत में सब गुण-दोषों को एक ओर रखकर यही कहना पड़ता है कि केशवदास अपने तीन काव्य ग्रंथों (राम-चन्द्रिका, कविप्रिया और रसिकप्रिया) की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों में अत्यंत प्रशंसनीय और श्रेष्ठ स्थान पाने के अधिकारी हैं और वे आचार्य पदवी के सर्वथा योग्य कहे जा सकते हैं।

———०———

त्रिपाठी बन्धु—

ये चार भाई थे। चिंतामणि त्रिपाठी, भूषण त्रिपाठी, मतिराम त्रिपाठी और नीलकण्ठ त्रिपाठी (उपनाम जटाशङ्कर)। पिता का नाम था रत्नाकर त्रिपाठी। इनके चारों पुत्रों में हिन्दी-साहित्य के प्रति अगाध रुचि थी। चारों कवि थे, किन्तु इस क्षेत्र में जटाशंकर की ख्याति अधिक सुनने में नहीं आती। विद्वानों में एक विवाद चला आता है कि ये चारों परस्पर भाई थे अथवा नहीं? किन्तु चारों का जो सम्बन्ध आरम्भ से चला आता है, उसके विरुद्ध इतिहास में अभी तक कोई उल्लेख या प्रमाण नहीं मिलता, अतएव इन्हें परस्पर भाई मानना ही ठीक है। त्रिपाठी बन्धु तिकवाँपुर (कानपुर) के निवासी और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

१—चिंतामणि त्रिपाठी

बड़े काव्य-प्रेमी थे, और राज-दरबारों में इनका सम्मान था। भोंसला मकरंदशाह के दरबार में आश्रय पाकर इन्होंने 'छन्द विचार' नामक पिंगल के विशाल ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त 'काव्य-विवेक', 'कविकुल कल्प-तरु', 'काव्य-प्रकाश' तथा 'रामायण' भी इनकी रचनाएँ हैं। त्रिपाठीजी सरस, सानुप्रास और परिमार्जित व्रजभाषा में कविता करते थे। काव्य के प्रत्येक अंग पर ग्रन्थ रचना करने के कारण इनको आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। चिन्तमणिजी की कविता का एक उदाहरण देखिए—

सरद ते जलकी ज्यों दिन ते कमल की ज्यों,
　　धन ते ज्यों थल की निपट सरसाई है।
धन ते सावन की ज्यों ओप ते रतन की ज्यों,
　　गुन ते सुजन की ज्यों परम सहाई है॥
चिंतामनि कहै आछे अच्छरनि छंद की ज्यों,
　　निसागम चन्द की ज्यों दृग सुखदाई है।
नग ते ज्यों कंचन बसंत ते ज्यों बन की,
　　यों जोवन ते तन की निकाई अधिकाई॥

चिन्तामणि का जन्मकाल संवत् १६६६ के आसपास माना जाता है और कविता-काल संवत् १७०० के लगभग।

२—मतिराम त्रिपाठी

राजा-महाराजाओं के दरबारों में इनकी भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। संवत् १६७४ के लगभग इनका जन्म-काल माना जाता है। रीति-ग्रन्थकार कवियों में मतिरामजी का प्रमुख स्थान है। चार रीति-ग्रंथों की रचना करके ये साहित्य-संसार में अमर हो गए। इनके ग्रंथों के नाम हैं, 'ललित-ललाम', 'रसराज', 'छन्दसार' और 'साहित्यसार'। बूँदी महाराज के आश्रय में 'ललित ललाम' नामक अलंकार-ग्रंथ रचा गया। 'रसराज' और 'ललित ललाम' इनके सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'लक्षण-शृङ्गार' और 'मतिराम सतसई' नामक दो ग्रन्थ और भी त्रिपाठीजी ने रचे थे। इनकी सतसई कई अंश में प्रशंसनीय है। कवि चिन्तामणि की भाषा से इनकी भाषा साम्य रखती है। राजाश्रय के अन्तर्गत ऐश्वर्य-प्राप्ति में भी इनका श्रेष्ठ स्थान है।

मतिराम की रचनाओं की सबसे अधिक विशेषता यह है कि वे सरल और सादी शब्दावलि में ऐसा रस भरते हैं कि सहृदय पाठक मुग्ध हो जाता है। इनका सुन्दर शब्द चयन और अकृत्रिम भाव, कविता में एक अद्भुत ओज एवम् चमत्कार पैदा कर देता है। रस और अलंकार की शिक्षा देती हुई, स्वच्छ और स्वाभाविक भाषा बहुत कम काव्य-ग्रंथों में मिलती है। वास्तव में उनकी सूझ सीधी और स्पष्ट है। वे प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। उनके काव्य में उनकी सच्ची मौलिकता थी। व्रजभाषा का माधुर्य ज्यों का त्यों स्थायी रखने का श्रेय मतिराम जैसे यशस्वी कवियों को ही है। मतिरामजी के कवित्त, सवैये, दोहे आदि अपनी सम्मिलित ध्वनि और मधुर आलाप के साथ काव्य-जगत् में एक अद्भुत आनन्द की वर्षा करते हैं। मतिराम की काव्य-रचना के कुछ उदाहरण देखिए—

सदा प्रफुल्लित फलित जहँ द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कल धुनि सुनत रहत स्रवन अनुराग॥

कमल कुमुद कुवलयन के परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहाँ बापी कूप तड़ाग॥
सुक चकोर चातक चुहिल कोक मत्त कलहंस।
जहँ तरुवर सरवरन के लसत ललित अवतंस॥

× × × ×

क्यों इन आँखिन सों निहसंक ह्वै मोहन को तन पानिप पीजै?
नेकु निहारे कलंक लगै यहि गांव बसे कहु कैसे कै जीजै?
होत रहै मन यों मतिराम, कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा-रस पीजै॥

× × × ×

केलिकै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
'प्यास लगी, कोउ पानी दै जाइयो', भीतर बैठिकै बात सुनाई॥
जेठी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरे मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्ही, सुगेह की देहरिपै धरि आई॥

महाकवि भूषण त्रिपाठी

जीवन परिचयः—त्रिपाठी बन्धुओं में कविवर चिन्तामणि से छोटे भूषण ही थे। इनका जन्मकाल संवत् १६६२ के लगभग माना गया है। बाल्यावस्था से युवावस्था तक भूषणजी ने किसी प्रकार का अध्ययन नहीं किया। अपने भाई चिन्तामणि की देख-रेख में, जीवन व्यतीत करने में ही इन्हें आनन्द आता था। एक वार नमक माँगने पर उन्होंने अपनी भाभी से झगड़ा करके घर छोड़ दिया, और एक दीर्घकाल तक बाहर रहकर उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसी बीच में कविता की ओर भी इनकी रुचि होने लगी। अपनी एक सुन्दर रचना चित्रकूट-नरेश रुद्रराम सोलंकी को सुनाकर भूषणजी ने 'कवि भूषण' उपाधि प्राप्त की।

लगभग ३२ वर्ष की अवस्था में कवि भूषण महाराज शिवाजी की राज-सभा में उपस्थित हुए। कहते हैं, शिवाजी को भूषण ने पहचाना नहीं, और उनकी आज्ञानुसार वे १८ वार अपनी एक रचना सुनाते रहे।

महाराज शिवाजी इनकी कविता सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। फलस्वरूप १८ लाख मुद्रा, १८ ग्राम और अनेक पुरस्कार महाराज की ओर से उनको प्रदान किए गए। इतना ही नहीं, इस सम्बन्ध में शिवाजी की राजसभा में कवि भूषण के राजकवि नियुक्त होने की भी पुष्टि की जाती है। वहीं पर उन्होंने अपने सुविख्यात ग्रंथ 'शिवराज भूषण' की रचना की। अपनी काव्य-रचना के उपलक्ष्य में प्रचुर प्रशंसा पाने के अतिरिक्त कवि भूषण ने अतुल धन-राशि भी सम्मानपूर्वक प्राप्त की।

एक बार अपने निवासस्थान तिकवांपुर लौटते समय मार्ग में महाराज छत्रसाल बुँदेला के दरबार में भी भूषणजी कुछ दिनों ठहरे। छत्रसाल ने कविवर भूषण के प्रति हार्दिक श्रद्धा प्रकट की। यहाँ तक कि वे उनकी पालकी का एक डंडा अपने कन्धे पर साध कर चले। भूषण इस स्नेहमय आदर-प्रदर्शन से चकित रह गए और तुरन्त उतरकर महाराज के यशोगान में प्रशंसापरक कुछ छंद कह सुनाए।

'चिटणीस बखर' के लेखानुसार भूषण दो वार शिवाजी के दरबार में पहुँचे और दोनों ही वार कुछ काल ठहरकर काव्य-रचना करते रहे। दूसरी वार की यात्रा में भूषण ने 'शिवाबावनी' नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें शिवाजी के पौरुष-पराक्रम और देश-प्रेम सम्बन्धी अनेक प्रशंसात्मक छंद हैं। भूषण के छन्दों से उनके चित्रकूट, बूँदी आदि अनेक राजसभाओं में जाने का पता लगता है। इस विषय में ऐतिहासिक उल्लेख कहीं नहीं मिलता, किन्तु भूषण के काव्य से तत्कालीन इतिहास की मुख्य-मुख्य घटनाओं का भले प्रकार पता चल जाता है।

भूषण के वास्तविक नाम का पता नहीं चल पाया। रुद्रराम सोलंकी ने उन्हें 'कवि भूषण' उपाधि देकर यही नाम प्रचलित कर दिया। कवि-भूषण वीर-काव्य के अनन्य भक्त थे, और उसके अनुरूप ही वीर हृदयधारी आश्रयदाता भी उन्हें शिवाजी के रूप में प्राप्त हुआ। शिवाजी तथा छत्रसाल दोनों ही भूषण के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। दोनों का स्नेह पाकर भूषण कहा करते थे—"सिवा को सराहूँ कै सराहूँ छत्रसाल को"।

भूषण ने सारे देश का भ्रमण करके अपने काव्य में तत्कालीन विख्यात व्यक्तियों तथा सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों का खूब वर्णन किया है। अपनी प्रतिभा सम्पन्नता के कारण वे समस्त देश में सम्मानित होते थे। भूषणजी का रहन-सहन राजा-महाराजाओं का-सा था। कवि केशवदास की तरह भूषण को भी प्रचुर धन और ऐश्वर्य प्राप्त होता रहा। आधुनिक युग के महाकवियों की भाँति अन्न-वस्त्र का भी कष्ट पाने वाले कवि भूषण नहीं थे। संवत् १७६७ के लगभग कवि भूषण के देहावसान होने का अनुमान किया जाता है। इनकी पीढ़ी अभी तक वर्तमान है।

कवि भूषण की कविता :—

कवि भूषण की काव्य-धारा जिस काल में प्रवाहित हुई, उस समय सम्पूर्ण वातावरण श्रृङ्गार रस की रसीली वर्षा से तरल था। चारों ओर श्रृङ्गारी कवियों की सुकोमल वाणी जन-साधारण को आनन्द-विभोर कर रही थी। मुसलमान शासकों के आक्रमणों से सजग करने के लिए, सुख की नशीली नींद सोते हुए हिन्दू नरेशों का कोई सहायक नहीं था। श्रृङ्गार रस की ललित लोरियाँ उनकी खुलती हुई आँखों को और भी अधिक देर के लिए बन्द कर देती थीं। इसी समय वीर-रस-काव्य की विलक्षण तथा प्रतिभाशालिनी, महाकवि भूषण की वीरवाणी, रीतिकाल के सुप्त वातावरण में रण-दुन्दुभि की भाँति गूँज उठी। छत्रपति महाराज शिवाजी के आश्रय में, इस कवि ने अपनी गरजती हुई गरवीली वाणी को देशप्रेम के अनुपम रँग में रँगकर, आक्रमणकारियों के विरुद्ध जो कुछ कहा उससे शत्रुओं के दिल दहल गए। वीर-रस की कविता से परिपूर्ण कविभूषण के तीन ग्रंथ ही अभी तक प्राप्य हैं। १—'शिवराज भूषण', २—'शिवाबावनी', ३—'छत्रसाल दशक।' इन तीन ग्रंथों के अतिरिक्त १—'भूषण-उल्लास', २—'दूषण-उल्लास' और ३—'भूषण-हजारा' इन तीन और भी ग्रंथों का उल्लेख है, किन्तु वे अप्राप्य हैं।

कवि भूषण की सम्पूर्ण रचनाएँ वीर-रस की हुंकार से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने व्रजभाषा का ही विशेष रूप से प्रयोग किया है। किन्तु यत्र-तत्र खड़ी बोली, प्राकृत, पंजाबी, बुन्देलखंडी तथा फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग

मिलता है। संभवतः भाषा को वीरोल्लासिनी तथा ओजपूर्ण बनाने के लिए ही उन्हें ऐसा करना पड़ा होगा। वीर-रस की अकड़ भरी भाषा लिखने के कारण भूषण अपनी कविता में मतिराम का-सा लालित्य एवं माधुर्य नहीं ला पाए।

रीतिकाल के कवि होने के कारण कवि भूषण ने 'शिवराज-भूषण' को रीतिग्रन्थ की परम्परा के अनुसार रचने का प्रयत्न किया। उनकी कविता में सुन्दर शब्द-योजना के साथ-साथ, वीर-भावों की अभिव्यक्ति में देशाभिमान, हिन्दुत्व तथा सत्यप्रियता की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। हिन्दी-साहित्य में वीर-रस के अत्यावश्यक अंग की पूर्ति करने वालों में कविवर भूषण का नाम चिरकाल तक स्मरण किया जायगा। भूषण के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखने वाली एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने आश्रय-दाताओं के प्रति चाटुकारिता कभी प्रदर्शित नहीं की। शिवाजी तथा छत्रसाल की प्रशंसा उन्होंने की अवश्य, किन्तु उसमें सचाई और वीरपूजा की भावना है, चापलूसी नहीं। भूषण की भाषा में ओज और उद्दण्डता का होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वह किसी भी नरेश के सम्मुख झुकने वाले नहीं थे। एक प्रकार से यों भी कहा जा सकता है कि उनकी कविता ने हिन्दुओं को हिन्दुत्व का ज्ञान कराने के लिये चाबुक का काम दिया, जिसकी मार से असंख्य सैनिक-समुदाय ने वीर शिवाजी तथा छत्रसाल जैसे शौर्यवान् महीपों की सेनाओं को सौगुना कर दिया। भूषण ने वीरकाल की जो-जो अनुपम देन मातृभाषा हिंदी के चरणों में अर्पित की है उसकी अमूल्यता के कारण अवश्य ही उन्हें महाकवि कहना पड़ेगा। महाकवि भूषण की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

वेद राखे विदित पुरान राखे सारजुत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।

हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।

मींड़ि राखे मुगल मरोरि राखे पादशाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

× × × ×

गढ़नेर, गढ़, चाँदा, भागनेर, बीजापुर,
नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं।
करनाट, हबस, फिरंग हू, बिलायत,
बलख, रूम, अरि-तिय छतियाँ दलति हैं।
'भूषन' भनत साहि-तनै सिवराज, एते,
मान तुवं धाक आगे दिसा उबलति हैं।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चलेते,
चक्रवर्तिन की चतुरंग-चमू बिचलति हैं॥

× × × ×

सूबन सांजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी।
औरँग आपनि दुग्ग-जमाति बिलोकति तेरियै फौज दरेरी।
साहि-तनै सिव साहि भई, भनि 'भूषन' यों तुव धाक घनेरी।
रातिहु-दौस दिलीस तकै तुव सेन की सूरति सूरत घेरी॥

× × ×

भुज-भुजगेश की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि-खेदि खातीं दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरनि बीच धसि जाती मीन-
पैरि पार जात परबाह ज्यों जलन के।
रैया-राय चंपति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखानि यौं बलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

× × × ×

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि-
सुनि असुरन के सु-सीने धरकत हैं।
देवलोक नागलोक नरलोक गावें जस,
अजहूं लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं।
कटक कटक काटि कीट से उड़ाय केते,
'भूषन' भनत मुख मोरे सरकत हैं।
रनभूमि लेटे अधकटे कर लेटे परे,
रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं॥

× × × ×

केतिक देस दल्यौ दल के बल, दच्छिन चंगुल-चापि के चाख्यो।
रूप-गुमान हरयो गुजरात को, सूरति को रस चूसि कै नाख्यो।
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सौरँग है सिवराज बली, जेहि नौरँग में रँग एक न राख्यो॥

महाराज जसवन्तसिंह

ये जोधपुर राज्य के स्वामी थे। इन्हें कविता के प्रति बड़ी रुचि थी। साथ ही ये इतने निर्भीक तथा प्रतापी थे कि सम्राट् औरंगज़ेब को सदा इनसे भय रहता था। औरंगजेब की आज्ञा से कुछ समय के लिये इन्हें गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया, किन्तु शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करते समय अपने सहयोगी शाइस्ताखां के दाँत इन्होंने बड़ी कुशलता से खट्टे किये थे। इसीलिये काबुल भेजकर औरंगजेब ने जसवंतसिंह की हत्या करा दी। शाहजहाँ के समय में भी महाराज ने कई युद्ध किए थे, अतः जीवन संघर्ष के साधारण तथा असाधारण सभी अनुभवों से ये परिचित थे। श्रेष्ठतम ग्रंथों का अध्ययन करने में इन्हें विशेष आनन्द आता था।

जिस समय हिन्दी-साहित्य की प्रगति में शृङ्गार-रस का युग चल रहा था, महाराज जसवंतसिंह ने वेदान्त-सम्बन्धी ग्रन्थ-रचना कर हिंदी को

अमूल्य भेंट दी। जसवंतसिंह ने अलंकार के विद्यार्थियों के लिये भाषा-भूषण नामक एक अपूर्व ग्रंथ लिखा। इनके सब ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

१–'भाषा-भूषण,' २–'अपरोक्ष-सिद्धान्त', ३–'अनुभवप्रकाश', ४–'आनन्द-विलास', ५–'सिद्धान्त-बोध', ६–'सिद्धान्त-सार' ७–'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक'।

महाराज जसवंतसिंह के सब ग्रन्थ पद्य में हैं। वे व्रजभाषा में लिखे गए हैं। ग्रंथों की रचना इन्होंने आचार्य के नाते की है, कवि के नाते नहीं। वेदान्त सम्बन्धी ग्रंथों की रचना करके तो इन्होंने अपने बृहद् ज्ञान-भांडार का प्रदर्शन किया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में महाराज जसवन्तसिंह प्रथम साहित्यिक हैं जिन्होंने राज्य-कार्य में व्यस्त रहते हुए भी, इतने अमूल्य ग्रन्थ प्रदान किए।

जसवंतसिंह का जन्म संवत् १६८३ में हुआ माना जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ 'चन्द्रालोक' के आधार पर रचे हुए एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण से युक्त 'भाषा-भूषण' की रचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण हुई है। उदाहरण स्वरूप कुछ दोहे नीचे देखिये—

मुख ससि वा ससि सों अधिक उदित जोति दिन राति।
सागर तें उपजी न यह कमला अपर सोहाति॥
नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम।
गमन करत नीकी लगै कनकलता यह बाम॥
अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसै रूप।
जाचक तेरे दान ते भये कलपतरु भूप॥
पर्यस्त जु गुन और को और विषै आरोप।
होय सुधाधर नाहिं यह बदन सुधाधर ओप॥

—o—

बेनी कवि

इनका जन्म-काल संवत् १७०० के लगभग माना जाता है। ये असनी के बंदी जन थे। इनकी कुछ स्फुट रचनाओं का ही पता चलता है। साधारण कोटि के कवियों में इनका स्थान अच्छा है। व्रजभाषा में अनुप्रास-युक्त कविताएँ लिखकर अपनी शृङ्गार-रस प्रियता का परिचय इन्होंने दिया है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

छहरै सिर पै छवि मोरपखा उनकी नथ के मुकुता थहरैं।
फहरै पियरे पट बेनी इतै, उनकी चुनरी के झबा झहरैं।
रस रंग भिरे अभिरे हैं तमाल दोऊ रसख्याल चहैं लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिका स्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं॥

मंडन कवि

संवत् १७१६ में महाराज मंगदसिंह की राजसभा में इनका विद्यमान होना माना जाता है। ये बुन्देलखंड निवासी थे। इनकी पाँच पुस्तकों की खोज हो चुकी है। १—रस-रत्नावली, २—रसविलास, ३—जनक पचीसी, ४—जानकी जू को ब्याह, ५—नैन पचासा। ये सब ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। स्फुट रचनाओं में कवित्त, सवैया और पद भी इनके मिलते हैं। 'रस-रत्नावली' और 'रस-विलास' इनके रस सम्बन्धी ग्रंथ हैं। कवि मंडन ने सरस एवं स्वाभाविक भाषा में बड़ी भावपूर्ण कविताएँ की हैं। इनकी कविता का एक नमूना दिया जाता है :—

अलि हौं तौ गई जमुना जल को सो कहा कहौं बीर! बिपत्ति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई, इतनेई में गागरि सीस धरी।
रपट्यौ पग, घाट चढ्यौ न गयौ, कवि मंडन ह्वै कै बिहाल गिरी।
चिरजीवहु नंद को बारो, अरी, गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी॥

महाकवि बिहारी

जीवन-परिचयः—संवत् १६६० के लगभग महाकवि बिहारी का ग्वालियर में जन्म हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था और धौम्य गोत्री सोती घरवारी माथुर चौबे कहलाते थे। बाल्यावस्था में बिहारी अपने पिता के साथ ओरछा राज्य में रहने लगे। वहाँ कवि केशवदासजी के सम्पर्क से इन्होंने संस्कृत तथा काव्य-ग्रंथों का अध्ययन किया। कुछ काल पश्चात् ओरछा-नरेश का आमोद-प्रमोद छिन्न-भिन्न हो गया और केशवदासजी अपना आश्रम गंगा-तट पर ले गए। उधर बिहारी के पिता अपना निवास-स्थान व्रजभूमि में खोजते हुए वृन्दावन धाम जा बसे। बिहारी ने यहाँ भी अध्ययन किया और संगीत का भी अच्छा अभ्यास कर लिया। मथुरा में इनका विवाह हुआ और अपनी तरुणाई के दिन ये ससुराल में ही व्यतीत करने लगे। कहा जाता है, एक वार अपनी वृन्दावन-यात्रा में शाहजहाँ ने बिहारी की प्रतिभा की प्रशंसा सुनी और वे उन्हें आगरा ले आए। अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना के सम्पर्क से बिहारी ने उर्दू और फ़ारसी का भी अध्ययन किया और राजदरबार में प्रचुर प्रशंसा प्राप्त की। किन्तु कुछ काल पश्चात् बिहारी को आगरा छोड़ देना पड़ा और इधर-उधर के राजा-महाराजाओं से इनको वार्षिक वृत्ति मिलने लगी। एक वार अपनी वृत्ति प्राप्त करने के लिए जब बिहारीजी आमेर की राज-सभा में उपस्थित हुए तब, तत्कालीन आमेर-नरेश महाराजा जयसिंह एक नई-नवेली पत्नी की प्रेम-पंखुड़ियों में बँधे हुए थे। संसार के सब कर्त्तव्य भूलकर, उन्होंने अपने भोग-विलास में विघ्न-बाधा उत्पन्न करने वाले व्यक्ति के लिए कठोर दण्ड नियत कर रक्खा था। किसी प्रकार कविवर बिहारी ने पूर्ण उद्योगपूर्वक अपना एक दोहा महाराज के गृह तक पहुँचाया। वह दोहा इस प्रकार है—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली! कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

इस दोहे का चमत्कारी प्रभाव पड़ा। आमेर-नरेश के काम-क्रीड़ान्ध नेत्र खुल गए और रानी तथा राजा दोनों कवि की सूझ पर मुग्ध हो गए।

फिर तो ऐसे प्रत्येक दोहे पर एक अशरफ़ी दी जाने लगी। इस प्रकार बिहारी ने सात सौ दोहों को संगृहीत करके 'बिहारी-सतसई' नामक एक अद्वितीय काव्य-ग्रंथ की रचना की। कहा जाता है कि रानी ने अपनी प्रसन्नता यहाँ तक व्यक्त की कि बिहारीजी को 'काली पहाड़ी' नामका एक ग्राम भी भेंट किया। फिर आमेर की राजसभा में बिहारीजी राज-कवि का पद पाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे। यों तो कवि बिहारी प्रारम्भ से ही रसिक थे, किन्तु राज-दरबार के वैभव प्राप्त कर उनकी मृदुल वाणी और सरस भाषा में और भी अधिक रसिकता समा गई। शृङ्गार रस के काव्य-ग्रंथों में बिहारी का 'बिहारी सतसई' नामक ग्रन्थ अपने भाव-सौन्दर्य तथा काव्य-कौशलके कारण सर्वोत्तम माना जाता है। इस ग्रंथ का प्रत्येक दोहा मानो मानव-जीवन के विस्तृत अध्ययन का सारयुक्त सुन्दर निचोड़ है। प्रत्येक दोहा अपनी सजीव आत्मा के द्वारा पाठक के मन में मादकता-सी उड़ेल देता है।

बिहारी की कविता—

महाकवि बिहारीलाल सिद्धहस्त प्रतिभाशाली कवि थे। जहाँ तक उनके काव्य की भाषा का सम्बन्ध है, रीति-काल के कुछ कवियों को छोड़कर, बिहारी के समान भाषा का पण्डित किसी को नहीं कहा जा सकता। व्रजभाषा के माधुर्य से परिचित व्यक्ति भले प्रकार समझ सकता है कि बिहारी ने बहुत से शब्दों को अपनी इच्छानुसार क्यों तोड़ा-मरोड़ा। व्रजभाषा के साथ खड़ी बोली, अवधी और बुन्देलखंडी के शब्दों का सुन्दर प्रयोग भी बिहारी की काव्य-भाषा में स्वाभाविक रूप से मिलता है। किन्तु कहीं-कहीं पर केवल दोहों को अलंकृत करने के लिए भी इन्हें ये शब्द प्रयुक्त करने पड़े हैं। यथा—

गड़े बड़े छवि-छाक छकि, छिगुनी-छोर छुटैन।
रहे सुरँग रँग रँगि उहीं नह-दी महदी नैन॥

बिहारी की कविता में भावोदय आदि के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। भाव-संधि और भाव-शबलता के उदाहरणों में रस रूप ही मानना

चाहिए। बिहारी की कविता में भाव-व्यंजना के अतिरिक्त अलंकार-व्यंजना तथा वस्तु-व्यंजना का सुन्दर दिग्दर्शन है। भावशबलता का यह कैसा अनुपम उदाहरण है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात॥

बिहारी की कविता में सबसे सराहनीय वस्तु हैं उनकी उक्तियाँ। इन उक्तियों की विदग्धता पाठक के हृदय को आकृष्ट किये विना नहीं रहती। इनका चमत्कार ही बिहारी का बिहारीत्व है, जो काव्य-प्रेमी को रस-विभोर करके ही छोड़ता है। बिहारी की कविता अपनी उक्ति-सम्पन्नता के कारण 'बिहारी ब्रांड' सी बन गई है, जिसको सुनते ही तत्काल कहा जा सकता है कि अमुक दोहे की रचना बिहारी ने की है। बिहारी का वाग्वैदग्ध्य कितना सजीव है इसका उदाहरण देखिए—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्याम हरित-द्युति होइ॥

मनमोहन के सौन्दर्य में मन कैसा तल्लीन हो गया है इसका एक उक्ति-पूर्ण उदाहरण अवलोकन कीजिए—

कीनैं हूं कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
मो मन मोहन-रूपु मिलि पानी मैं कौ लौनु॥

केवल भाव-चित्रण-कुशलता के कारण बिहारी की ख्याति है, भक्ति सम्बन्धिनी शुष्क उक्तियाँ उनके काव्य में नहीं मिलतीं। बल्कि भक्ति के उन दोहों में भी रस का मिठास ओत-प्रोत है। मतों के पचड़े से खिन्न होते हुए बिहारी कहते हैं—

अपनैं अपनैं मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं ज्यौं सबकौं सेइबौ एकै नन्दकिसोरु॥

वाग्वैदग्ध्यपूर्ण भक्ति की एक और उक्ति का नमूना देखिए।

करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल॥

'विरह-वर्णन' में बिहारीजी ने विरह-ताप से आई हुई क्षीणता का वर्णन भी किया है, किन्तु इस क्षीणता को व्यक्त करने में कवि बिहारी ने अपनी अनूठी सूझ का अद्भुत चमत्कार दिखा दिया है। एक-दो उदाहरण देखिए—

इत आवति, चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ॥
सीरे जतननि सिसिर ऋतु सहि बिरहिनि तन ताप।
बसिबे कौं ग्रीषम दिनन परयौ परोसिन पाप॥

'बिहारी सतसई' के विद्वान् आलोचक स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने ग्रंथ में स्पष्ट किया है कि 'आर्य्यासप्तशती' और 'गाथासप्तशती' से प्रभावित होते हुए भी बिहारी ने उक्त ग्रन्थों से लिए हुए भावों पर अपनी काव्य-प्रतिभा और उक्ति-कुशलता का रोगन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि थोड़ी-सी काव्य-रचना से ही बिहारी का नाम अमर हो गया। शृङ्गार के क्षेत्र में मुक्तक रचनाकार की दृष्टि से बिहारी का अद्वितीय स्थान है। इस महान् कवि की अलंकार-योजना किस निष्ठुर, नीरस हृदय को मुग्ध नहीं कर सकती। अलंकार-सम्बन्धी एक उदाहरण देखिए—

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर बसी, है उरबसी समान॥

बिहारी ने अपने अनेक दोहों में रस-व्यंजना की अगाध निपुणता दिखाई है। अनुभावों और भावों का कैसा सुन्दर और सजीव तारतम्य इनके निम्नलिखित दोहों में झलकता है—

ललन-चलन सुनि पलन में अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन्ह हू झूठै ही जमुहाइ॥
बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै नटि जाइ॥

'बिहारी-सतसई' का अध्ययन करते समय यदि स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा की 'सतसई' सम्बन्धी आलोचना का भी अध्ययन किया जाय तो 'बिहारी सतसई' का अध्ययन विशेष रूप से आनन्ददायक बन जाता है। इसका कारण केवल यही है कि काव्य-मर्मज्ञ शर्माजी ने बड़ी सजीव और फड़कती हुई भाषा में तुलनात्मक आलोचना की है। साथ ही उनकी प्रशंसा में मानो वे डूब-से गए हैं। 'वाह ! क्या खूब ! गजब की सूझ है !' आदि शब्दों से पण्डितजी की ध्वनि साहित्य-मन्दिर में गूंज उठती है। इस प्रकार आधुनिक युग में बिहारी के टीकाकारों में तीन विद्वानों का नाम बड़े महत्त्व के साथ उल्लेखनीय है। प्रथम स्व० पण्डित पद्मसिंह शर्मा; द्वितीय, स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी और तृतीय, स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ-दास-रत्नाकर। इसके अतिरिक्त अन्य भषाओं में भी 'सतसई' की टीकाएँ उपलब्ध हैं।

महाकवि बिहारी के दोहों के सम्बन्ध में किसी की बड़ी सुन्दर उक्ति है। सचमुच उनकी प्रशंसा में यही कहना पड़ता है—

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर॥

कुलपति मिश्र

रीति-काल के संस्कृत-ज्ञाताओं में इनका बड़ा सम्मान था, क्योंकि ये स्वयं संस्कृत-साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। इनको महाकवि बिहारी के वंश से सम्बन्धित माना जाता है, अतः ये माथुर चौबे कहे जाते हैं। आगरा में इनका निवास-स्थान था। जयपुर के तत्कालीन नरेश महाराज रामसिंह की राज-सभा में ये 'राजकवि' के पद पर प्रतिष्ठित थे।

संवत् १७२४ और १७४३ के मध्य इनकी काव्य-प्रतिभा विकसित होती रही। कविवर कुलपति मिश्र का केवल एक ही ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। अन्य ग्रन्थों में 'द्रोणपर्व,' 'युक्ति तरंगिणी,' 'नखशिख,' और

'संग्राम सागर' की खोज मात्र हुई है। इनका प्रकाशित ग्रन्थ 'रस-रहस्य' रस के शास्त्रीय निरूपण के कारण प्रसिद्ध है। इसकी रचना 'मम्मट' के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर की गई है। मिश्रजी ने गद्य और पद्य दोनों में व्रजभाषा का प्रयोग किया है। 'रस-रहस्य' में शास्त्रीय निरूपण करते हुए कहीं-कहीं अस्पष्टता दिखाई देती है। अपरिमार्जित गद्य के प्रयोग से काव्य में स्वाभाविक गति तथा सरलता नहीं आ पाई। अतः प्रचार की दृष्टि से रस के विद्यार्थियों के लिए 'रस-रहस्य' अधिक महत्त्व का ग्रन्थ नहीं है। अलंकार-निरूपण में महाराज रामसिंह की प्रशंसा में उदाहरण-स्वरूप लिखे गए कुछ छन्द सरल और भावपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए एक छन्द नीचे दिया जाता है—

ऐसिय कुंज बनी छबि पुंज रहै अलि गुंजत यों सुख लीजै।
नैन बिसाल हिये बनमाल बिलोकत रूप-सुधा भरि पीजै।
जामिनि-जाम की कौन कहै जुग जात न जानिए ज्यों छिन छीजै।
आनँद यों उमग्योई रहै, पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै॥

सुखदेव मिश्र

इनका जन्म 'कंपिला' में हुआ। इनके कुटुम्बी अभी तक दौलतपुर (जिला राय बरेली) में विद्यमान हैं। सुखदेवजी का कविता-काल संदिग्ध है। किन्तु अनुमानतः संवत् १७२० से १७६० के मध्य इनकी रचनाएँ हुईं। अभी तक इनके सात ग्रन्थ ज्ञात हुए हैं।—१ वृत्ति-विचार, २—छन्द-विचार, ३—फ़ाज़िलअली-प्रकाश, ४—रसार्णव, ५—शृङ्गार-लता, ६—अध्यात्म-प्रकाश, और ७—दशरथ राय।

सुखदेव मिश्र अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर अनेक राज-सभाओं में रहे। राजा भगवंतराय खीची, राव मर्दनसिंह तथा औरंगजेब के मंत्री फ़ाज़िलअलीशाह आदि इनके अनेक आश्रयदाता थे। अन्ततः सबसे मुक्ति पाकर ये राजा देवीसिंह के विशेष आग्रह पर दौलतपुर में स्थायी रूप से रहने लगे।

सुखदेव मिश्र की गणना हिन्दी-भाषा के प्रमुख आचार्यों में की जाती है। संस्कृत के ग्रन्थों का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था, अतः उस काल की विद्वन्मण्डली इनका खूब आदर करती थी। किसी नरेश ने 'कवि-राज' की उपाधि भी इन्हें सम्मान के साथ प्रदान की थी। इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से की है। इनके काव्य में व्रजभाषा का बहुत ही निखरा हुआ स्वरूप दृष्टिगत होता है। वेदान्त के गम्भीर ज्ञान के कारण इनकी दूर-दूर तक प्रशंसा थी। 'अध्यात्म-प्रकाश' में वेदान्त सम्बन्धी अनेक गूढ़ विषयों का विवेचन है। कहते हैं, इनका जीवन भी तपस्वी साधु का-सा हो गया था।

'रसार्णव' इनका रस-सम्बन्धी ग्रन्थ है। 'फ़ाज़िलअली-प्रकाश' तथा 'रसार्णव' में शृङ्गार रस के बड़े सरस छन्द मिलते हैं। इनकी रचनाओं में आचार्यत्व तथा कवित्व दोनों की स्पष्ट छाप है। छन्दःशास्त्रकारों में कविराज सुखदेव मिश्र का अत्युत्तम स्थान है। स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पत्रिका में मिश्रजी का सुन्दर जीवन-परिचय लिखा था। सुखदेवजी के काव्य के दो उदाहरण नीचे देखिए—

ननद निनारी, सासु मायके सिधारी,
अहै रैनि अँधियारी भरी, सूझत न करु है।
पीतम को गौन कविराज न सोहात भौन,
दारुन बहत पौन, लाग्यो मेघ झरु है।
संग ना सहेली, बैस नवल अकेली,
तन परी तलबेली–महा, लाग्यो मैन-सरु है।
भई अधरात, मेरो जियरा डरात,
जागु जागु रे बटोही! यहाँ चोरन को डरु है॥

× × ×

मंदर महिंद गंधमादन हिमालय में,
जिन्हें चल जानिये अचल अनुमानि ते।

भारे कजरारे तैसे दीरघ दतारे मेघ,
मंडल बिहंडैं जे वै सुंडादंड ताने ते।
कीरति बिसाल छितिपाल श्री अनूप तेरे,
दान जो अमान कापै बनत बखाने ते।
इतै कवि-मुख जस-आखर खुलत उतै—
पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते॥

कालिदास त्रिवेदी

ये भी बड़े अच्छे कवि थे। इनको अन्तर्वेद निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा जाता है। जम्बू-नरेश की राजसभा में भी ये रहे थे। इनका नायिकाभेद और नखशिख सम्बन्धी, 'वर-वधू विनोद' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। द्वितीय ग्रन्थ 'जंजीराबंद' भी इनका रचा हुआ है। इस पुस्तक में ३२ अद्भुत और मनोहर कवित्त हैं। 'राधा-माधव-बुध-मिलन-विनोद' नामक इनके एक तृतीय ग्रन्थ की और खोज हो चुकी है। कालिदासजी की सबसे उपयोगी कृति 'कालिदास हज़ारा' नामक है। यह पुस्तक लगभग एक सहस्र पद्यों का विशाल संग्रह है, जिसमें संवत् १४८१ से संवत् १७७६ तक के लगभग २०० प्रमुख कवियों की रचनाएँ संगृहीत हैं। कवियों का ठीक-ठीक वृत्तान्त देने में यह पुस्तक बड़ी उपयोगी प्रमाणित हुई है।

कवि कालिदास की काव्य-धारा उनकी तीसरी पीढ़ी तक पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपनाई गई है। इनकी काव्य-रचना रसीली भाषा में हुई है। सरलता तथा हृदयग्राहिता के लिए तो कवि त्रिवेदी की मधु-युक्त रचनाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रमुख स्थान है। उदाहरण के लिए दो कवित्त देखिए—

चूमौं करकंज मंजु अमल अनूप तेरो,
रूप के निधान, कान्ह ! मो तन निहारि दै।
कालिदास कहै मेरे पास हरे हेरि हेरि,
माथे धरि मुकुट, लकुट कर डारि दै।

कुमर कन्हैया मुखचंद की जुन्हैया चारु,
लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दै।
मेरे कर मेहँदी लगी है, नँदलाल प्यारे!
लट उरझी है नकबेसरि सँभारि दै॥

× × ×

हाथ हँसि दीन्हों भीति अंतर परसि प्यारी,
देखत ही छकी मति कान्हर प्रवीन की।
निकस्यो झरोखे माँझ बिगस्यो कमल सम,
ललित अँगूठी तामें चमक चुनीन की।
कालिदास तैसी लाल मेहँदी के बुंदन की,
चारु नख-चंदन की लाल-अँगुरीन की।
कैसी छवि छाजति है छाप औ छलान की सु—
कंकन-चुरीन की, जड़ाऊ पहुँचीन की॥

———०———

राम कवि

इनका जन्म संवत् शिवसिंह-सरोज के अनुसार १७०३ माना गया है। कलिदास त्रिवेदी कृत 'कालिदास हज़ारा' में कवि राम के कवित्तों का संग्रह है।

संवत् १७३० के आसपास इन्होंने काव्य-रचना आरंभ की। नायिका-भेद-सम्बन्धी 'श्रृङ्गार-सौरभ' नामक ग्रन्थ इन्हीं की मनोहर रचना है। 'हनुमन्नाटक' नामक ग्रन्थ भी राम कवि का लिखा है। 'श्रृङ्गार-सौरभ' में श्रृङ्गार-सम्बन्धी साधारणतः अच्छे उदाहरण हैं। एक कवित्त देखिए:—

उमड़ि घुमड़ि घन छोड़त अखंड धार,
चंचला उठति तामें तरजि-तरजि कै।
बरही पपीहा भेक पिक खग टेरत हैं,
धुनि सुनि प्रान उठे लरजि-लरजि कै।

कहै कवि राम लखि चमक खदोतन की,
पीतम को रही मैं तो बरजि-बरजि कै।
लागे तन तावन बिना री मनभावन के,
सावन दुवन आयो गरजि-गरजि कै॥

महाकवि देवदत्त

जीवन परिचय : 'घोसरिया कवि देव को नगर इटायो बास' पंक्ति कवि 'देव' की ही है। इससे सिद्ध है कि वे कान्य-कुब्ज घोसरिया ब्राह्मण थे और इटावा के पास बलालपुरा में निवास करते थे। इनका जन्म-संवत् १७३० विक्रमी का बैठता है और संवत् १८२४ के पश्चात् इनका शरीरांत होना सिद्ध किया जाता है। कुछ व्यक्ति इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं, क्योंकि सनाढ्यों की बस्ती में इनका घर था। किन्तु देव के वर्त्तमान वंशजों द्वारा उनके कान्यकुब्ज होने की ही पुष्टि हो चुकी है। अस्तु, महाकवि देव सनाढ्य हों अथवा कान्यकुब्ज, उनके ब्राह्मण होने में किसी को शंका नहीं हो सकती।

देवजी के जीवन की सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये किसी आश्रयदाता का यशोगान करने के लिए आश्रित रूप से कभी कहीं नहीं रहे। स्वच्छन्द वृत्ति के प्रतिभाशाली कवि की भाँति ये इधर से उधर, समस्त देश में घूमकर अनुभव प्राप्त करने में प्रसन्न रहते थे। किसी राजा-महाराजा के यहाँ स्थायी रूप से रहना इन्हें पसन्द नहीं था। सोलह वर्ष की अल्प आयु में एक ग्रन्थ निर्माण करके देवजी ने अपनी प्रतिभा का प्रथम परिचय दिया था। अपने प्रथम ग्रन्थ 'भाव-विलास' और 'अष्टयाम' को देवजी ने औरंगजेब के हिन्दी-प्रेमी पुत्र आज़मशाह को सुनाया, किन्तु उनको सम्मान वहाँ नहीं मिला। इसके पश्चात् भवानीदत्त वैश्य के नाम पर 'भवानी-विलास' और कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल-विलास' नामक ग्रन्थ रचे गए। राजा उद्योतसिंह बैस के लिए उन्होंने 'प्रेम-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। किन्तु कवि देव का सम्मान किसी ने न किया।

हाँ, सम्मान अवश्य मिलता, यदि देवजी इन लोगों की प्रशंसा के पुल बाँधते तथा इनके गुण-गान की स्वरलहरी से नभोमंडल को गुँजा देते। अन्त में ऐसे शुष्क व्यक्तियों का सम्पर्क छोड़कर देवजी भारत-भ्रमण में व्यस्त हो गए। प्रत्येक प्रान्त के प्रसिद्ध नगरों को इन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से देखा। भिन्न-भिन्न स्थानों की स्त्रियों के रूप तथा वहाँ के मनोहर प्राकृतिक दृश्य इनके मस्तिष्क में चित्रित होगए। भारत-भ्रमण के अमूल्य अनुभवों को देव ने हृदयग्राही दृश्यों और चित्रों सहित 'जाति-विलास' में अंकित किया है। भ्रमण के पश्चात् कवि देव को राजा भोगीलाल नामक एक अच्छा प्रशंसक भी मिल गया। देव के गुणों को भोगीलाल खूब समझते थे। देव ने भी 'रस-विलास' नामक ग्रंथ लिखकर भोगीलाल के प्रति सम्मान प्रकट किया। इस प्रकार कुछ समय तक कवि देव राजा भोगीलाल के आश्रय में आनन्दपूर्वक रहे।

महाकवि देव के विषय में सबसे अधिक श्रेय और आश्चर्य की बात यह है, कि स्थायी रूप से किसी आश्रयदाता के आश्रय में रहे विना भी रीतिकालीन कवियों में सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थकार यही थे। कोई इनके ग्रन्थों की संख्या बहत्तर बताता है और कोई बावन। अब तक २५ ग्रन्थों की तालिका तो विद्वानों ने प्रयत्नपूर्वक खोज निकाली है। कुछ ग्रंथों के नाम नीचे दिये जाते हैं। १—भाव-विलास, २—अष्टयाम, ३—भवानी-विलास, ४—सुजान-विनोद, ५—प्रेम-तरंग, ६—राग-रत्नाकर, ७—कुशल-विलास, ८—देव-चरित्र, ९—प्रेम-चन्द्रिका, १०—जाति-विलास, ११—रस-विलास १२—काव्य-रसायन अथवा शब्द-रसायन, १३—सुख-सागर-तरंग, १४—वृक्ष-विलास, १५—पावस-विलास, १६—ब्रह्म-दर्शन-पचीसी आदि।

कवि देव की कविता—

महाकवि देव की काव्य-भाषा मँजी हुई व्रजभाषा है। अपने काव्य-कौशल द्वारा इन्होंने साहित्यिकता और व्रजभाषा का स्वरूप ही निखार दिया है। शब्दों का सुन्दर चयन और अलंकारों की मोहक योजना देव की कविता की विशेषताएँ हैं। कहीं-कहीं इन्होंने शब्दों का स्वेच्छानुसार निर्माण

किया है, किन्तु वह अलंकारों की छटा दिखाने के लिए ही किया गया प्रतीत होता है। देव की भाषा माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है।

कवि देव ने अपनी काव्य-रचनाओं में ऐसी मधुर और सरस वाणी की झंकार की, कि उनके बाद के अनेक कविगण उसकी गूंज में अपने-अपने सुर मिलाते रहे।

देव की अधिकांश कृतियाँ सवैया तथा कवित्तों के रूप में हैं। कविताएँ अपनी गति और ओज के कारण पाठक की रुचि को स्वभावतः अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। जहाँ अनुप्रास और यमक के प्रयोग मिलते हैं, वहाँ काव्य में अनुपम मादकता का वातावरण पाया जाता है। देव की कविता में प्रसादगुण के अतिरिक्त गंभीरता एवं विचारशीलता भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। मानोवैज्ञानिक चित्रण तथा शब्दों में भावों की वास्तविक ध्वनि भरने में कवि देव पूर्णरूप से सिद्धहस्त थे। अपनी युवा-वस्था से प्रौढ़ावस्था की काव्य-भाषा को विकसित करने में 'देव' की प्रतिभा जितनी सराहनीय है, उतनी कम कवियों की होती है। निस्सन्देह कवि-प्रवर देव में महाकवियों के सब गुण दृष्टिगत होते हैं। काव्य के दसों अंगों पर अधिकारपूर्ण काव्य-रचना कर देव ने साहित्य में श्रेष्ठतम स्थान बनाने का प्रयत्न किया है। सौन्दर्य की विस्तृत विवेचना तथा संगीतमय काव्य में अपने प्रिय विषय 'प्रेम' का सृजन करके कवि देवदत्त ने शृङ्गार रस की अच्छी गौरव-वृद्धि की है। 'देव-चरित्र' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखकर भी कवि ने अपनी प्रबन्ध-पटुता का अच्छा परिचय दिया है।

प्रौढ़ावस्था में देवदत्तजी के काव्य में संयम का प्रशंसनीय परिचय मिलता है। भाषा तथा भावों में गम्भीरता और विचारशीलता के दर्शन होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस अवस्था में देवजी वेदान्त की ओर प्रवृत्त हुए हैं। वेदान्त सम्बन्धी रचनाओं में इनकी 'ब्रह्म-दर्शन-पचीसी' 'तत्वदर्शन-पचीसी' 'आत्म-दर्शन-पचीसी' और 'जगत-दर्शन-पचीसी' आदि सुन्दर रचनाएँ हैं। देव-काव्य के अतिरिक्त इतना स्पष्ट क्रमिक विकास रीतिकालीन कवियों में कदाचित् ही कहीं मिले। अनुभव और सूक्ष्मदर्शिता

के योग से अपनी सुन्दर कल्पनाशक्ति द्वारा हिन्दी-काव्य-कलश में अपना अमूल्य मधु उँडेल कर महाकवि देव ने रीतिकाल के कवियों में अपना ऊँचा स्थान बनाया है। नीचे कवि देव की कविता के कुछ सुन्दर उदाहरण दिए जाते हैं—

प्रेम पयोधि परे गहिरे अभिमान—
को फेन रह्यौ गहि रे मन।
कोप तरंगनि सों बहिरे पछिताय—
पुकारत क्यों बहिरे मन।
देवजू लाज-जहाज ते कूदि,
रह्यो मुख मूंदि अजौं रहि रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब,
तेरी अनीति तुही सहि रे मन॥

× × × ×

रीझि रीझि रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
सांसैं भरि आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि चकिमकि उचकि उचकि देव,
जकि जकि बकि बकि परति बई बई।
दुहुँन कौ रूप गुन दोउ बरनत फिरैं,
घर न थिराति रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मन भयो मोहन को राधिका मैं,
राधिका हूँ मोहि मोहि मोहनमयी भई॥

× × × ×

आपुस में रस में रहसैं बहसैं बनि राधिका कुञ्जबिहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहिं, स्याम सराहत स्यामा की सारी।
एकहि दर्पन देखि कहै तिय, नीके लगौ पिय, प्यौ कहै प्यारी।
'देवजू' बालम बाल कौ बाद बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी॥

× × × ×

झहरि झहरि झीनी बूँद हैं परति मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यौ स्याम मोसों 'चलौ झूलिबे कों आज'
फूली ना समानी भई ऐसी हूँ मगन मैं।
चाहत उठ्योई, उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में।
आँखि खोलि देखौं तौ न घन हैं, न घनस्याम,
वेई छाई बूँदैं मेरे आंसु ह्वै दृगन में॥

× × × ×

कथा में न कंथा में न तीरथ के पंथा में न,
पोथो में न पाथ में न साथ की बसीति में।
जटा में न मुण्डन न तिलक त्रिपुण्डन न,
नदी कूप कुण्डन अन्हान दान रीति में।
पीठ मठ मंडल न कुण्डल कमंडल न,
माला दण्ड में न देव देहरे की भीति में।
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यौ,
पाइए प्रगट परमेसर प्रतीति में॥

———०———

नेवाज कवि

पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल की राजसभा में भगवत् नामक कवि के स्थान पर कवि नेवाज की नियुक्ति हुई थी। इस पर भगवत् ने एक व्यंग्यात्मक दोहा बनाकर भेजा—

भली आजु कलि करत हैं, छत्रसाल महाराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

संवत् १७३७ के लगभग इन्होंने काव्य-रचना की। नेवाज कवि ने 'शकुन्तला नाटक' का कथा-वर्णन दोहा, चौपाई, सवैया आदि छंदों में किया

है। सुगठित, मँजी हुई भाषा में सुन्दर भावयुक्त कविता करके कवि नेवाज ने श्रृङ्गारी कवियों के मध्य ख़ासा स्थान पाया। आज़मशाह के दरबार में भी इनका बहुत दिनों तक सत्कार रहा। नीचे लिखे सवैया में इनका काव्य-कौशल देखिए—

> **देखि हमैं सब आपुस में जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।**
> **ये घरहाई लुगाई सबै निसि द्यौस नेवाज हमें दहती हैं।**
> **बातैं चबाव भरी सुनि कै रिस आवति पै चुप ह्वै रहती हैं।**
> **कान्ह पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं॥**

———०———

सुरति मिश्र

ये आगरा-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका काव्य-रचना-काल संवत् १७६६ के लगभग माना जाता है। अलंकार-सम्बन्धी 'अलंकार-माला' इनकी सर्व प्रथम रचना है। टीकाकार के नाते भी हिन्दी-साहित्य में इनका अच्छा स्थान है। 'बिहारी-सतसई' की 'अमर चन्द्रिका' नामक टीका संवत् १७९४ में इन्होंने की। 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' की टीकाएँ मिश्रजी की साहित्य-मर्मज्ञता को पूर्ण रूप से व्यक्त करती हैं। 'वैताल-पंचविंशति' नामक संस्कृत-ग्रन्थ का व्रजभाषा-गद्य में अनुवाद मिश्रजी ने ही किया है। इन्होंने टीकाओं को भी व्रजभाषा-गद्य में लिखा है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'रस-रत्नमाला', 'सरस-रस', 'रस-ग्राहक-चन्द्रिका', 'नख-शिख', 'काव्य-सिद्धान्त' और 'रस-रत्नाकर' भी कवि सुरति मिश्र के रचे रीति-ग्रंथ हैं। मिश्रजी की काव्य-भाषा चलती हुई व्रजभाषा है। कविताएँ साधारणतः सुन्दर हैं। काव्य-शास्त्र-ज्ञान और साहित्य-मर्मज्ञता का प्रदर्शन इनकी टीकाओं में भली भाँति मिलता है। लक्षण और उदाहरण इन्होंने भी एक ही दोहे में जड़ने का प्रयास किया है। मिश्रजी के सब ग्रंथ अभी प्रकाश में नहीं आए। इनके विषय में अभी अधिक खोज

नहीं हुई। सरदार नसरुल्लाख़ाँ और दिल्ली के सम्राट् मुहम्मदशाह की राजसभा में इनका सम्मान था। इनकी कविता का एक नमूना देखिए—

तेरे ये कपोल बाल अति ही रसाल,
मन जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान,
अरु बापुरे मधूकन की देह जारियत है।
नेकु दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भए अपराधी ऐसो चित्त धारियत है।
'सुरति' सो याही तें जगत बीच आजहूँ लौं,
उनके बदन पर छार डारियत है॥

———०———

उदयनाथ

'कवीन्द्र' इनकी उपाधि थी। संवत् १७३६ के लगभग कवि कालिदास त्रिवेदी के पुत्र रूप में इन्होंने जन्म धारण किया। इनका काव्य-रचना-काल संवत् १८०४ के निकट माना जाता है। अब तक 'रस-चन्द्रोदय', 'विनोद-चन्द्रिका' और 'जोग-लीला' नामक इनके ग्रंथ उपलब्ध हैं। 'रस-चन्द्रोदय' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। अमेठी-राज-दरबार में इनका बड़ा सम्मान था।

'कवीन्द्र'जी की भाषा शुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा है। शृङ्गार रस की मृदुल और सरस कविताएँ रचकर इन्होंने हिन्दी-साहित्य में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया है। नीचे आपकी कविता का एक उदाहरण दिया जाता है।

कैसी ही लगन जामें लगन लगाई तुम,
प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके।
केतिकौ छपाय के उपाय उपजाय प्यारे,
तुम से मिजाज के चढ़ाये चोप चसके।

भनत कबिंद हमैं कुञ्ज में बुलाय करि,
बसे किन जाय दुख देकर अबस के।
पगन में छाले परे, नाँघिबे को नाले परे,
ताऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥

श्रीपति कवि

ये कालपी के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके रचे हुए ग्रंथ इस प्रकार है—'काव्य-सरोज', 'कवि-कल्पद्रुम', 'रस-सागर,' 'अनुप्रास-विनोद,' 'विक्रम-विलास,' 'सरोज-कलिका,' और 'अलंकार गंगा'।

श्रीपतिजी स्वच्छन्द वृत्ति के कवि थे। इनकी कविताएँ इनके कवि-हृदय के स्वाभाविक उल्लास का प्रकटीकरण हैं। अपने रीति-ग्रंथों में श्रीपतिजी ने काव्य के सब अंगों का वर्णन किया है। ऋतुओं का वर्णन भी मनोरम और भावपूर्ण बन पड़ा है। स्वच्छ व्रजभाषा की सरसता तो इनके ग्रन्थों की कविताओं का प्राण है।

इनका 'काव्य-सरोज' नामक ग्रन्थ काव्य शास्त्र की दृष्टि से उत्तम माना जाता है। श्रीपतिजी इस ग्रन्थ में कट्टर समालोचक के रूप में उतरे हैं। भाषा और शैली विद्वत्ता से परिपूर्ण है। सत्यवृत्ति को जाग्रत करने वाली आचारपरक रचनाएँ भी श्रीपतिजी ने कुशलतापूर्वक की हैं। सम्पूर्ण काव्य-रचना में इनका पावस-वर्णन अत्यन्त उल्लासमय और माधुर्य गुण-युक्त है। अनुप्रासमयी इनकी अनेकों कविताएँ हृदयग्राही हैं। श्रीपतिजी की कविता के दो सुन्दर उदाहरण देखिए—

भौंरन की भीर लैके दच्छिन समीर धीर
डोलत है मंद अब तुम धौं कितै रहे।
कहै कवि 'श्रीपति' हो प्रबल बसंत
मतिमंत मेरे कंत के सहायक जितै रहे।
लागहि बिरह जुर जोरते पवन ह्वै कै
पर धूम भूमि पै सम्हारत मितै रहे।

रति को बिलाप देखि करुना-अगार कछू
लोचन कों मूंदि कै त्रिलोचन चितै रहे।

× × × ×

ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको
कहत सकल कवि हवि फीको रूम को।
बिनु गुन रूप फीको, ऊसर को कूप फीको
परम अनूप भूप फीको बिन भूम को।
श्रीपति सुकवि महावेग बिनु तुरी फीको
जानत जहान सदा जोन्ह फीको धूम को।
मेह फीको फागुन अबालक को गेह फीको
नेह फीको तिय को सनेह फीको सूम को।

———०———

कृष्ण कवि

इतिहास-वेत्ताओं का अनुमान है कि ये महाकवि बिहारी के सुपुत्र थे अतः इन्हें मथुरिया चतुर्वेदी मानना चाहिए। महाराज जयसिंह के राज्य-काल में उनके मंत्री राजा आयामल्ल की आज्ञा से कवि कृष्ण ने बिहारी-सतसई की एक टीका लिखी थी। इसमें दोहों को सवैयों के रूप में कुशलता-पूर्वक स्पष्ट किया गया है।

कृष्णकवि को अपनी भाषा पर अच्छा अधिकार था। सरल और सरस भाषा में काव्यांग समझाकर इन्होंने हिन्दी-कवियों में उचित स्थान पाया है। इनका लिखा निम्नलिखित पद्य देखिये—

सवैया—

छविसों फबि सीस किरीट बन्यो, रुचि साल हिए बनमाल लसै।
कर कंजहि मंजु रली मुरली, कछनी कटि चारु प्रभा बरसै।
कवि कृष्ण कहैं लखि सुन्दर मूरति यों अभिलाष हिए सरसै।
वह नंदकिसोर बिहारी सदा यहि बानिक मो हिय माँझ बसै॥

———०———

अलीमुहिबखाँ

ये 'प्रीतम' नाम से भी प्रसिद्ध हैं। आगरा में इनका निवास-स्थल था। जिन दिनों हिन्दी-साहित्य के विकास में श्रृङ्गार रस की ही उपयोगिता थी, उन दिनों कवि अलीमुहिबखां ने हास्यरस का साधारण क्षेत्र चुनकर काव्य-रचना की। संवत् १७८७ में लिखी गई खाँसाहब की 'खटमल बाईसी' शिष्ट हास्य का अनुपम ग्रन्थ है। एक उदाहरण देखिए—

बाघन पै गयो, देखि बनन में रहे छपि,
साँपन पै गयो, ते पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो, धूल डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो काहू दारु ना बताई है।
जब हहराय हम हरि के निकट गए,
हरि मोसों कही तेरो मति भूल छाई है।
कोऊ ना उपाय, भटकत जनि डोलै, सुन,
खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥

भिखारीदास

काव्य के सब अंगों पर पांडित्यपूर्ण विवेचन करने वाले रीति-ग्रंथकारों में भिखारीदासजी का बहुत ऊँचा स्थान है। ये प्रतापगढ़ के निकट ट्योंगा ग्राम-निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। दासजी के ग्रंथों से उनके आगे-पीछे की वंश-श्रृङ्खला का पता मिला है। इनके ग्रंथों की नामावली इस प्रकार है–

'रस सारांश', 'छंदोर्णव पिंगल', 'काव्यनिर्णय', 'श्रृङ्गार-निर्णय', 'नाम-प्रकाश', 'विष्णुपुराण भाषा', 'छंद-प्रकाश', 'शतरंज-शतिका' और 'अमर प्रकाश' (संस्कृत अमरकोष का हिन्दी में पद्यानुवाद)।

दास के ग्रंथों में 'काव्य-निर्णय' तथा 'श्रृङ्गार-निर्णय' विशेषरूप से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'विष्णु पुराण' को दोहों और चौपाइयों में रूपान्तरित किया है। आचार्य की हैसियत से कवि भिखारीदास का स्थान बहुत ऊँचा है। अलंकार-रस, छंद-रीति, गुण-दोष और शब्द-शक्ति आदि विषयों का स्पष्ट और

पांडित्यपूर्ण विवेचन इनके रीति-ग्रंथों में मिलता है। दासजी स्वतंत्र विचार के सफल आलोचक थे। इनकी साहित्य-मर्मज्ञता को व्यक्त करने वाले अनुपम ग्रन्थ हैं। 'रस सारांश' में इन्होंने शृङ्गार रस को रसराज मानते हुए बड़ी सुन्दर विवेचना की है। दासजी के सरस उदाहरणों में शब्दाडम्बर नाम मात्र को भी नहीं मिलेगा। विलक्षणता से किसी बात को व्यक्त करना इन्होंने कभी पसन्द नहीं किया।

कवि भिखारीदासजी के ग्रन्थों की मुख्य भाषा ब्रजभाषा है। कहीं-कहीं अवधी का भी प्रयोग है। कवि के रूप में भी आचार्य दासजी का सुन्दर व्यक्तित्व है। भाव-व्यंजक पदावली से युक्त इनकी कविता विद्वानों में बड़े आदर से पढ़ी जाती है। इनकी कविता के दो नमूने नीचे दिए जाते हैं।

नैनन को तरसैये कहाँ लौं,
कहाँ लौं हियो बिरहागि मैं तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये,
कहाँ लगि प्रानन को कलपैये।
आवै यही अब जी में बिचार,
सखी चलि सौतिहुँ के घर जैये।
मान घटे ते कहा घटिहै,
जुपै प्रान पियारे को देखन पैये।

× × × ×

अँखियाँ हमारी दई मारी सुधि बुधि हारीं
मोहू तें जु न्यारी 'दास' रहैं सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौंपत सयानै, कौन-
लोक ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में।
प्रेम पगि रहीं महामोह में उमगि रहीं-
ठीक ठगि रहीं लगि रहीं बनमाल में।
लाज को अँचै कै, कुल धरम पचै कै बृथा-
बंधन सँचै कै भईं मगन गोपाल में।

भूपति कवि

इनका वास्तविक नाम गुरुदत्तसिंह था। ये अमेठी राज्य के स्वामी थे। शृङ्गार रस के दोहे रचकर इन्होंने एक सतसई तैयार की। इसके अतिरिक्त दो रीति-ग्रन्थ भी इनके रचे हुए सुने जाते हैं। 'कंठाभूषण' नामक ग्रन्थ में अलंकार सम्बन्धी व्याख्या है। 'रस-रत्नाकर' में रसों की विवेचना की गई है।

जहाँ भूपति कवि के जीवन में क्षत्रियत्व की वीरता-पूर्ण छाप थी, वहाँ सहृदयता तथा काव्य-मर्मज्ञता के कारण विद्वानों का सत्कार भी इनकी राजसभा में मुक्त हृदय से किया जाता था। उदयनाथ कवीन्द्र नामक कवि इनके दरबार में काफ़ी समय तक रहे थे।

भूपतिजी की सरस कविता का एक दोहा देखिए —

भए रसाल रसाल हैं भरे पुहुप मकरंद।
मान-सान तोरत तुरत भ्रमत भ्रमर मद-मंद॥

तोषनिधि

ये शृंगवेरपुर (ज़िला इलाहाबाद) निवासी चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। सुन्दर काव्य रचना करने में तोषनिधिजी बड़े सिद्ध-हस्त थे। रस-भेद और भाव-भेद सम्बन्धी इनका 'सुधानिधि' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'विनय शतक' और 'नखशिख' नामक इनके दो ग्रंथ और भी खोज में मिले बताये जाते हैं।

तोषजी की भाषा शुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा है। इन्होंने प्रौढ़ भाषा में गंभीर एवं भावमयी रचनाएँ की है। काव्यांगों के सुन्दर लक्षण और सरस उदाहरण देकर इन्होंने व्रजभाषा के प्रधान कवियों में स्थान पाया है। तोषजी की परिमार्जित भाषा से युक्त एक सरस कविता का सुन्दर उदाहरण देखिए—

ोहरि की छवि देखिवे को अँखियाँ—
प्रति रोमन में करि देतो।
ािनन के सुनिवे कहँ श्रौन,
जितै चित तू करतौ करि हेतो।
ो ढिंग छोड़न काम कछू कहि,
तोष यहै लिखतो बिधि एतो।
ौ करतार इती करनी करि कै,
कलि में कल कीरति लेतो॥

———०———

दलपतिराय और वंशीधर

ों कवि अहमदाबाद निवासी थे। संवत् १७९२ में दोनों ने दयपुर के महाराणा जगतसिंह के सम्मान में 'अलंकार-रत्नाकर' की रचना की। इन कवियों ने इस ग्रंथ में अलंकारों की रते हुए गद्य का प्रयोग भी किया है। 'अलंकार-रत्नाकर' ख कवियों के भी उदाहरण रक्खे गये हैं।

लपतिराय महाजन थे और कवि वंशीधर ब्राह्मण। दोनों ही ा करते थे। इनकी एक कविता नीचे दी जाती है।

हरौल नभ-मडल-मुलुक पर,
चढ़्यो अक्क चक्कवै कि तानि कै किरनि कोर।
ही सांवत नछत्र जोय धाय धाय,
घोर घमसान करि काम आए ठौर ठौर।
सेत भयो सहक्यो सहमि ससि,
आमिल उलूक जाय गिरे कन्दरन ओर।
देखि अरविंद-बंदीखाने तें भगाने,
पायक पुलिंद वै मलिंद मकरंद-चोर॥

———०———

सोमनाथ

'शशिनाथ' इनका उपनाम था। ये माथुर ब्राह्मण थे। भरतपुर के छोटे राजकुमार प्रतापसिंह के साथ रहते थे। रीति-ग्रंथ की दृष्टि से इनका 'रस पीयूष-निधि' नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'कृष्ण-लीलावती-पंचाध्यायी', 'सुजान-विलास' (पद्यमय-सिंहासन बत्तीसी) और 'माधव-विनोद नाटक' इन तीन ग्रंथों का और भी पता मिला है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के अल्प संख्यक नाटक-कोष को 'माधव विनोद' का दान देकर कवि सोमनाथ ने बड़ा उपकार किया। प्रबन्ध-काव्य-रचना की ओर भी इनकी विशेष रूप से प्रवृत्ति रही।

भाषा की स्पष्टता तथा स्वाभाविकता के लिए सोमनाथजी के ग्रंथ आदरणीय हैं। व्यंग्यात्मक सूक्ष्म तथा माधुर्यपूर्ण काव्य-रचना के कारण इनका नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। इनकी कविता का नमूना देखिए।

दिसि बिदिसन तें उमड़ि मढ़ि लीनो नभ,
छाँड़ि दीने धुरवा, जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भए द्रुम रंचक हवा के गुन,
कहूं कहूं मोरवा पुकारि मोद भरिगे।
रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
'सोमनाथ' कहै बूँदा-बूँदि हू न करिगे।
सोर भयो घोर चारों ओर महि मंडल में,
'आए घन, आए घन', आयकै उघरिगे॥

रसलीन

सैयद गुलामनबी 'रसलीन' बिलग्राम (ज़िला हरदोई) के रहने वाले थे। 'रसलीन' का 'अंगदर्पण' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध ग्रंथों में गिना जाता है। इसकी रचना संवत् १७१४ के लगभग मानी जाती है। रस-सम्बन्धी ज्ञान के लिए रसलीन ने 'रस-प्रबोध' नामक ग्रंथ की भी रचना की। 'अंग-दर्पण' में

विविध अलंकारों से युक्त अंगों का काव्यमय वर्णन है। माधुर्य से भरपूर होने के कारण इसकी अधिक प्रसिद्धि है। रसलीन ने अधिकतर दोहे ही लिखे हैं। चमत्कार तथा उक्ति-वैचित्र्य से ओत-प्रोत इनके दो-चार दोहे देखिये—

अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥
रमनी-मन पावत नहीं लाज-प्रीति को अन्त।
दुहूँ ओर ऐंचो रहै जिमि बिबि तिय को कंत॥
कुमति चंद प्रति द्योस बढ़ि, मास मास कढ़ि आय।
तुव मुख-मधुराई लखै फीको परि घटि जाय॥

—— o ——

रघुनाथ

कवि रघुनाथ बन्दीजन काशी-नरेश की राजसभा में थे। ये प्रतिभाशाली और ज्ञानी कवि थे। महाराज ने प्रसन्न होकर चौरा नामक ग्राम इन्हें भेंट किया था। रघुनाथजी-द्वारा रचित चार ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। १—रसिक मोहन, २—काव्य-कलाधर, ३—जगत् मोहन और ४—इश्क महोत्सव। बिहारी सतसई की एक टीका भी इनके द्वारा रची बतायी जाती है। 'रसिक मोहन' में अलंकारों की विवेचना की गई है। 'कव्य-कलाधार' रस सम्बन्धी ग्रन्थ है। 'जगत मोहन' में कवि रघुनाथ ने अपनी बहुज्ञता का प्रदर्शन किया है। इसमें श्रीकृष्ण की दिनचर्या तथा राज्योपयोगी ज्ञान वर्णित है। 'इश्क महोत्सव' में खड़ी बोली की रचनाएँ करने का प्रयास किया गया है। उस समय खड़ी बोली को ही उर्दू कहकर पुकारा जाता था ऐसा इस ग्रन्थ से प्रकट होता है। काव्य-रचना में रघुनाथ जी ने साहित्यिक व्रजभाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण-स्वरूप इनकी एक कविता देखिए।

सूखति जाति सुनी जब सों,
कछु खाति न पीवति कैसे धौं रैहै।

जाकी है ऐसी दसा अबहीं,
'रघुनाथ' सो औधि अधार क्यों पैहै।
ताते न कीजिये गौन बलाय,
यों गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति है दृग ओट भये तिय,
प्रान उसासहिं के संग जैहै॥

दूलह कवि

इनके पिता कवि उदयनाथ (कवीन्द्र) थे और पितामह कवि कालिदास त्रिवेदी। अतः अपने वंश की तीसरी पीढ़ी में, कविता की पैतृक सम्पत्ति लेकर कवि दूलह ने भी 'कविकुल-कंठाभरण' नामक ग्रन्थ-रचना की। यह अलङ्कार-ग्रन्थ है। केवल इसी ग्रन्थ-रचना के कारण कवि दूलह हिन्दी-साहित्य के प्रमुख कवियों में गण्य हैं। इस पुस्तक के अतिरिक्त दूलह की कुछ फुटकर रचनाओं का भी पता चला है।

कवि दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण' प्रसिद्ध अलङ्कार-ग्रन्थ है। कवित्तों और सवैयों में इसकी रचना हुई है। अलङ्कारों का शुद्ध और यथातथा निरूपण होने के कारण इस ग्रन्थ की खूब ख्याति है। साहित्यिक ब्रजभाषा में इन्होंने अपनी रचनाएँ की हैं। दूलहजी की कविता का नमूना देखिए—

उत्तर उत्तर उतकरख बखानौं 'सार'
दीरघ ते दीरघ लघू ते लघू भारी को।
सब ते मधुर ऊख ऊख ते पियूख औ,
पियूख हूं ते मधुर है अधर पियारी को।
जहाँ क्रमिकन को क्रमै ते यथाक्रम
'यथासंख्य' बैन नैन कोन ऐसे धारी को।
कोकिल ते कल कंज-दल ते अदल भाव
जीत्यौ जिन काम की कटारी नोकवारी को।

चंदन कवि

इनकी प्रतिभा साहित्य के विविध अङ्गों का निर्माण करती हुई चमत्कृत हुई। ये बंदीजन थे और नाहिल पुवायाँ (ज़िला शाहजहाँपुर) में रहते थे। गौड़ राजा केसरीसिंह के आश्रय में इन्होंने अनेक ग्रंथ रचे। इनके प्राप्य और अप्राप्य ग्रंथ (१८२०–१८५०) सब इस प्रकार हैं—'शृङ्गार-सागर', 'काव्याभरण,' 'कल्लोल तरंगिणी,' 'केसरी-प्रकाश,' 'चंदन-सतसई,' 'कृष्ण-काव्य,' 'प्राज्ञ-विलास,' 'नखशिख,' 'पत्रिका-बोध,' 'तत्त्व-संग्रह,' 'सीत-वसंत' (कहानी) और 'पथिक बोध' आदि। इनकी 'सीत-वसंत' की कथा बहुत प्रसिद्ध है। कवि चंदन उर्दू और फ़ारसी के भी अच्छे शायर थे। 'सन्दल' उपनाम से शायरी लिखते थे। हिन्दी में इनकी काव्य-शैली धारावाहिकता से युक्त है किन्तु भाषा में साहित्यिकता का अभाव है। इनका एक सवैया पढ़कर देखिये—

ब्रजवारी गँवारी दै जानैं कहा, यह चातुरता न लुगायन में।
पुनि बारिनी जानि अनारिनी है, रुचि एती न चंदन चायन में।
छवि रंग सुरंग के बिंदु बने, लगै इन्द्रबधू लघुतायन में।
चित सों चहँदी चकिसी रहँदी, केहि दी मेंहदी इन पायन में॥

———o———

देवकीनन्दन

कन्नौज के निकटवर्ती मकरंदनगर ग्राम में सबली शुक्ल के पुत्र देवकीनन्दन शुक्ल हुए। कवि देवकीनन्दन ने सरफ़राज़गिरि नामक किसी धनवान् आश्रयदाता के सम्मान में रस और अलङ्कार सम्बन्धी 'सरफ़राज-चन्द्रिका' नामक एक ग्रंथ लिखा। हरदोई के धनी अवधूतसिंह के आश्रय में इन्होंने दूसरा ग्रन्थ 'अवधूत-भूषण' बनाया। इन ग्रंथों के अतिरिक्त संवत् १८४१ में रचा हुआ 'शृङ्गार चरित्र' भी रस, नायिका-भेद, भाव, अलंकार आदि की दृष्टि से सुन्दर ग्रंथ है। शुक्लजी ने नख-शिख सम्बन्धी रचनाएँ भी की हैं। इनकी कविताएँ माधुर्य गुणयुक्त, सरस तथा प्रवाहमयी हैं।

इनकी भाषा मँजी हुई प्रौढ़ व्रजभाषा है। उदाहरणार्थ एक कविता देखिए—

मोतिन की माल तोरि, चीर सब चीरि डारे,
फेरि से न जैहों आली दुःख बिकरारे हैं।
देवकीनँदन कहें धोखे नागछौनन के
अलकें प्रसून नोचि नोचि निरवारे हैं।
मानि मुख चंद-भाव चोंच दई अधरन,
तीनों ये निकुंजन में एकै तार तारे हैं।
ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे—
मोर मतवारे त्यों चकोर मतवारे हैं॥

———०———

थान कवि

ये अपना वास्तविक नाम थानराय न लिखकर थान कवि लिखते थे। संवत् १८४८ में 'दलेलप्रकाश' नामक प्रथम रीति-ग्रंथ की रचना इन्होंने दलेलसिंह नामक एक धनाढ्य व्यक्ति की प्रशंसा में की। ग्रन्थ के अंत में चित्रकाव्य दिये गए हैं। विषय-प्रतिपादन कुशलतापूर्वक किया गया है, पर कहीं-कहीं इधर-उधर के विषयों की ठूँस-ठाँस से ग्रंथ के गौरव में त्रुटि आगई है। फिर भी इनकी कविता में सरस और सुघर भाषा की छटा दिखाई देती है। नमूना नीचे दिया जाता है।

कलुष-हरनि सुख-करनि सरन जन,
बरनि-बरनि जस कहत धरनिधर।
कलिमल-कलित बलित-अघ खलगन,
लहत परम पद कुटिल कपटतर।
मदन-कदन सुर-सदन बदन ससि,
अमल नवल दुति भजन भगतवर।
सुरसरि! तव जल दरस परस करि,
सुरसरि सुभ गति लहत अधम नर॥

———०———

बेनी बंदीजन

जिला रायबरेली के बैंती ग्राम में इनका जन्म हुआ। संवत् १८४६ में टिकैतराय नामक एक अवधी राजमंत्री के आश्रय में इन्होंने 'टिकैतराय-प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की। उक्त ग्रंथ अलङ्कार-सम्बन्धी विषयों को लेकर निर्मित हुआ है। कवि के द्वितीय ग्रंथ 'रसविलास' में रसों की विवेचना मिलती है। बेनी कवि अपनी हास्य-रस-प्रियता के कारण अधिक प्रतिष्ठा पा सके। इनका 'भँड़ौवा-संग्रह' नामक हास्य-ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। व्यंग्य से भरी हुई निन्दा का सजीव मसाला इस ग्रंथ में है। बेनीजी ने जहाँ भी अपने प्रति उपेक्षा का आभास पाया, वहीं हास्य के मिस उपेक्षक की दो टूक निन्दा कर डाली। बेनी ने अन्य कवियों पर भी हास्य की फुलझड़ियाँ छोड़ी हैं। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे देखिये—

घर घर घाट घाट बाट बाट ठाट ठटे,
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिए आसपास।
कबिन सों बाद करें भेद बिन नाद करें,
सदा उनमाद करें धरम करम नास।
बेनी कवि कहैं बिभिचारिन को बादशाह,
अतन प्रकासत न सतन सरन तास।
ललना ललक नैन मैन की झलक,
हँसि हेरत अलक रत खलक ललकदास॥

उक्त पद में कैसे सरस और भावानुकूल शब्दों द्वारा ललकदास नामक कवि की छीछालेदर की गई है। और देखिये—

गड़ि जात बाजी औ गयंदगन अड़ि जात,
सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दाँवन उठाय पाय धोखे जो धरत कोऊ,
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की।

बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात,
रथन के पथ ना बिपद बरदऊ की।
बार बार कहत पुकार करतार तोसों,
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की।

नज़ाकत के पुतले लखनऊ पर कैसी कीच फेंकी गई है। एक शृङ्गार-रस का भी नमूना देखिये—

करि की चुराई चाल, सिंह को चुरायो लंक,
ससि को चुरायो मुख, नासा चोरी कीर की।
पिक को चुरायो बैन, मृग के चुराये नैन,
दसन अनार, हाँसी बीजुरी गँभीर की।
कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराय लीनी,
रती रती सोभा सब रति के सरीर की।
अब तो कन्हैया जू को चित्त हू चुराय लीनो,
छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की॥

बेनीप्रवीन

लखनउ के दीवान-पुत्र नवलकृष्ण के आश्रय में कवि बेनीप्रवीन ने अनेक ग्रंथों की रचना की। सर्व प्रथम 'शृङ्गार-भूषण' नामक ग्रन्थ रचा। आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए 'नवरस-तरंग' नामक ग्रंथ रचा गया। एक और आश्रयदाता की इच्छानुसार इन्होंने 'नानाराव-प्रकाश' का निर्माण किया। यह अलङ्कार सम्बन्धी ग्रन्थ है। मुख्य विषयों के प्रतिपादनान्तर 'नवरस-तरंग में शृङ्गार रस प्रवाहित करने के लिए बेनीजी ने प्रेम-क्रीड़ा के सुन्दर काव्य-चित्र अंकित किये हैं। इनकी परिमार्जित भाषा में पद्माकर की भाषा जैसा मिठास है। सरस शृङ्गार के कुछ उदाहरण देखिए—

कालि ही गूँधी बबा की सौं मैं गजमोतिन की पहिरी अति आला।
आई कहाँ तें यहाँ पुखराज की, संग एई जमुना तट बाला।

न्हात उतारी हौं 'बैनी प्रवीन', हँसैं सुनि बैनन नैन रसाला।
जानति ना अँग की बदली, सब सौं 'बदली बदली' कहै माला॥

× × × ×

सोभा पाई कुंजभौन जहाँ जहाँ कीन्हों गौन,
सरस सुगन्ध पौन पाई मधुपनि है।
बीथिन बिथोरे मुकुताहल मराल पाये,
आली हू दुसाल साल पाए अनगिन है।
रैनि पाई चाँदनी फटक सी चटक रुख,
सुख पायो पीतम 'प्रवीन बेनी' धनि है।
बैन पाई सारिका, पढ़न लागो कारिका,
सो आई अभिसारिका कि चारु चिंतामनि है॥

कवि शिरोमणि पद्माकर

पद्माकर भट्ट को काव्यप्रियता अपने विद्वान् पिता से बिरासत में प्राप्त हुई थी। कवि सदा शुभ पैतृक संस्कारों को ग्रहण कर अपनी प्रखर प्रतिभा का विमल विकास किया करता है। पद्माकर उन्हीं भाग्यशाली प्रतिभासम्पन्न कवियों में से थे। इनके पिता तैलंग ब्राह्मण थे। ये प्रसिद्ध कवि थे और अपने पाण्डित्यपूर्ण प्रभाव के कारण अनेक उच्च राज-दरबारों में पूज्य थे। पन्ना, जयपुर तथा नागपुर आदि प्रसिद्ध राज्यों में इनका विशेष प्रभाव था। पाण्डित्य तथा कवित्व के इस व्यक्तित्व को अपनाकर कवि पद्माकर ने भी अपने जीवन-काल में अनेक राजा-महाराजाओं से बड़ा आदर-मान पाया। हिम्मतबहादुर उपनाम धारी अनूपगिरि गोस्वामी के आश्रय में पद्माकर ने 'हिम्मतबहादुर बिरदावली' नामक वीर-रसयुक्त ग्रन्थ रचा। इस प्रकार अपनी प्रतिभा का प्राञ्जल प्रकाश फैलाते हुए पद्माकरजी सितारा, जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर, बूँदी आदि राज्यों में प्रचुर धन-राशि और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए अपने जन्म-स्थान

बाँदा में आगए। इन राज्यों में सम्मानपूर्ण आश्रय प्राप्त कर कवि पद्माकर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। 'जगद्विनोद', 'पद्माभरण', 'गनगौर' आदि ग्रन्थों का निर्माण कर ये रुग्ण-से रहने लगे। बाँदा पहुँचकर इनके जीवन में विरक्ति और ईशोपासना की भावना प्रबल हो उठी। परिणामस्वरूप 'प्रबोध-पचासा' नामक वैराग्य और भक्ति का सुन्दर ग्रन्थ रचा गया।

इस समय रोग-ग्रस्त रहने के कारण पद्मकरजी को अपना जीवन नीरस और अर्थहीन मालूम देने लगा, अतः सारे सुख और वैभव को त्याग ये कानपुर में गंगा-किनारे निवास करने लगे। यहाँ के शान्त और एकान्त वातावरण में अन्तिम ग्रंथ 'गंगालहरी' का प्रणयन कर पद्माकरजी ने अपने जीवन के ८० वर्ष पूर्ण किए और संवत् १८६० में महाप्रस्थान किया। संवत् १८१० में बाँदा नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था।

संक्षेप में पद्माकरजी के कुछ ग्रन्थों का परिचय देते हुए केवल इतना ही लिखना पर्य्याप्त है कि 'पद्माभरण' में अलंकार सम्बन्धी विवेचना मिलती है। 'जगद्विनोद' शृङ्गार-रस की मनोहर सामग्री से परिपूर्ण है। 'गनगौर' में उदयपुर के गनगौर-मेले का विशद वर्णन है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके दो ग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनके विषय में प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे कवि पद्माकर की ही कृतियाँ हैं। 'हितोपदेश का भाषान्तर' तथा 'राम-रसायन' इन ग्रन्थों के नाम हैं।

महाकवि पद्माकर की पिछली और अगली दोनों पीढ़ियाँ साहित्यिक एवं काव्य-मर्मज्ञ थीं, इस दृष्टि से उनका उज्ज्वल वंश रीतिकाल के कवियों में एक प्रकाश-स्तम्भ की भाँति स्थित है। इस वंश में पद्माकरजी ने अपने रचना-लालित्य द्वारा रीतिकालीन साहित्यिक ख्याति का अन्तिम अध्याय समाप्त किया।

पद्माकर की कविता बड़ी सरस और सुन्दर है। उनके सुन्दर वाक्य-विन्यास की प्रशंसा मुक्त कंठ से करनी पड़ती है। शब्दों में ध्वनि भरकर सजीव चित्र अंकित करने में पद्माकरजी किसी भी कवि से कम नहीं कहे

जा सकते। भावानुकूल चित्रण के साथ सरस-मृदुल भाषा का प्रवाह तथा स्पष्ट मनोरम अलंकारों की सरल योजना पद्माकर की कविता को उज्ज्वल और सर्वप्रिय बनाने में पूर्ण रूप से सहायता देते हैं। साहित्यिक व्रजभाषा के प्रयोग के साथ अन्य भाषाओं के शब्द भी कहीं-कहीं सौन्दर्य-वृद्धि करते पाए जाते हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि पद्माकरजी सच्चे प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं, उनकी कल्पना में निर्माण-शक्ति है और प्रेरणा में वास्तविक स्वाभाविकता।

नीचे पद्माकरजी की कुछ चुनी हुई कविताएँ उद्धृत की जाती हैं—

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हूँ में
पानन में पीक में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखो दीप दीपन में दीपति दिगन्त है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरयो बसन्त है॥

× × × ×

हानि अरु लाभ जानि जीवन अजीवन हूँ
भोगहूँ बियोग हूँ सँयोग हूँ अपार है।
कहै 'पद्माकर' इते पै और केते कहों
तिनको लख्यो न बेदहूँ में निरधार है।
जनियत याते रघुराय की कला कौ कहूँ
काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है।
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर
कौन जानै कौन को कहा धौं होनहार है॥

× × × ×

सोरह सिंगार कै नवेली के सहेलिन हूँ
कीन्ही केलिमन्दिर में कलपित केर है।
कहै 'पद्माकर' सुपास ही गुलाबपास
खासे खसखास खुसबोइन के ढेर हैं।
त्यों गुलाबनीरन सों हीरन के हौज भरे
दम्पति मिलाप हित आरती उँजेरे हैं।
चोखी चांदनीन पर चौरस चमेलिन के
चन्दन की चौकी चारु चाँदी के चँगेर हैं॥

× × ×

ए ब्रजचन्द चलौ किन वा ब्रज
लूकैं बसन्त की ऊकन लागीं।
त्यों 'पद्माकर' पेखौ पलासन
पावक सी मनो फूँकन लागीं।
वै ब्रजनारी बिचारी बधू-बन
बावरी लौं हिये हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइने पै सु कुहू-
कुहू कैलिया कूकन लागीं॥

ग्वाल कवि

वृजभूमि मथुरा में इनका जन्म हुआ था। वृजभाषा के सुकवियों में इनका प्रमुख स्थान है। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कवि ग्वाल ने भ्रमण किया था, अतः वे अपनी व्रजभाषा के साथ-साथ अन्य अनेक भाषाओं के भी कवि थे। इनके रचे हुए ग्रंथों की संख्या साठ से भी अधिक मानी जाती है। कुछ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—'यमुना-लहरी', 'रस-रंग', 'रसिकानन्द', 'गोपी-पचीसी', 'कृष्णाजू को नखशिख', 'साहित्यानंद', 'साहित्य-दर्पण', 'साहित्य-दूषण', 'हम्मीर-हठ', 'राधाष्टक', 'भक्त भावन' आदि।

कवि ग्वाल ने 'साहित्यानन्द,' 'रसिकानन्द,' 'साहित्य-दर्पण' तथा 'साहित्य-दूषण' आदि बड़े ग्रन्थों में साहित्य के लगभग सम्पूर्ण अंगों का सुन्दर विवेचन किया है। रीतिकाल की काव्य-परंपरा के प्रति इनको बड़ा आकर्षण था। इसीलिए 'यमुना-लहरी', जो इनका सर्व प्रथम स्तुति-ग्रंथ है, नव रसों और ऋतु-वर्णन से ओतप्रोत है।

ग्वालजी की ब्रजभाषा में खड़ी बोली का भी मिश्रण मिलता है। इनकी कविताओं में आन्तरिक प्रेरणा का कुछ अभाव-सा है, अतएव प्रवाह और मार्मिकता का निर्वाह कुशलता से नहीं हो पाया। इनकी भाषा में फ़ारसी और अरबी शब्दों का भी प्रयोग है। कविता के कुछ उदाहरण देखिये—

चाहिए ज़रूर इनसानियत मानस को
नौबत बजे पै फेर भेर बजनो कहा।
जानि औ अजानि कहा हिंदू औ मुसलमान
जाते कियो नेह ताते फेर मजनो कहा।
ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई
लाज हूँ गँवाई ताते फेर लजनो कहा।
या तो रंग काहू के न रँगिये सुजान प्यारे
रँगे तो रँगोई रहे फेर तजनो कहा॥

× × × ×

ग्रीषम की गजब धकी है धूम धाम धाम,
गरमी झुकी है जाम जाम अति तापिनी।
भींजे खस-बीजन झले हूं ना सुखात स्वेद,
गाल ना सुहात बात दावासी डरापिनी।
ग्वाल कवि कहैं कोरे कुम्भन ते कूपन ते,
लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी।
जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब,
पीवत हूँ पीवत मिटै न प्यास पापिनी॥

——०——

कवि प्रतापसाहि

पद्माकर के समान ही रीतिकालीन अन्तिम कवियों में इनका भी श्रेष्ठ स्थान माना जाता है। आचार्य और कवि दोनों दृष्टियों से प्रतापसाहि का व्यक्तित्व सराहनीय है। इन्होंने अपनी 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' में लक्षणा-व्यंजना की विस्तृत व्याख्या करके अपने पाण्डित्य का अच्छा परिचय दिया है। शृङ्गार और अनुप्रास दर्शाते समय प्रतापजी ने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। भाव और भाषा का संयत प्रवाह देखने के लिए प्रतापसाहि की कविता विशेष स्थान रखती है। सरस व्रजभाषा में इनकी कविता मार्मिक भावों से सजकर अति सुन्दर बन पड़ी है। शब्दों का चयन करने में भी प्रतापसाहि किसी ऊँचे कवि से कम नहीं कहे जा सकते। इनकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—

'व्यंग्यार्थ कौमुदी', 'काव्य-विलास', 'शृङ्गार-मंजरी', 'शृङ्गार-शिरोमणि', 'अलंकार-चिन्तामणि', 'काव्यविनोद' और 'जुगल नखशिख'।

कवि प्रतापसाहि बंदीजन थे और महाराज विक्रमसाहि के आश्रय में चरखारी राज्य में रहते थे। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

चंचला चपल चारु चमकत चारों ओर,
झूमि झूमि धुरवा धरनि परसत है।
सीतल समीर लगै दुखद बियोगिन,
सँयोगिन समाज सुख साज सरसत है।
कहै 'परताप' अति निबिड़ अँधेरी माँहि,
मारग चलन नाहिं नेकु दरसत है।
झुमड़ि झलानि चहुँ मोद ते उमड़ि आज,
धाराधर धारन अपार बरसत है॥

× × ×

सीख सिखाई न मानत है,
बरही बस संग सखीन के आवै ।
खेलत खेल नये जग में,
बिन काम बृथा कत जाम बितावै ।
छोड़िके साथ सहेलिन को,
रहि कै कहि कौन सवादहिं पावै ।
कौन परी यह बानि अरी,
नित नीर भरी गगरी ढरकावै ॥

रसिक गोविंद

ये वृन्दावन-वासी थे । निंबार्क संप्रदाय के एक महात्मा की परम्परा में ये होनहार शिष्य थे । 'रसिक गोविंदानन्दघन' नामक ग्रंथ इनकी प्रसिद्ध कृति है । इस विशाल ग्रंथ में रस, अलंकार, नायक-नायिका-भेद आदि अनेक रीति-विषयों की विवेचना स्पष्ट और विस्तृत रूप से की गई है । इस ग्रंथ के अतिरिक्त, 'रामायण सूचनिका', 'लछिमन चन्द्रिका', 'अष्टदेश भाषा', 'पिंगल', 'समय प्रबंध', 'कलजुग रासो' आदि इनके नौ ग्रंथों का पता चलता है ।

वृन्द कवि

ये जोधपुर राज्य के मेड़ता नामक स्थान के रहने वाले थे । इनकी पीढ़ी अभी तक विद्यमान् है । कृष्ण-गढ़-नरेश इनके शिष्य थे । कवि वृन्द की तीन पुस्तकें प्राप्त हैं । १—'वृन्द-सतसई', २—'शृङ्गार-शिक्षा' और ३—'भाव पंचाशिका' । प्रथम पुस्तक में नीति-सम्बन्धी सात सौ दोहे हैं । शेष पुस्तकें रस सम्बन्धी हैं । वृन्द कवि की ख्याति 'वृन्द-सतसई' की अद्भुत सूक्तियों के कारण ही अधिक हुई है । इनकी कुछ सूक्तियाँ देखिए—

ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घटि जाय ॥
जो जाको गुन जानही सो तेहिं आदर देत ।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी हेत ॥



कवि आलम

इनका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था, किन्तु एक मुसलमान तरुणी के प्रेम-पाश में फँसकर इन्होंने धर्म-परिवर्त्तन कर लिया । आलम की प्रेम-प्लावित कविताओं को देखते हुए 'घनानन्द' और 'रसखान' की रचनाएँ याद आ जाती हैं । अपनी प्रेमिका शेख के सुखद सम्पर्क से कवि आलम ने अनेक सुन्दर रचनाएँ कीं । शेख़ स्वयं एक सरसहृदया कवयित्री थीं । 'आलम केलि' कवि आलम का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । आलम और शेख़ दोनों ने अपनी प्रतिभा द्वारा व्रजभाषा की जो सेवा की उससे उनके पारस्परिक प्रेम का भी स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है । मधुर और सरस भाषा में प्रेम के सुखद भाव भरकर आलम ने राजकुमार मुअज़्ज़म के दरबार में यथेष्ट आदर पाया था । कवि की मृदुल रचनाओं के कुछ उदाहरण देखिए—

प्रेम रंग पगे जगमगे जागे जामिनी के,
जोवन की जोति जग जोर उमगत हैं ।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकि झुकि झँपि उघरत हैं ।
आलम सों नवल निकाई इन नैननि की,
पांखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं ।
चाहत हैं उड़िवे को देखत मयंक-मुख,
जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं ॥

× × ×

जा थल कीन्हें बिहार अनेकन,
ता थल कांकरी बैठि चुन्यौ करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन,
ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करैं।
आलम जौन से कुञ्जन में करी,
केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी-
अब कान कहानी सुन्यौ करैं।



गुरु गोविंदसिंह

ये बड़े वीर पुरुष थे। सिख धर्म के पूज्य और प्रवर्त्तक थे। पिछले अन्य गुरुओं की अपेक्षा गुरु गोविन्दसिंह अधिक विद्वान् और ज्ञानी थे। शास्त्र-ज्ञान-प्रचार करने के लिए इन्होंने बहुत प्रयत्न किए। गुरुजी के रचे अनेक ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं। 'सुनीति-प्रकाश', 'सर्वलोह-प्रकाश', 'प्रेम सुमार्ग', 'बुद्धि-सागर' और 'चंडीचरित्र' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। कवि ने अपनी जन्मभूमि की संस्कृति की रक्षा के लिए बड़ी ओजपूर्ण और सुन्दर भाषा में प्रभावोत्पादक भाव व्यक्त किये हैं। पूर्ण विकसित ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देकर इन्होंने अपनी रचनाएँ की हैं। एक उदाहरण देखिए—

गुरु सिष राखे गुरु गोपाल।
लीयो काढ़ि महा भव जलते अपनी नदर निहाल॥
बंधन काटि बिसारे औगुन अपना बिरद समारया।
होइ कृपाल मात पित न्याईं बारक ज्यों प्रतिपारया॥
जाके सिमरणि जमते छुटिये हलति-पलति सुख पाइये।
सांसि गेरासि जपहु जप रसना नीति नीति गुण गाइये॥
भगती प्रेम परम पद पाया साधु संग दुख नाटे।
छिजै न जाइ न किछु भव ब्यापै हरि धनु निरमल गाँठे॥

अन्तकाल प्रभु भये सहाई इत उत राखन हारे।
प्रान मीत हीत धन मेरे नानक सद बलिहारे॥

—o—

कविवर घनानन्द

व्रजभाषा-काव्य के विप्रलम्भ शृङ्गार का मनोहर सर्जन कर घनानन्द जी ने रीति-ग्रंथकार कवियों की पंक्ति में प्रमुख स्थान पाया है। व्रजभाषा के विकास-काल में प्रेम के वियोग-पक्ष का अनुपम चित्रण करने में घनानन्द को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। संवत् १७४६ के लगभग इनका जन्म-काल माना जाता है। दिल्लीश्वर मुहम्मदशाह की राज-सभा में ये मीर मुंशी थे। कहते हैं, सुजान नामक वेश्या से इनकी बहुत घनिष्ठता थी। एक वार उसके अविश्वास से इनको भारी ठेस पहुँची और तभी से ये विरक्त होकर वृन्दावन के निम्बार्क सम्प्रदाय में सम्मिलित होगए।

घनानन्दजी प्रसिद्ध गायक और कवि थे। इनकी अनेक रचनाओं में से 'सुजान-सागर', 'विरह-लीला', 'रसकेलिवल्ली', 'कोक-सार', 'कृपाकांड' आदि उपलब्ध हैं। इन्होंने अनेक स्फुट कवित्त और सवैये लिखे हैं। वृन्दावन वास-काल में कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी एक विशाल ग्रंथ इन्होंने रचा था।

कविवर घनानन्द का रचना-क्षेत्र प्रधानतः प्रेम का गूढ़ व्यापार ही रहा है। प्रेम की अन्तर्दशा का चित्रण करने में अन्य किसी कवि ने इतना कौशल नहीं दिखाया। कवि घनानन्द का भाषा पर अधिकार भी खूब है। सरस, शुद्ध, ओजमयी और मृदुल व्रजभाषा की कविताएँ लिखकर इन्होंने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। प्रयोग-वैचित्र्य के अनेक उदाहरण इनके काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। घनानन्द की रसीली कविता को पढ़कर पाठक मुग्ध हुए विना नहीं रहता। कवि के महान् प्रयत्न में महाकवियों के-से अनेक लक्षण मिले हैं। नादिरशाह के भयंकर आक्रमण ने एक दिन सम्राट् मुहम्मदशाह के मीर मुंशी घनानन्दजी जैसे प्रतिभा-सम्पन्न कवि के भी प्राणों को बलात् खींच लिया। इनकी कविता के कुछ सरस उदाहरण नीचे देखिए—

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारि,
तो सों और कौन भनैं ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े को समान, घन-
आनंद-निधान सुख-दान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अति मोहि प्यारे,
अब है अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन्ह पायँन की हा-हा ! नैकु आनि दै॥

× × × ×

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेको सयानप बाँक नहीं।
वहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ,
झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।
'घनआनंद' प्यारे सुजान सुनो,
इत एकते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

× × ×

तब तो दुरि दूरहि ते मुसकाय,
बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी,
रचाय कै नैनन में सरसे।
अब तो उर माहिं बसाय कै मारत
एजू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह निवाह न जानत हे तौ,
सनेह की धार में काहें धसे॥

———०———

महाराज विश्वनाथसिंह

ये रीवाँ के राजा थे। भक्ति और विद्या की ओर इनका विशेष अनुराग था। विद्वानों तथा कवियों को आश्रय देने में इन्हें बड़ा आनन्द आता था। विद्वानों के सम्पर्क से इनके हृदय पर भी काव्य-रचना के बीज अंकुरित हो उठे। महाराज विश्वनाथसिंह के पिता और पुत्र दोनों ही काव्य-प्रेमी और ग्रन्थ-रचना में सिद्धहस्त थे। धार्मिक ग्रंथों की रचना करके विश्वनाथसिंह ने अपने पिता का अनुकरण किया है। श्रीराम के भक्त होते हुए भी ये साहित्यिक उपासना की सगुण और निर्गुण दोनों शैलियों का आदर करते थे। महाराज विश्वनाथसिंह ने अनेक विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे। कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'राधावल्लभी भाष्य', 'सर्व सिद्धांत', 'आनन्द रघुनन्दन नाटक', 'कबीर बीजक की टीका', 'विनयपत्रिका की टीका', 'ध्यानमंजरी', 'परमतत्त्व', 'संगीत-रघुनन्दन' इत्यादि। इनकी सब रचनाओं में 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी-साहित्य का प्रथम नाटक इसी को माना जाता है। शुद्ध, परिमार्जित ब्रजभाषा में इनकी कविता का विकास हुआ है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

बाजि गज सोर रथ सुतुर कतार जेते,
प्यादे एंडवारे जे सबीह सरदार के।
कुंवर छबीले जे रसीले राजबंस वारे,
सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के।
केते जाति वारे, केते केते देस वारे,
जीत स्वानसिंह आदि सैल वारे जे सिकार के।
डंका की धकार ह्वै सवार सबै एक बार,
राज वार पार कार कोशलकुमार के॥

———o———

भक्त नागरीदास

व्रजभूमि के भक्त कवियों में कवि नागरीदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आरम्भ में ये कृष्णगढ़ राज्य के स्वामी थे। अपने खोये हुए राज्य पर पुनः अधिकार करने के लिए इन्हें अनेक संघर्षों में होकर गुज़रना पड़ा था। समस्त राज्य-वैभव त्याग, कृष्णगढ़-नरेश महाराज सावंतसिंह अंत में विरक्त होकर वृन्दावन चले गये, और वहाँ उन्होंने अपना नाम नागरीदास रखकर भक्तों में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। कृष्ण-गढ़ में इनके रचे हुए लगभग ७३ छोटे-मोटे ग्रंथ सुरक्षित हैं। कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम यह हैं—'सिंगार-सार', 'मनोरथ-मंजरी', 'पावस-पचीसी', 'रसिक-रत्नावली', 'भक्तिसार', 'वैराग्यवल्ली' इत्यादि। इनकी अधिकतर रचनाओं में भगवल्लीला ही वर्णित है। नागरीदासजी की वर्णन-शैली में एक प्रकार की नवीनता पाई जाती है। इनके अधिकांश ग्रंथ दस-दस बीस-बीस पद्यों में ही समाप्त हुए हैं। कवि ने सरस व्रजभाषा द्वारा सुन्दर भावों की व्यंजना की है। प्रेम-धारा से परिपूर्ण मोहक और मधुर भाव-तरंगों का सुन्दर समन्वय इनकी कविताओं में पाया जाता है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण देखिये—

भादौं की कारी अंध्यारी निसा,
झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै,
छकी रसरीति मलारहिं गावै।
जा समै मोहन के दृग दूरि तें,
आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारे,
दया करि दामिनि दीप दिखावै॥

× × × ×

पद—

जो मेरे तन होते दोय।
मैं काहू ते कछु नहिं कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय॥
एक जो तन हरि-बिमुखन के संग रहतो देस बिदेस।
बिविध भाँति के जग-दुख-सुख जहँ, नहीं भक्ति लवलेस॥
एक जो तन सतसंग-रंग रँगि रहतो अति सुख-पूर।
जनम सफल करि लेतो ब्रज बसि जहँ ब्रज-जीवन-मूर॥
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै हैं, आयु तौ छिन छिन छीजै।
'नागरिदास' एक तन तें अब कहौ काह करि लीजै॥

सूदन कवि

ये ब्रजवासी चौबे थे। भरतपुर राज्य में इन्हें आश्रय प्राप्त था। 'सुजान-चरित्र' नामक वीररसपूर्ण ग्रंथ रचकर इन्होंने हिंदी-साहित्य की गौरव-वृद्धि की है। सूदनजी ने इस ग्रंथ में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करके अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में ही इस ग्रंथ की रचना होती तो क्या ही अच्छा होता। इस प्रबन्ध-काव्य में ऐतिहासिक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन मिलता है। सूदन कवि ने अपने काव्य में अनुल्लेखनीय वस्तुओं की गिनती गिना कर अपनी बहुज्ञता का प्रदर्शन किया है। एक उदाहरण देखिए—

डोलतीं डरानी खतरानी बतरानी बे बे,
कुड़िए न बेखी अर्णी मी गुरु न पावा हाँ।
कित्थे जला पेऊँ, कित्थे उज्जले भिड़ाऊं असी,
तुसी को लै गीवा असी जिंदगी बचावा हाँ।
भट्टररा साहि हुआ चंदला वज़ीर बेखो,
एहा हाल कीता, वाह गुरुनूं मनावा हाँ।
जावाँ कित्थे जावाँ अम्मा बाबे केहा पावाँजली
एही गल्ल अक्खें लक्खों लक्खों गली जावाँ हाँ॥

बुद्धिसेन

जिला बाँदा के राजापुर गाँव में एक ब्राह्मण-कुल में इनका जन्म हुआ था। पन्ना राज्य के स्वामी ने इनको अपनी राज-सभा में आश्रय दिया। 'बोधा' नाम से भी इनको पुकारा जाता है। बोधाजी प्रेमी और बड़े रसिक व्यक्ति थे। सुभान नामक एक दरबारी वेश्या के प्रेम-जाल में ये भली प्रकार जकड़े हुए थे। महाराज पन्ना इस प्रेम-लीला को सहन न कर सके। परिणामस्वरूप इनको पन्ना राज्य से निर्वासित किया गया। इसी एकान्तवास में बोधाजी ने 'विरह-वारीश' नामक एक पुस्तक लिख डाली। कहते हैं बोधाजी ने पन्ना लौटकर जब महाराज को विरह के मार्मिक पद्य सुनाये तो अभिभूत होकर उन्होंने सुभान सुन्दरी को बोधाजी के हाथों सौंप दिया। इन्होंने 'इश्क़नामा' नाम की भी एक पुस्तक रची है। प्रेम-पीड़ा का प्रकटीकरण करने में बोधाजी ने अपनी सच्ची अनुभूति और रसिकता का ख़ूब सहारा लिया है। प्रेममार्गी कवि के नाते इनका साहित्य में अच्छा स्थान है। सरस मुहावरेदार व्रजभाषा के प्रवाह में इन्होंने चलती और चिरस्थायी दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। एक उदाहरण देखिये —

लोक की लाज औ सोक प्रलोक को
वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव को गेह को देह को नातौ
सनेह में हाँ तो करे पुनि सोऊ।
'बोधा' सुनीति निबाह करै
धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत
तो प्रीति के पेंड़े परै जनि कोऊ।

—०—

चन्द्रशेखर

जिला फ़तेहपुर के एक ब्राह्मण वंश में इनका जन्म हुआ था। काव्य-प्रतिभा से युक्त होने के कारण दरभंगा, जोधपुर और पटियाला आदि राज्यों में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा हुई। महाराजाओं के आश्रय में रहकर इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। 'हम्मीर-हठ', 'विवेक-विलास', 'रसिक विनोद', 'माधवी-वसंत' और 'नख-शिख' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। हिन्दी-साहित्य के रीतिकालीन इतिहास में चन्द्रशेखरजी अपनी शृङ्गार-रस सम्बन्धी रचनाओं के कारण इतने प्रसिद्ध नहीं हुए जितने 'हम्मीर-हठ' की वीररसपूर्ण रचना के कारण। इस ग्रन्थ में उत्साह और शौर्य का अद्‌भुत वर्णन है। शुद्ध साहित्यिक वृजभाषा की अलंकृत शब्दावलियों में रसानुकूल भाव भर कर चन्द्रशेखरजी ने अपने ग्रन्थों की श्रेष्ठता का सुन्दर परिचय दिया है। इनकी कविता का एक नमूना देखिए—

भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागे गज बाजि रथ पथ न सँभारैं, परैं,
गोलन पै गोल, सूर सहमि सकाय कै॥
भाग्यौ सुलतान जान बचत न जानि बेगि,
बलित बितुण्ड पै बिरति बिलखाय कै।
जैसे लगे जंगल में ग्रीषम की आगि,
चलैं भागि मृग महिष बराह बिललाय कै॥

कविवर दीनदयालुगिरि

इनका जन्म संवत् १८५९ में काशी में हुआ था। बाल्यकाल से ही इनका लालन-पालन संतों के सम्पर्क में हुआ। आगे चलकर त्यागी, काव्य-प्रेमी संन्यासी के रूप में इनका व्यक्तित्व विकसित होता गया। पाँच प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना ने इनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा-वृद्धि में भरपूर योग दिया।

'अनुराग बाग', 'अन्योक्ति-माला', 'दृष्टांत तरङ्गिणी', 'वैराग्य-दिनेश' और 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' इनके ग्रन्थों के नाम हैं। दीनदयालुजी अपनी रचनाओं द्वारा विशेषतः सदाचार और ज्ञान-वैराग्य की शिक्षा देने में ही व्यस्त रहे। संस्कृत के पंडित होते हुए भी इन्होंने व्रजभाषा में ही काव्य-रचना की। गिरिजी का भाषा-प्रवाह बड़ा सुन्दर है। इनके उदार उर से निकले हुए स्पष्ट भावों में यथेष्ट प्रभाव है। अन्योक्तिकारों में कवि दीनदयालजी का प्रमुख स्थान है। इनकी कविता के दो उदाहरण दिये जाते हैं—

चारों दिसि सूझै नहीं, यह नद धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु, खेवनहार गँवार।
खेवनहार गँवार ताहि पै है मतवारो।
लिये भँवर में जाय जहाँ जलजन्तु-अखारो।
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुवीर नाम धरि धीर उचारो॥

× × × ×

(क) केहरि को अभिषेक कब कीन्हों विप्रसमाज।
निज भुजबल के तेज ते बिपिन भयो मृगराज॥

(ख) नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चारि की बहुरि कटीली डार॥

कवि गिरिधरदास

इनका वास्तविक नाम गोपालचन्द्र था। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। गिरधरदासजी ने अपने अविरल परिश्रम द्वारा संस्कृत और हिन्दी-साहित्य का प्रगाढ़ अध्ययन कर अतुल ज्ञानोपार्जन किया। इनका पुस्तक-संग्रहालय 'सरस्वती भवन' नाम से प्रसिद्ध है। बाबू हरिश्चन्द्र को अपने पिता की विद्वत्ता पर बड़ा गर्व था। उनके रचे हुए चालीस ग्रंथों का उल्लेख करते हुए आपने लिखा है—

जिन पितु गिरधरदास ने रचे ग्रंथ चालीस ।
ता सुत श्री हरिचन्द को को न नवावै सीस ॥

गिरधरदासजी की रचनाएँ अधिकतर नीति और सदाचार सम्बन्धी हैं। 'जरासिन्ध महाकाव्य' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में अनुप्रास और यमक की छटा विशेष रूप से देखने लायक़ है। बृजभाषा के साधारण प्रवाह के साथ इन्होंने अधिकतर युक्तिमयी और भावमयी रचनाएँ की हैं। इनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नर तन देवन को दुरलभ, सो पाया अब रोना क्या रे।
ठाकुर से कर नेह आपना, इन्द्रिन के सुख होना क्या रे।
जब वैराग्य ज्ञान उर आया, तब चाँदी औ सोना क्या रे।
दारा सुबन सदन में पड़ि कै, भार सबों का ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया, काँच भाव में खोना क्या रे।
दाताजी मुख मांगा देवे, तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
'गिरधरदास' उदर पूरे पर, मीठा और सलोना क्या रे।

———o———

द्विजदेवजी

इनका मुख्य नाम महाराजा मानसिंह था। ये अयोध्या के नरेश थे। भाषा की स्वच्छता और काव्य की सरसता के कारण इस काल के कवियों में इन्हें अच्छा स्थान प्राप्त हुआ। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। वे हैं— 'शृङ्गार बत्तीसी' और 'शृङ्गार लतिका'। बृजभाषा के शृङ्गारी ग्रन्थकारों में द्विजदेवजी का स्थान बहुत ऊंचा है। इनके ऋतुवर्णनों में काव्य-सुलभ सरसता और हृदय की प्रफुल्ल भावना का स्पष्ट दर्शन मिलता है। उदाहरणस्वरूप इनकी एक कविता देखिए—

बोलि हारे कोकिल, बुलाय हारे केकीगन,
सिखै हारीं सखी सब जुगुति नई नई।

'द्विजदेव' की सौं लाज-बैरिन कुसंग इन,
अंगन हू आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुंजनि तें पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन समै में दुखदाइनि भई री लाज,
चलन समै में चल पलन दगा दई॥

———०———

आधुनिक हिन्दी-साहित्य

पद्य

रईसों, राजाओं और महाराजाओं का आश्रय प्राप्त कर रीति-काल की जो शृङ्गारी कविता स्वच्छन्दता के साथ विहार कर रही थी, उसका 'पद्माकर' के बाद कोई महत्त्वपूर्ण संरक्षक नहीं रहा। शृङ्गार-काल की इस रस और अलंकार युक्त अश्लील नखशिख की आँधी में कविगण लोकहित की कामना से रिक्त हृदय लेकर सुखमय आश्रय में जीवन व्यतीत करने लगे थे। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में जिन अभावों की पूर्त्ति के लिए ठोस विचार-प्रसार होना आवश्यक था, वह न हुआ। किन्तु सौभाग्य से हिन्दी-साहित्य की प्रगति उस पुण्य पथ की ओर उन्मुख हो रही थी, जिस पर विलास में पले हुए अनुत्तरदायी रसिक कवियों को क़दम बढ़ाना वर्जित था। जिन दिनों यह शृङ्गार-परम्परा अपने अवसान की ओर अग्रसर हो रही थी, भारत में अँगरेज़ों का पूर्ण आधिपत्य हो चुका था। अपनी सभ्यता का प्रचार करने के लिए इन नए शासकों ने अँगरेज़ी शिक्षा का प्रचार आरम्भ कर दिया। विदेशियों के सम्पन्न साहित्य ने भारत के शिक्षित-समुदाय में एक नई जागृति-भावना का संचार किया। दासता की बेड़ियों में कसे हुए भारतीय अपनी हीनता की भावना का अनुभव करने लगे। साहित्य में क्रांति की एक ऐसी नई लहर उठी जो देश-प्रेम का अविरल नाद करती हुई आज तक सबल गति से हिलोरें ले रही है।

आधुनिक युग में विदेशी शासकों के सम्पर्क से जिन दूरदर्शी लोक-चिन्तक व्यक्तियों की आँखें खुल गईं, उन्होंने देश में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों के दलदल और दुर्गन्ध युक्त वातावरण में संशोधन-कार्य का व्रत ले लिया। समाज की दुर्व्यवस्था के प्रति साहित्य की सदा सहानुभूति रही है, अतः नए कवियों ने विदेशी शासकों से सहयोग रखते हुए देश-प्रेम

और भाषा-प्रेम की पुकार इस कोने से उस कोने तक पहुँचाई। महर्षि दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा राममोहनराय आदि ऐसे ही महान् समाज-सेवक हुए जिन्होंने भारतीय दासता के मर्म को अनुभव किया। समाज-सुधार के क्षेत्र में आर्यसमाज के आन्दोलन का श्रीगणेश ब्रह्मसमाज की स्थापना, और साहित्यिक क्षेत्र में 'भारत-दुर्दशा' नाटक की रचना ने ऐसी उथल-पुथल की कि मोहान्ध जनता ने धीरे-धीरे अपनी अलसायी आँखें खोलकर अपने चारों ओर अंधकार का अनुभव किया।

वास्तव में देखा जाय तो हमारे इन नए साहित्यिकों का प्रधान उद्देश्य अकर्मण्यता और दासता के दलदल में फँसी जनता का सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास कर उसे स्वदेशाभिमान का ज्ञान कराना था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश-भक्ति, समाज-सुधार और हिन्दी भाषा के प्रचार का जो नेतृत्व किया वह उनके चिरस्मरणीय आदर्श का द्योतक है। श्रीधर पाठक और उनकी श्रेणी के कवियों ने अँगरेजी-काव्य से प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी को नई सामग्री भेंट की। भारतेन्दु बाबू ने अनेक नवीन और मौलिक विषयों पर रचना कर अन्य कवियों को साहित्य के नए युग में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित किया। मुद्रण-यंत्रों के प्रयोग ने साहित्य की इस नई काव्यधारा को और भी वेग से प्रवाहित किया।

प्रत्येक परिस्थिति अपनी अवधि पर परिवर्तित होती रहती है। भारत के विकृत वातावरण को देखकर—दासता-जन्य पतितावस्था को निरखकर, आधुनिक हिन्दी-कविता के प्रारंभिक कवियों का भावुक हृदय सहृदयता से भर आया और नवीन विचारधारा से साहित्यिक वातावरण सजग होने लगा। उधर दिल्ली से खड़ी बोली का स्रोत बह चला। मुसलमान शासकों के आधिपत्य में दिल्ली की स्थानीय भाषा ही खड़ी बोली कहाती थी। अरबी और फ़ारसी शब्दों के सम्मिश्रण ने इसका स्वरूप और भी परिवर्त्तित कर दिया। इसी खड़ी बोली का उर्दू रूप अरबी और फ़ारसी-साहित्य से दिन-प्रतिदिन सम्पन्न होता गया। खड़ी बोली उत्तरी भारत में अधिकाधिक प्रचार पाती रही, यहाँ तक कि प्रान्त की प्रमुख भाषा यही ठहराई गई।

अँगरेज़ी भाषा का प्रचार भी पूर्व से प्रारम्भ होता चला आ रहा था। नवीन शिक्षा-प्रणाली का भाषा-माध्यम अँगरेज़ी को ही बनना था। परिणामतः हिन्दुओं ने उर्दू और अँगरेज़ी दोनों के साहित्यों का गंभीर अध्ययन आरम्भ कर दिया। इस प्रकार हिन्दी के साहित्यिकों ने नई-नई विचारधाराएँ एकत्र करने में विदेशी भाषाओं को भी अति उपयोगी समझा।

अभी तक हिन्दी-कविता बृजभाषा में ही विकसित हो रही थी। खड़ी बोली का प्रयोग केवल गद्य में किया जाता था। किन्तु रीतिकालीन व्रजभाषा की कविता और आधुनिक काल की व्रजभाषा-कविता में महान् अन्तर था। इस काल की कविता से शृङ्गार की अश्लील पद्धति सदा के लिए छुट्टी पा चुकी थी। उर्दू-साहित्य के सम्पर्क से हिन्दी-कविता में अनुभूतिजन्य गंभीर भावों के चित्रण की ओर कवियों की विशेष रूप से प्रवृत्ति हुई। उन पर अँगरेज़ी लेखकों का प्रभाव भी पड़े विना न रह सका। उनकी पुस्तकों से उठती हुई सहानुभूति की सुगन्ध से मतवाले होकर कुछ कवि तो देश-भक्ति और राज-भक्ति में अन्तर खोजना ही भूल बैठे। इस सम्बन्ध की एक उक्ति है—

'अंगरेज़ राज-सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥'

अँगरेज़ी-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव हमारे साहित्य पर और पड़ा। अब से पूर्व बृजभाषा और अवधी आदि भाषाओं की कविताओं में केवल उद्दीपन के रूप में ही कुछ प्राकृतिक उपादानों के नाममात्र आजाते थे। किन्तु अब अँगरेज़ी के विख्यात काव्य-ग्रंथों के अध्ययन से हिन्दी-कविता में भी प्रकृति का स्वच्छन्द चित्रण करने की परिपाटी प्रचलित हो गई। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा रचित प्रकृति-चित्रण के अनेक अलंकारयुक्त उदाहरण प्राप्त होते हैं। ठा० जगमोहनसिंह ने भी इस ओर काव्य-रचना की रुचि दिखाई थी।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के आदि काल में, जहाँ शृङ्गार रस की कविता-पद्धति में सुधार हुए, देश-प्रेम, समाज-सुधार, प्रकृति-चित्रण और राज्य-प्रशस्ति आदि विषयों पर सुन्दर रचनाएँ हुईं, वहाँ एक सराहनीय कार्य यह भी हुआ कि व्रजभाषा को सरल, शुद्ध और मधुर शब्दों के भाण्डार से सजीव और सर्वप्रिय बनाया गया। प्रचलित सरल शब्दों का आधिक्य पाकर सब लोग इसके नए रूप की ओर आकर्षित हुए।

साथ ही उर्दू भाषा के सम्पर्क से मुहावरों का प्रयोग अपनाकर वृज-भाषा ने सम्पूर्ण हिंदी-साहित्य में अद्वितीय स्वरूप धारण कर लिया। किंतु वृजभाषा के भाग्य पर आगे चलकर भयानक वज्रपात होगा यह कौन जानता था। खड़ी बोली के प्रचार का आन्दोलन वृजभाषा की उत्कृष्ट विकासावस्था पर घातक सिद्ध हुआ। परिणामस्वरूप बेचारी वृजभाषा काव्य-क्षेत्र से पृथक् करदी गई और खड़ी बोली की अभिनव कविता ने आसन जमा लिया। आगे के पृष्ठों में पाठकगण स्वयं परख लेंगे कि वृज-भाषा के कवियों की भाषा में अधिक लावण्य और मिठास है अथवा खड़ी बोली की काव्य-धारा में।

वृजभाषा के आधुनिक कालीन कुछ प्रमुख कवियों का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

सेवक

संवत् १८७२ में इनका जन्म हुआ था। ये असनी-निवासी कवि ठाकुर के वंशज थे। काशी के धनाढ्य व्यक्ति बाबू हरिशङ्कर के आश्रय में इन्होंने 'वाग्विलास' नामक नायिकाभेद सम्बन्धी एक विशाल ग्रन्थ रचा था। काशीराज इनकी काव्य रचनाओं पर बड़े मुग्ध थे। नखशिखसम्बन्धी कुछ स्फुट छन्दों में भी इन्होंने रचना की। रीतिकालीन परंपरा की बहुत कुछ निखरी हुई झलक इनकी स्वच्छ वृजभाषा में मिलती है। अधिकारपूर्ण भाषा और सुगठित वर्णन-शैली में इन्होंने अपने कवित्व को विकसित करने का खूब प्रयत्न किया। अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में सेवकजी द्वारा लिखा हुआ एक कवित्त देखिए—

सेइ रहौं कासी हरिसंकर कृपा सों खासी
जगत में जाहिर जो सब सुख सोतु है।
फेरि कछु रावरे सों चाह मिलिबे की भई
अधिक सों अधिक फलनबारो गोतु है।
महाराज ईश्वरीनरायनप्रसाद यह
संका भई सेवकै सो करत उदोतु है।
रावरी पुरी सों मिलि होत बिस्वनाथ नाथ
आपके मिलैते धौं कहाँ को नाथ होतु है।

रीवाँ-नरेश

संवत् १८८० में इनका जन्म हुआ था। रीवाँ-नरेश का पूरा नाम महाराज रघुराजसिंह था। राजा साहब स्वयं कविताएँ लिखते थे और अन्य प्रतिभाशाली काव्य-प्रेमियों को प्रोत्साहन तथा आश्रय देते थे। भक्ति और शृङ्गार सम्बन्धी अनेक ग्रंथों की रचनाएँ इन्होंने कीं। 'रामस्वयंवर', 'रुक्मिणी-परिणय', 'आनन्दाम्बुनिधि', 'रामाष्टयाम' आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ गिने जाते हैं। मृगया, राजकीय वैभव और विविध वस्तु-गणना के साथ इनकी वर्णन-शैली बहुत अच्छी मानी जाती है। स्वस्थ और स्वच्छ भाषा में इनकी कविता ने खूब सरसता प्रवाहित की। एक उदाहरण देखिए—

डरत हुतो जो भौन प्रेत परिछाहीं जानि,
ताड़का भयंकरी को कौन बिधि मारयो है।
जात जो सहमि सुनि राक्षस कहानी कान,
मुनि मख राखि सो निसाचर सँहारयो है।
फटकि फरस खेले कबहूँ न नारि कढ़ी,
गौतम की गेहनी सो सिला ते निकारयो है।
भनै 'रघुराज' साँचि भाखौं तिरहित दूत,
भूतपति धनु मेरो पूत तोरि डारयो है॥

सरदार कवि

एक सिद्धहस्त टीकाकार और साहित्य-मर्मज्ञ कवि के नाते हिंदी-साहित्य में इनका अच्छा स्थान है। काशी-नरेश की राजसभा में इन्हें आश्रय प्राप्त था। सूर, विहारी और केशव की रचनाओं पर इनकी प्रसिद्ध टीकाएँ मिलती हैं। प्रवाहपूर्ण भाषा में अपनी कवित्व-शक्ति व्यक्त करने में ये बड़े कुशल थे। कवि सरदार के रचे हुए ग्रन्थ ये हैं—'साहित्य-सरसी', 'वाग्विलास', 'साहित्य-सुधाकर', 'रामलीला-प्रकाश', 'हनुमत-भूषण', 'तुलसी-भूषण', 'शृङ्गार-संग्रह' और 'राम-रत्नाकर'। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

सरस सुयस ससि उदित होहि दिन रैन प्रकासित।
मारतण्ड उद्दण्ड तेज ब्रह्मण्ड विलासित।
पंचदेव परपूर प्रिया दृग कोर निहारै।
दुश्मन दावादार पांय पर सीस सुधारै।
सरदार स्वच्छ अवलच्छ ग्रह अच्छ अच्छ क्रीडा करो।
पुत्रन समेत ईश्वर नृपति जो सीस विधु आसिस धरो॥

रामसनेहीजी

इनका पूरा नाम बाबा रघुनाथदास रामसनेही था। ये एकान्तवासी साधु थे। अपने जीवन की पवित्रता और भक्ति-काव्य-प्रियता के कारण इनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। अनेक प्राचीन ग्रंथों के अध्ययनोपरान्त एक भक्ति-सम्बन्धी काव्य की इन्होंने भी रचना की। 'विश्राम-सागर' इस विशाल ग्रंथ का नाम है। पुराणों की बहुत-सी कथाएँ इस ग्रन्थ में संक्षिप्त रूप में मिलती हैं। दोहा-चौपाइयों में इन्होंने अपनी भक्ति प्रकट की है। भक्तों में इस काव्य की बहुत प्रतिष्ठा है। इनकी कविता की बानगी देखिए—

नंद संग जे गोप हैं, लूटि लेउ तुम झारि।
उग्रसेन वसुदेव को, अबहीं डारो मारि॥

सुनत कृष्ण ढिंग पहुँचे जाई। पकरि शिखा महि दीन गिराई॥
काढ़े प्राण घसीट घसीटी। डारे सकल निसाचर पीटी॥
लखि सुर हर्षि सुमन बरषाये। कढ़ि लावत यमुना तट ल्याये॥
तहँ विस्राम कीन मन भावा। सोइ विस्राम घाट कहावा॥

ललितकिशोरी

इनका मूल निवास-स्थान लखनऊ था। विरक्त होने के पश्चात् इन्होंने अपना नाम साह कुन्दनलाल से ललितकिशोरी रख लिया। ये वैश्य थे। जो कुछ भी पूँजी इन्होंने एकत्र की थी उसे वृन्दावन आकर एक विशाल मन्दिर-निर्माण में व्यय कर दिया। साहजी का प्रसिद्ध मन्दिर आज भी सजधज के साथ खड़ा है। भक्ति की कविताओं में इनका चित्त अधिक रमा हुआ था। प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में कृष्ण और गोपिकाओं का रास-विलास ही इन्होंने विशेष रूप से चित्रित किया है। पद और ग़ज़लें लिखने की ओर भी इनकी रुचि थी। भाषा सुन्दर लिखते थे। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

जमुना पुलिन कुञ्ज गहवर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै, मधुरे मधुरे गुंज सुनाऊँ॥
कूकुर ह्वै बन बीथिन डोलौं, बचे सीथ सन्तन के पाऊँ।
'ललितकिसोरी' आस यही मम, ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

राजा लक्ष्मणसिंह

ब्रजभाषा की मधुर कविता करने के नाते जितनी ख्याति इन्हें पद्यक्षेत्र में प्राप्त हुई, उससे कहीं अधिक गद्य साहित्य के प्रवर्त्तक के नाते हिंदी में इनका मान है। महाकवि कालिदास-रचित शकुन्तला, मेघदूत और रघुवंश के सफल अनुवादक के नाते इन्होंने हिंदी को नई देन दी। शकुन्तला के दूसरे

संस्करण में इन्होंने श्लोकों का पद्यानुवाद करके अपनी कला का कलित कौशल प्रदर्शित किया है। मेघदूत का अनुवाद भी अपनी मनोहरता के लिए खूब प्रसिद्ध है। इनकी ब्रजभाषा की कविता का एक माधुर्यपूर्ण उदाहरण देखिए—

कहुँ दाभन तें मुख जाको छिद्यौ जब तू दुहिता लखि पावति ही।
अपने करते तिन घावन पै तुहि तेल हिंगोट लगावति ही।
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठिहि मूठि खवावति ही।
मृग छौना तेरे पग कैसे तजै जाहि पूत सो लाड़ लड़ावति ही॥

—०—

लछिराम

इनको ब्रह्मभट्ट भी कहते हैं। अनेक राजा-महाराजाओं के यहाँ आश्रय पाते हुए लगभग सबकी गुण-गाथा-सम्बन्धी काव्य-रचना इन्होंने की। जिला बस्ती में इनका जन्म हुआ था। आरम्भ में कुछ काल अयोध्या-नरेश—प्रसिद्ध कवि द्विजदेव—के दरबार में इन्होंने आश्रय पाया। इसके पश्चात् बस्ती, दरभंगा पुर्निया आदि विविध राज्यों में सम्मान और सम्पत्ति पाते हुए इन्होंने अनेक ग्रन्थ रचे। 'मानसिंहाष्टक', 'प्रताप-रत्नाकर', 'प्रेम-रत्नाकर', 'लक्ष्मीश्वर-रत्नाकर', 'रावणेश्वर-कल्पतरु', 'कमलानन्द-कल्पतरु' आदि ऐसे ग्रंथ हैं जो किसी न किसी आश्रयदाता की प्रशंसा में ही निर्मित हुए हैं। लछिरामजी रस-सिद्ध कवि थे। काव्यानुकूल शब्द-निर्माण करने में भी इन्हें कुशलता प्राप्त थी। आधुनिक कालीन ब्रजभाषा के प्रारंभिक कवियों में इनका उत्तम स्थान है। इनकी कविता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

सहज सिकार में सवांर्यौ चतुरंगिनी ज्यों,
जगमगै जोर जगनीन की जमाति है।
हरषि असीसैं देत भूतन की माला घोर,
पीसैं दांत मासु हेत प्रेतन की पांति है।

हौदा में सवार रावणेश्वरप्रसादसिंह,
कर बर कातिल कृपान लहराति है।
चन्द्रवंस कलस कहर कमनैत बीर,
कौन पै करोगे आज कतल की राति है॥

गोविंद गिल्लाभाई

बृजभाषा के भक्ति-काव्यों का प्रचार एक सीमित क्षेत्र में ही नहीं रहा। जहाँ भी वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, वहीं सूर आदि कवियों के ग्रन्थ विद्यमान थे। गुजरात में भी भक्ति-काव्यों का प्रचार प्रचुर मात्रा में रहा। गोविंद गिल्लाभाई को बृजभाषा के बहुत-से काव्य ग्रंथ प्राप्त थे, अतः इन्हें भी काव्य-ग्रंथ लिखने की प्रेरणा मिली। इनके रचे हुए 'नीति-विनोद', 'शृंगार-सरोजिनी', 'षड्ऋतु', 'समस्यापूर्ति-प्रदीप', 'पावस-पयोनिधि' आदि कई ग्रन्थ मिलते हैं। समस्यापूर्त्ति करने में इन्हें बड़ी दक्षता प्राप्त थी। बृजभाषा में इनकी कविता उच्चकोटि की होती थी। एक उदाहरण लीजिए—

बारिद के बुंद मंद मंद बरसत अरु,
मंद मंद बोलत मयूर मन भावनो।
चंचला चमक चहुँ ओर लसै मंद मंद,
मंद मंद मारुत सुहात सुख छावनो।
मंद मंद झूलत हिंडोरैं नर नारि सबै,
मंद मंद पपिहा पुकारै पिय आवनो।
'गोविंद' अनेक ऐसे कौतुक उपावन को,
आयो मन भावन या सावन सुहावनो॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आधुनिक साहित्य के जन्मदाता श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म संवत्-१९०७ में हुआ था। ये काशी निवासी एक शिक्षित और सम्पन्न वैश्य

वंश में से थे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आधुनिक प्रगति के प्रथम प्रकाश-स्तम्भ के रूप में ये सदा आलोकित रहेंगे। भारतेन्दुजी ने दूषित गद्य और पद्य दोनों को माँजकर स्वच्छ किया। इस स्वच्छता ने जनता को आकर्षित किया और भाषा के नए रूप ने नए साहित्य को जन्म दिया। नाटक का अभाव हिन्दी में अभी तक है। भारतेन्दुजी ने नाटक-रचना की। सुन्दर भावपूर्ण, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और यौवन के उभार की अनेक कविताएँ रचकर हरिश्चन्द्रजी कवि के उत्तरदायित्व से साहित्य की काव्य-वृद्धि के लिए चैतन्य हुए। गद्य के नए पौधे लगाकर उन्हें सींचा। देशभक्ति के उष्ण उत्साह को भीतर ही भीतर अनुभव करते हुए भारतेन्दुजी ने समाज में शिक्षा-प्रचार की सबल लहर प्रवाहित की। कवि-समाज-संयोजक और पत्रकार के नाते भारतेन्दुजी ने अनेक अप्रकाशित कवियों को प्रकाश में लाकर समाज को दिखाया। व्याख्या-शक्ति को प्रखर कर, हरिश्चन्द्रजी ने सारहीन रूढ़ियों के बहिष्कार का सिद्ध मन्त्र बताया।

कवि हरिश्चन्द्र एक कवि पिता के पुत्र थे। विरासत और कवि-समाज-सम्पर्क के योग से इन्होंने कविता की रचना-शक्ति ग्रहण की। बारह वर्ष की अल्प आयु से ही इन्होंने कविताएँ लिखीं। समस्यापूर्ति की प्रवीणता के कारण इन्हें समाज ने आदर से देखा। आशु कवि कहकर इनकी वेगमयी पद्य-रचना-शक्ति की प्रशंसा की गई। घोर शृङ्गार के रति-प्रधान व्यूह से खींचकर साहित्य की गति को समाज-सुधार, देश प्रेम और प्रकृति-चित्रण के अभिमुख करने का इन्होंने सर्वप्रथम प्रबल प्रयत्न किया। व्रजभाषा के अप्रचलित शब्दों को निकाल सरल-सुबोध भाषा में हरिश्चन्द्रजी ने बहुत कविताएँ लिखीं, संस्कृत श्लोकों के हिन्दी पद्यानुवाद किये। गद्य में जो कुछ भी सेवा उन्होंने की वह दूसरे प्रकरण में अंकित की जायगी। यहाँ कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविताओं के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

समाज की त्रुटियों को निरखकर कवि ने इस प्रकार उसकी आलोचना की है—

रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए।
सैव साक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयौ।
रोकि बिलायत गमन कूपमंडूक बनायौ।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायौ।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किये हिंदुन घबराई।
अपरस सोलहा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय।
किये तीन तेरह सबै चौका चौका लाय॥

भगवान् के प्रति इनकी प्रेममयी भक्ति का एक सरस पद पढ़िये—

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूँघट में न खगे॥
कितनो करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे।
निडर भये उघरे से डोलत मोहन रंग रँगे॥

यौवन के विकास में लिखी गई शृङ्गार-भावना की विचारधाराओं से ओत-प्रोत कवि की एक रचना देखिए—

बिछुरे पियके जग सूनो भयो,
अब का करिये कहि पेखिये का।
सुख छाँड़ि के संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिये का।
'हरिचन्दजू' हीरन को ब्यवहार कै,
काँचन को लै परेखिये का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सों अब देखिये का॥

दासता की बेड़ियों में बद्ध भारत की असहाय-आर्त दशा पर कवि करुणानिधान से पुकार करता है—

कहाँ करुणानिधि केशव सोये ?
जागत नेंक न यद्यपि बहु बिधि भारतवासी रोये ॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराये ।
इह के पशु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाये ॥
इक दिन दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई ।
अपनी संपति जानि इनहिं तुम रह्यो तुरंतहि धाई ॥
प्रलयकाल सम जौन सुदर्शन असुर-प्रान संहारी ।
ताकी धार भई अब कुण्ठित हमरी बेर मुरारी ॥

शृङ्गार-रस के कवित्त और सवैयों की सरस रचना करने में भारतेन्दुजी की लेखनी को वरदान प्राप्त था। उनकी प्रिय भावयुक्त ललित शब्दावली हृदय को स्पर्श करके ही रहती है। 'प्रिय प्यारे तिहारे निहारे बिना दुखिया अँखियाँ नहिं मानति हैं' में कितनी मधुर ध्वनि है, कितनी सरल और स्नेहमई भावना है। यही नहीं, कवि की अनेक अमूल्य रचनाएँ 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-फुलवारी', 'प्रेम-मालिका' और 'प्रेम-प्रलाप' आदि प्रेमसम्बन्धी संग्रहों में पाठक का मन मोह लेंगी। अन्त में संवत् १९४१ में पैंतीस वर्ष की अल्प आयु ही में महान् कार्य करते-करते कवि हरिश्चन्द्र ने शरीर त्याग दिया।

पं० अम्बिकादत्त व्यास

इनका जन्म संवत् १९१५ में हुआ था। काशी के प्रसिद्ध 'कवि-समाज' के प्रमुख सहयोगियों में इनका अच्छा स्थान था। संस्कृत-साहित्य के ज्ञाता होने के साथ-साथ समस्या-पूर्ति करने और शीघ्रातिशीघ्र कविता रचने में इनका मस्तिष्क खूब दक्ष था। बा० रामकृष्ण शर्मा 'बलवीरजी' की कवि-मंडली ने 'समस्यापूर्ति-प्रकाश' का प्रकाशन किया जिसमें व्यासजी, पण्डित विजयानन्दजी और बलवीरजी आदि तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों की समस्यापूर्तियाँ छपती थीं। व्यासजी कविता-पाठ बड़े मनोहर ढंग से करते थे। 'बिहारी-बिहार' लिखकर इन्होंने बिहारी के चमत्कारी भावों को अपनी कुण्डलियों में स्पष्ट किया है। 'मनो-मंजरी' में इनकी सुन्दर कविताएँ संगृहीत

हैं। 'कंसबध'—खड़ी बोली का काव्य—इन्हीं की रचना है। इनकी सरस रचनाओं में से काशी का वर्णन देखिए—

मधुर दुंदुभी संग मधुर बाजत सहनाई।
मधुर मधुर ही राग मधुरता हिय बगराई।
अँखियन में भरि जात मधुर वह रूप लुनाई।
धन्य मधुरता जहाँ सम्भु हू गये लुभाई।
देवधुनी हू कासी ढिंग लहि आनँद सोवति।
परम प्रेम जनु पागि कासिका के पग धोवति।
मुक्ति लता के अंकुर-से सींचति सो धावति।
लहरन सों लहराइ प्रेम अतिसै सरसावति॥

———०———

चौबे नवनीतलाल

इनका जन्म संवत् १६१५ में हुआ था। व्रजस्थली में इनका निवास-स्थान था। भक्ति सम्बन्धी सरस काव्य-रचना करने के कारण इनका विशेष आदर है। कवि 'रत्नाकरजी' ने इनको अपना काव्य-गुरु माना है। श्री नवनीतलालजी ने 'कुब्जा-पचीसी' लिखकर अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। इनकी प्रवाहमयी भाषा का एक कवित्त पढ़िये—

प्रेम प्रन प्राग बैठि त्रिपथ त्रिवैनी न्हाय,
पाय पद पूरन प्रवीनता हिये भरी।
'नवनीत' साधे सब साधन सनेह जोग,
जुगत जमाय प्रान ध्यान धारना धरी।
आयो बचि बिकल बियोग की तपन तापि,
नाम जपि तेरो तातें बिपत सबै हरी;
रसिक भिखारी एक द्वार पै ठड़्यौ है आइ,
रूप-रस-माधुरी की माँगत मधूकरी॥

———०———

राधाकृष्णदास

इनका जन्म संवत् १६२२ में हुआ था। ये काशी-निवासी बाबू हरिश्चन्द्र के सम्बन्धी थे। पद्य, गद्य और नाटक तीनों क्षेत्रों में इन्होंने रचनाएँ कीं। भक्ति और शृङ्गार-सम्बन्धी विषयों पर विशेष रूप से इनका अनुराग था। भारतेन्दुजी के नव साहित्य-निर्माण-सम्बन्धी बृहत् उद्देश्य में इन्होंने पर्य्याप्त सहयोग दिया। 'राधाकृष्ण-ग्रंथावली' में इनकी रचनाएँ प्रकाशित की गई हैं। इनकी एक कविता देखिए—

मोहन की यह मोहिनी मूरति,
जीय सों भूलति नाहिं भुलाये।
छोरन चाहत नेह को नातो,
कोऊ बिधि छूटत नाहिं छुराये।
'दासजू' छोरि कै प्यारे हहा-
हमें, और के रूप पै जाइ लुभाये।
भूलि सकै अब कौन, जिया उन-
तौ हँसि कै पहिले ही चुराये॥

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र

इनका जन्म संवत् १६१३ में हुआ था। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में इनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई। गद्य के विकास में मिश्रजी ने विशेष सहयोग दिया। देश-प्रेम, समाज-सुधार, और भक्ति-सम्बन्धी सुबोध कविताएँ लिखने की प्रवृत्ति इनमें अधिक थी। कभी-कभी लावनियाँ लिखने की धुन इनको सवार रहती थी। इनके पत्र 'ब्राह्मण' ने हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति का प्रचार मरने में बड़ा उत्तरदायित्व लिया। पण्डितजी की सुन्दर रचनाओं में से एक उदाहरण देखिए—

आगे रहे गनिका गज गीध सु तौ अब कोऊ दिखात नहीं हैं।
पाप-परायन ताप-भरे 'परताप' समान न आन कहीं हैं।

हे सुखदायक प्रेमनिधे, जग यौं तौ भले औ बुरे सब हीं हैं।
दीनदयाल औ दीन प्रभो तुमसे तुमहीं, हमसे हम हीं हैं॥

———o———

प्रेमघन

श्री बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' का जन्म संवत १६१२ में हुआ था। बाबू हरिश्चन्द्रजी के हिन्दी-आन्दोलन के साथ इन्होंने भी अपनी वाणी से हिन्दी-साहित्य-व्योम में गूँज पैदा की। साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ निकालकर उस काल की भावनाओं का प्रकटीकरण करते हुए इन्होंने बहुत-सी सुन्दर रचनाएँ कीं। खड़ी बोली के प्रचार की लहर में 'आनन्द-अरुणोदय' रचा गया। 'प्रेमघन'जी साहित्यिक समुन्नति के साथ-साथ देश के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के प्रति भी सदैव सजग और सचेष्ट रहे। व्रजभाषा के अधिक अनुरागी होने के कारण इन्होंने मधुर एवं सरस शब्दों में समाज के सुन्दर चित्र अंकित किये। दो उदाहरण इनकी कविता के देखिए—

कारन सों गोरन की घिन को नाहिन कारन।
कारन तुम ही या कलंक के करन निवारन।
कारन ही के कारन गोरन लहत बड़ाई।
कारन ही के कारन गोरन की प्रभुताई॥

'आनन्द-अरुणोदय' से उद्धृत एक कवित्त पढ़िये—

संपति सुजस का न अंत है बिचार देखा,
तिसके लिये क्यों सोक-सिंधु अवगाहिये।
लोभ की ललक में न अभिमानियों के तुच्छ,
तेवरों को देख उन्हें संकित सराहिये।
दीन गुनी सज्जनों से निपट बिनीत बने,
'प्रेमघन' नित्य नाते नेह के निवाहिये।

राग रोष औरों से न हानि लाभ कछु,
उसी नंद के किसोर की कृपा की कोर चाहिये ॥

'कजली-कादम्बिनी' नामक पुस्तक में 'प्रेमघन' जी की कजलियाँ भी संगृहीत हैं।

ठाकुर जगमोहनसिंह

इनका जन्म संवत् १९१४ में हुआ था। भारतेन्दुजी के सम्पर्क से इनकी प्रवृत्ति भी काव्य-रचना की ओर उन्मुख हो उठी। प्रेम और प्रकृति के स्पष्ट चित्र अंकित करने में इन्हें पूर्ण कुशलता प्राप्त थी। इनकी भाषा में रस और प्रवाह दोनों का योग था। 'मेघदूत' का सुन्दर अनुवाद ठाकुर-साहब ने भी किया था। इनकी प्रेम और शृंगार-सम्बन्धी कविताएँ 'श्यामा-स्वप्न', 'श्याम लता', 'श्यामा-सरोजिनी' और 'प्रेम-संपत्ति-लता' आदि पुस्तकों में हैं।

इनका शृङ्गार रस से ओतप्रोत एक सवैया देखिये—

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की बतियाँ।
हम हारीं अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेहभरी पतियाँ।
'जगमोहन' मोहनी सूरति के बिना कैसे कटैं दुख की रतियाँ ॥

लाला सीताराम

इनका जन्म संवत् १९१५ में हुआ था। साहित्य-सेवा के लिए इन्हें काशी के कविमंडल से बहुत प्रेरणा मिली। लालाजी ने हिन्दी-साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। कालिदास के मेघदूत और रघुवंश के अनुवाद इनके सब अनुवादों में सुन्दर हैं। 'रघुवंश' की कुछ पंक्तियां देखिए—

प्रिया फेरि अवधेस कृपाला। रच्छा कीन्ह तासु तेहि काला ॥
बन महँ चले गाय करि आगे। सेवक सेष सकल नृप त्यागे ॥

इक केवल निज बीर्य आपारा। मनु संतति तन रच्छन हारा॥
कबहुँक मृदु तृन नोचि खिआवत। हाँकि माछि कहुँ तनहिं खुजावत॥
जो दिसि चलत चलत सोइ राहा। एहि बिधि तेहि सेवत नरनाहा॥

हरिऔधजी

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म संवत् १९२२ में हुआ था। जिला आज़मगढ़ में निज़ामाबाद इनका मूल स्थान है। एक काव्य प्रेमी सिक्ख साधु के सम्पर्क से इन्हें व्रजभाषा की कविताएँ लिखने की रूचि पैदा हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कालीन साहित्यिक वातावरण में लिखी हुई इनकी शृङ्गारसम्बन्धी रचनाएँ 'रस-कलस' में संगृहीत हैं। खड़ी बोली के कवि के रूप में हरिऔधजी की अधिक ख्याति है। इनकी कविताओं में कला और भाव दोनों पक्ष अलिंगन करते हुए दृष्टिगत होते हैं। व्रजभाषा पर इनको बहुत अधिकार था। देश-प्रेम, समाज-सुधार और भारतीय संस्कृति के सुन्दर प्रतिविम्ब इनकी व्रज-काव्य-धारा में मिलते हैं। आधुनिक काल के श्रेष्ठ व्रजभाषा-कवियों में हरिऔधजी का उचित स्थान है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

छन छन छीजत न देखहिं समाज तन,
हेरहिं न बिधवा छ्व टूक होत छतियान।
जाति को पतन अवलोकहिं न आकुल ह्वै,
भूलि ना बिलोकहिं कलंकी होत कुलमान।
'हरिऔध' छिनत लखहिं ना सलोने लाल,
लुटत निहारहिं न लोनी-लोनी ललनान।
खोले कछु खुलीं, पै कहाँ हैं ठीक-ठीक खुलीं,
अधखुली अजौं हैं हमारी खुली अँखिया न॥

समाज की दुर्व्यवस्था से खिन्न होकर कवि ने समाज को कैसे विनम्र शब्दों में धिक्कारा है। इनके नीति-सम्बन्धी कुछ दोहों का भी रसास्वादन

कीजिये। कवि ने जीवन के अमूल्य मंत्रों को किस कुशलता के साथ सुनाया है—

> परयौ काठ सम तन रहत सुत तिय हा-हा खात।
> तजि धनजन प्यारो सदन प्रान कहूँ चलि जात॥
> कुल-ललना सकुची सहमि मिले नैन ते नैन।
> मुँह के मुँह में ही रहे, कहे अधकहे बैन॥
> इतनो हूँ समुझत नहीं तऊ बनत हैं पूत।
> जाको कहत अछूत हैं तामें कैसी छूत॥
> चाव भरे चितचोर को लखि चितवत ललचात।
> चंचल-नयनी को भयो चित चल दल को पात॥

—o—

पं० नाथूरामशंकर शर्मा

कवि 'शंकर' का जन्म संवत् १६१६ में हुआ था। जिला अलीगढ़ में हरदुआगंज नामक एक रमणीय स्थान पर इनकी कुटिया है। शङ्करजी सहृदय, त्यागी और कर्मयोगी थे। सादगी और वैदिक संस्कृति के सच्चे उपासक थे। कविता के साथ-साथ आयुर्वेद की ओर भी इनकी भारी रुचि थी। इनकी कविता व चिकित्सा में जादू था। जिन दिनों आधुनिक व्रज-काव्य-धारा की ध्वनि शंकरजी के सतर्क कानों तक पहुँची, इन्होंने लेखनी उठाई और ये सरस आलंकारिक कविताएँ रचने में रत हो गए। छन्दों के कुशल प्रयोग करने में, शुद्ध ओजपूर्ण भाषा लिखने में, चमत्कारी भाव चित्रित करने में शङ्करजी को ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा प्राप्त थी। इनकी उपमाओं में विलक्षणता होती थी। शब्दों में शान होती थी। भावों में तन्मयता होती थी। व्रजभाषा में इन्होंने अधिकतर फुटकर कविताएँ लिखी हैं जो कि शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं। जो कुछ भी इन्होंने लिखा है, कवि-हृदय के सच्चे उद्‌गारों को लेकर ही लिखा है। शङ्करजी की रीति-कालीन परंपरा की शृङ्गारी कविताएँ भी बड़ी ही हृदयग्राहिणी हैं।

नख-शिख, ऋतु-वर्णन, नायिका-भेद आदि विषयों पर लिखने के साथ-साथ सामयिक प्रसंगों पर समस्यापूर्त्तियाँ भी आपने की हैं। आशु कवि 'शंकर' से स्वर्गीय पं० पद्मसिंहशर्मा बहुत स्नेह-भक्ति रखते थे। इनकी दो एक कविताएँ देखिए—

मंगल करनहारे कोमल चरन चारु
मंगल-से मान मही-गोद में धरत जात।
पंकज की पाँखुरी-सी आँगुरी अँगूठन की
जाया पंचबानजी की भँवरी भरत जात।
'शंकर' निरख नख नग से नखत-स्रेनी
अंबर सों छूटि-छूटि पाँयन परत जात।
चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै
हौले-हौले हँसन की हाँसी-सी करत जात॥

× × × ×

ताकत ही तेज न रहैगौ तेज-धारिन में,
मंगल-मयंक-मंद पीले पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे तड़ागन में
डूब-डूब 'शंकर' सरोज सड़ जायँगे।
खायगो कराल काल-केहरी कुरंगन को
सारे खंजरीटन के पंख झड़ जायँगे।
तेरी अँखियान सौं लड़ेंगे अब और कौन
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायँगे॥

वियोग-पीड़ा का चित्र देखिए—

'शंकर' नदी-नद-नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
दोनों ध्रुव-छोरन लौं पल में पिघल कर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी।

झारेंगे अंगारे ये तरनि-तारे, तारापति-
जारेंगे, ख-मंडल में आग मढ़ जायगी।
काहू बिधि बिधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा बियोगिनी की आह कढ़ जायगी॥

नीचे लिखे पद्य में मृदुल एवं सानुप्रास शब्दयोजना की छटा देखिए—

साजि कै सिंगार संकरारि-बस नारि, कर-
आरती को थार लै तयार भई जान को।
रैनि अँधियारी, बरसत बहु बारी, नारी-
पकरे किवारी ठाढ़ी सोचति बिथान को।
मावस की रात कारी, पावस की घात भारी,
ना बस की बात, हारी, कैसे मिलूँ कान को।
बोली बदरान सों-बुझै न बीजुरी की आगि-
बीजुरी न मारे नजमारे बदरान को॥

—o—

पण्डित श्रीधर पाठक

इनका जन्म संवत् १६१६ में हुआ था। खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों के ही काव्य-क्षेत्र में पाठकजी ने अपनी प्रतिभा का श्रेष्ठतम प्रभाव दिखाया। इनकी व्रज-काव्य-धारा में माधुर्य्य, रस और ध्वनि की प्रचुरता प्रतीत होती है। प्रकृति की मनोहर छटा में अनुरक्त होकर ये अपने काव्य में पर्वत-शिखरों, निर्झरों, उपवनों और विहग-वृन्दों के कलरव-पूर्ण दृश्यों की रमणीयता भर देते थे। देश-प्रेम और समाज-सुधार-सम्बन्धी भावना इनकी बहुत-सी कविताओं में मिलती है। संस्कृत के 'ऋतु-संहार' और अंगरेजी के 'Deserted Village' के व्रजभाषा-पद्यानुवाद कर श्रीधर-जी ने देश-विदेशों में अपनी ख्याति पहुँचाई। शब्दों का ललित चयन, भाषा-माधुर्य्य, वर्णन की सजीवता और प्रवाह की प्रखरता इनकी व्रज-काव्य-धारा के विशिष्ट गुण हैं। 'डैजर्टेड विलेज' (ऊजड़ ग्राम) के अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

जिमि कोउ पर्वत सृङ्ग तुंग दीरघ तन ठाड़ौ।
उख्यो खड्ड सों रहै, बबंडर बीचहि छांड़ौ।
यदपि तासु बच्छस्थल, दल बादल कोलाहल।
भाल बिराजै सदा भानु आभा दुति उज्ज्वल।

'हिमालय-वर्णन' में कवि का चित्त कैसा रमा है—

अगनित पर्वतखंड चहूंदिसि देत दिखाई।
सिर परसत आकास चरन पाताल छुआई।
सोहत सुन्दर स्वेत पांति तर ऊपर छाई।
मानहुँ बिधि पट हरित स्वर्गसोपान बिछाई।

'रत्नाकरजी'

स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म संवत् १६२३ में हुआ था और देहावसान संवत् १६८६ में। व्रजभाषा के आधुनिक श्रेष्ठ कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी प्रतिभा-शक्ति द्वारा अमूल्य कृतियाँ प्रदान करके इन्होंने हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सेवा की। काव्य-साहित्य-क्षेत्र में भारतेन्दुजी के पश्चात् इन्हीं का नेतृत्व रहा। 'हिंडोला' इनकी प्रारम्भिक रचना है। जिन काव्य-ग्रंथों का निर्माण कर इन्होंने शिक्षित जनता का मन मोह लिया है, उनके नाम हैं—'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण' और 'उद्धव-शतक'।

इनकी शृङ्गार और वीररस सम्बन्धी सब कविताओं का 'रत्नाकर' नामक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। एक पत्रिका का सम्पादन भी 'रत्नाकरजी' द्वारा होता था। पोप-रचित समालोचना-सम्बन्धी एक अंगरेज़ी काव्य-ग्रंथ का हिन्दी-पद्य-रूपान्तर कर 'रत्नाकरजी' ने हिन्दी-प्रेमी जनता के लिए प्रेरणा के अनेक द्वार खोल दिये। इनकी भाषा में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के प्रचार की आँधी में भी उसका स्वरूप मौलिक और उत्कृष्ट रहा। प्रकृति-सुन्दरी का शब्द-चित्राङ्कन करने में इनको एक तन्मयता प्राप्त

थी। रत्नाकरजी की कल्पनाशक्ति, सुगठित निर्मल भाषा, उक्ति-प्रवीणता और कलापूर्ण भाव-व्यंजना, आदि के सहयोग से इनकी काव्य-धारा में गंगा की-सी गम्भीर गति है और मधुर भाषी पक्षियों जैसा कलरव। व्रज-भाषा-साहित्य के ठोस अध्ययनोपरांत इनके कवि-कंठ से बिखरी हुई वाणी विहारी के कौशल की याद दिलाती है। उदाहरण स्वरूप इनकी कुछ कविताएँ देखिये, गंगा-लहरों की क्रीड़ा में कवि की पंक्तियाँ कैसी लहरा रही हैं—

कबहुँ सु-धार अपार बेग नीचे को धावै।
हरहराति लहराति सहस योजन चलि आवै॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य खेत उत्पन्न हीर की रास उसावत॥

× × × ×

बीर अभिमन्यु की लपालप कृपान बक्र,
सक्र-असनी लौं चक्रव्यूह माहिं चमकी।
कहैं 'रतनाकर' न ढालनि पै खालनि पै,
झिलिम झपालनि पै क्यों हूँ कहूँ ठमकी।
आई कंध पै तो बांटि बंध प्रतिबंध सबै,
काटि-काटि संधि लौं जनेवा ताकि तमकी।
सीस पै परी तौ कुण्ड काटि मुण्ड काटि फेरि,
रुण्ड के दुखंड कै धरा पै आन धमकी॥

स्वाभाविक चित्रण का एक सजीव नमूना देखिए—

× × × ×

× × × ×

उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगी।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगी॥

बीभत्स रस में सत्य हरिश्चन्द्र के मरघट का दृश्य देखिए—

कहुँ सृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत ।
कहुँ कोउ सब पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥

—o—

'पूर्ण' जी

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का जन्म संवत् १९२५ में हुआ था। ये कानपुर के निवासी थे। जिन दिनों ग्रंथों का अध्ययन करने की योग्यता इन्होंने प्राप्त कर ली थी, उन्हीं दिनों कवि-समाजों की मनोरंजक बैठकों ने इनका मन विशेष रूप से आकर्षित किया। कानपुर के कवि-समाज को वर्षों तक 'पूर्ण' जी ने अपनी काव्य-वाणी से चहकाया। व्रज-काव्य की पुरानी और नवीन दोनों धाराओं का इनकी रचनाओं पर प्रभाव है। जहाँ शृङ्गार, भक्ति, वेदान्त और प्रकृति-वर्णन आदि पर इनकी कृतियाँ मिलती हैं, वहाँ इनकी देश-प्रेम और समाज-सुधार-सम्बन्धी रचनाओं की भी प्रतिष्ठा है। 'पूर्ण' जी ने एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया, जिसमें कवियों की समस्या-पूर्तियाँ और पुरानी परिपाटी की कविताएँ विशेष रूप से स्थान पाती थीं। 'पूर्णजी' की सरस रचनाओं में से एक उदाहरण दिया जाता है—

चातक समूह बैठे बोलन को बाए मुख,
नाचन को मोर ठाड़े पाँव ही उठाए हैं।
'पूरनजी' पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सो बेलिन के हिय लहराए हैं।
द्रोही द्रुम जाति केरे अरक जवास पूरे,
तेरे जरिवे के अब द्यौस नियराए हैं।
हीतल महीतल को सीतल करनहारे,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आए हैं॥

—o—

पण्डित सत्यनारायण 'कविरत्न'

आपका जन्म संवत् १९४१ में हुआ था। आगरे के निकट धाँधूपुरा नामक स्थान आपकी जन्म-भूमि है। विद्यार्थी-जीवन से ही इन्हें कविता की ओर रूचि पैदा हो गई थी। ठेठ व्रजभाषा में मनोहर रचनाएँ रच कर पण्डितजी ने स्थाई रूप से हिन्दी के उपासकों में अपनी प्रतिष्ठा छोड़ी है। व्रजभूमि के भक्त कवियों की भाँति व्रजविहारी कृष्ण की आराधना में इन्होंने भी अधिकांशतः भक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। कविता-पाठ करने की कुशलता के कारण भी इनका बड़ा सम्मान हुआ। संस्कृत के दो अमूल्य ग्रंथ 'उत्तररामचरित' और 'मालती-माधव' का हिन्दी-पद्य-रूपान्तर कर सत्यनारायणजी ने अपनी प्रतिभा का सुन्दर विकास दिखाया है। संवत् १९७५ में ज़ीवन के संकटों से संघर्ष करते हुए ये स्वर्गवासी हुए। पण्डितजी की एक कविता पढ़िये—

बिलखाती सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
स्याम-बिरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई।
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन-छिन परत अधीर।
सोचति मोचति निस दिना, निसरत नैननु नीर—
बिकल कल ना हिये॥
कहत बिकल मन महरि कहाँ हरि ढूँढ़न जाऊँ।
कब गहि लालन ललकत मन गहि हृदय लगाऊँ।
सीरी कब छाती करौं, कब सुत दरसन पाऊँ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाय पठाऊँ—
संदेसो श्याम पै॥

———०———

श्री वियोगीहरि

संवत् १९५३ में श्री वियोगीहरि का जन्म हुआ था। ये वर्तमान कवियों में प्रमुख स्थान-प्राप्त व्यक्ति हैं। व्रजभाषा की भक्तिपूर्ण काव्य-रचनाएँ करने में इनका चित्त अधिक तन्मय रहा है। प्रेम-सम्बन्धी कृतियाँ

भी इनकी प्रशंसनीय हैं। भव्य भावों की सरस पदावलियों ने इनको खूब सम्मानित किया। इनकी प्रेम और भक्ति की कविताओं के लिए 'प्रेम-शतक,' 'प्रेम-पथिक' और 'प्रेमांजलि' आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

वियोगीहरिजी का काव्य-क्षेत्र प्राचीन परिपाटी के भक्त और प्रेमी कवियों के अनुकरण तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु सामयिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होकर इन्होंने देश की आपत्तियों के प्रति पूर्ण समवेदना प्रकट की। 'चरखा की गूँज' और 'असहयोग-वीणा' के क्रान्तिकारी नाद सुनाकर युग की गति के साथ इन्होंने अपनी प्रतिभा के पग मिलाये। 'वीर-सतसई' नामक पुरस्कार-प्राप्त ग्रंथ रचकर भारत के साहसी सैनिकों का सुन्दर गुण-गान भी कवि ने मार्मिक दोहों में किया है। मधुर व्रजभाषा में इनका एक पद और कुछ दोहे देखिए—

माधव आज कहौ किन साँची ?
क्यों हम नीचन तें हरि रूठे ऊँचन में मति राँची ॥
यंत्रित बज्रकपाटनि गढ़ ए दृढ़ मन्दिर तुम पाए।
बलिहारी रणछोड़नाथजू ! भले भाजि इत आए ॥
हम सब के अघ देखि दुरे हौ किधौं मंदिरन माँहीं।
कै कछु डरत उच्च बंसिन को, छुअत न हमरी छाँहीं ॥
पै इतहूं नहिं कुसल तुम्हारी कल न लेन हम दै हैं।
जो पै हिये प्रेम कछु ह्वै है, तुम्हें खैंचि प्रभु लैहैं ॥

× × × ×

निज प्रिय लाल कटाय जो, प्रभु-सिसु लियो बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय ॥
प्राण-प्रिया को सीस लै, परम प्रेम-उपहार।
चल्यौ हुलसि रणमत्त ह्वै, चूड़ावत सरदार ॥
या तेरी तरवार में, नहिं कायर अब आब।
दिल हू तेरो बुझि गयो, वामें नेक न ताब ॥

———o———

दुलारेलाल भार्गव

इन्होंने 'दुलारेदोहावली' नामक व्रजभाषा के मधुर दोहों से पूर्ण चमत्कारी ग्रंथ की रचना कर व्रज-काव्य-साहित्य के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया। रस और अलंकारों का सुन्दर प्रयोग, सामाजिक परिस्थिति का प्रदर्शन, सुधार-भावना, देश-प्रेम आदि सब दृष्टिकोण इनके सरस दोहों में भरे पड़े हैं। इस 'दोहवली' पर भार्गवजी को २०००) रुपये का 'देव-पुरस्कार' भी प्राप्त हो चुका है।

देव-पुरस्कार तथा उसके प्राप्तकर्ता अन्य कवि—

टीकमगढ़-राज्य की ओर से आज भी व्रजभाषा का प्रचार अति प्रशंसनीय ढंग से हो रहा है। प्रति तीसरे वर्ष व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ पर २०००) का पुरस्कार प्रदान किया जाता है। बिसवाँ (जिला सीतापुर) निवासी श्रीयुत हरदयालुसिंह जी तथा पं० अनूप शर्मा जी भी अपनी-अपनी प्रसिद्ध और श्रेष्ठ व्रज-काव्य-कृतियों पर यह इनाम पा चुके हैं। अयोध्या निवासी पं० रामनाथ ज्योतिषी भी 'रामचन्द्रोदय-काव्य' लिखकर देव-पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं।

आधुनिक विचारों और प्राचीन व्रजभाषा की काव्य-परंपरा का समन्वय कर काव्य रचना करने वाले पं० रामचन्द्र शुक्ल और श्री 'वचनेश' आदि अनेक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। जिन लोगों ने प्राचीन पद्धति का अनुकरण त्याग कर खड़ी बोली अपना ली, उनमें सबसे उत्तम रचनाएँ कवि 'शंकर', पं० श्रीधर पाठक और श्री हरिऔधजी की लेखनियों द्वारा प्रकाश में आईं। पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवानदीन 'दीन' और पण्डित रूपनारायण पाण्डेय आदि के नाम भी इस क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। खड़ी बोली के काव्य-प्रकरण में इनका विस्तृत वर्णन दिया जायगा।

खड़ी बोली की कविता

रीति-काल की शृङ्गारपूर्ण परम्परा के समाप्त होने पर भी कुछ कवियों ने ब्रजभाषा में सरस और मधुर कविताएँ लिखीं। इन कवियों में कुछ ऐसे भी थे जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुयायी थे। अतः उनके द्वारा, सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण कर समाज को जाग्रत करने का साहित्य रचा जाने लगा। देश में विदेशियों के आगमन के कारण विचार प्रकट करने की नई धारा का विकास आरंभ होगया था। लोगों ने अपनी हीनता का भी अनुभव किया और समाज-सुधार-सम्बन्धी कविता, नाटक तथा पत्र-पत्रिकाओं की धूम मच गई। हरिश्चन्द्रजी के सहयोगियों में पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिकादत्त व्यास, बाबू राधाकृष्णदास और प्रेमघनजी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन साहित्य-सेवियों के विषय में संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका में। हिंदी-साहित्य-उन्नायक और समाज-उद्धारक बाबू हरिश्चन्द्रजी के निधन के पश्चात् हिन्दी-काव्य की धारा ही बदल गई।

जिस प्रकार हिंदी-गद्य के विकास में, खड़ी बोली धीरे-धीरे निखरती चली आरही थी, उससे लोगों ने अनुमान किया कि खड़ी बोली का प्रयोग यदि हिंदी-कविता में भी किया जाय तो गद्य और पद्य दोनों की समान भाषा होजाय। इस प्रकार खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष को लेकर एक व्यापक आन्दोलन बन गया। बाबू हरिश्चन्द्र के काल में ही ऐसे वादविवाद आरंभ हो चले थे। खड़ी बोली की कविता के आन्दोलन से ही प्रभावित होकर भारतेन्दुजी ने खड़ी बोली में 'दशरथ-विलाप' लिखा।

खड़ी बोली की कविता का आदि कवि अमीर खुसरो को मान कर कुछ लोगों ने इसके इतिहास की शृङ्खला को आगे तक जोड़ना चाहा, किन्तु खुसरो के काल के बाद खड़ी बोली का थोड़ा स्वरूप कबीर, दादू आदि साधु कवियों की भाषा में ही मिला। भूषण की कविता में भी कहीं-कहीं खड़ी बोली की झलक पाई जाती है। दिल्ली और मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली भाषा ही खड़ी बोली कहलाती थी। किन्तु

मुसलमान शासकों के काल में इसे उर्दू कहा जाने लगा। यही भाषा फ़ारसी और अरबी-शब्दों के योग से ठेठ उर्दू होती गई। संस्कृत-शब्दों ने इसे खड़ी बोली बना दिया। इंशाअल्लाख़ाँ ने अपनी 'रानी केतकी की कहानी' में खड़ी बोली के पद्यों का प्रयोग किया है। इधर आगरा के प्रसिद्ध मुसलमान कवि 'नज़ीर' (संवत् १७६७–१८७७) ने खड़ी बोली में भक्ति की अनेक कविताएँ लिखी हैं। कृष्ण के बालपन की प्रशस्ति में उन्होंने लिखा है—

> **यारो सुनो ये दधि के लुटैया का बालपन।**
> **औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन॥**
> **मोहन-सरूप नृत्य करैया का बालपन।**
> **बन-बन में ग्वाल-गौवें चरैया का बालपन॥**

संवत् १९१३ के पश्चात् 'ललितकिशोरी' और 'ललितमाधुरी' नामक भक्त कवियों ने खड़ी बोली में झूलना आदि लिखे। इसके अनंतर खड़ी बोली की कविता तीन धाराओं में विभक्त होगई। (१) कवित्त-सवैयों की धारा, (२) उर्दू-छन्दों की धारा और (३) लावनी की धारा।

खड़ी बोली का पद्यमय प्रचार बढ़ता ही गया। मुज़फ़्फ़रपुर निवासी बाबू अयोध्याप्रसादजी ने खड़ी बोली के प्रचार में तन-मन से प्रयत्न किया। उन्होंने भाषाशास्त्र का अध्ययन किये विना ही खड़ी बोली का प्रचार-भार अपने कन्धों पर ले लिया। अनेक विरोधों का सामना करते हुए अंततः उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ खड़ी बोली की कविता का श्रीगणेश कर ही दिया। इस क्षेत्र में सर्व-प्रथम अग्रसर होने वाले कवियों में बा० हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु), पं० चन्द्रशेखर मिश्र, पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर', पं० श्रीधर पाठक और श्री 'हरिऔध' जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

———०———

पण्डित श्रीधर पाठक

खड़ी बोली के व्यापक आन्दोलन के अन्तर्गत जिन उत्तम कवियों ने खड़ी बोली को ही हिन्दी का वास्तविक रूप मानकर काव्य-रचना आरम्भ की, उनमें पं० श्रीधर पाठक का सर्व-प्रथम स्थान है। सरल बोलचाल की भाषा में इन्होंने 'एकान्तवासी योगी' की रचना की। अंगरेज़ कवि गोल्ड-स्मिथ के 'Traveller' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' भी खड़ी बोली में किया। पाठकजी प्रतिभाशाली कवि थे। सवैया, लावनी की शैली और रोला छन्दों का प्रयोग कर इन्होंने खड़ी बोली की कविता में भी व्रजभाषा का-सा माधुर्य्य भर दिया। स्फुट रचनाओं में प्रकृति-प्रेम की अनूठी रुचि दिखाकर पाठकजी ने इस क्षेत्र में अति प्रशंसनीय कार्य किया। इस काल में भी इनकी कवि-भावना देश की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति सहृदयता के साथ उन्मुख होती रही। खड़ी बोली के नए भाषा-क्षेत्र में प्रविष्ट होकर भी पाठकजी व्रजभाषा में निरंतर अपनी रचनाएँ करते रहे। इनकी खड़ी बोली की कविता के दो उदाहरण लीजिये—

सभ्य सुजन सत्कर्म-परायण सौम्य सुशील सुजान।
शुद्धचरित्र उदारप्रकृति शुभ विद्या-बुद्धि-निधान।
प्राण पियारे की गुण-गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊं।
गाते-गाते नहीं चुके वह चाहे मैं ही चुक जाऊं।
विश्व-निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
बलिहारी त्रिभुवन-धन उस पर वारों काम करोर।

[एकान्तवासी योगी से]

सवैया

इस भारत में वन पावन तू ही तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जगतत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था।
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था, सात्विक जीवन का क्रम था।
महिमा वनवास की थी तब और प्रभाव पवित्र अनूपम था॥

———०———

पण्डित नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर'

ब्रज-काव्य-धारा के आधुनिक कवियों में शंकरजी की सरस और भावपूर्ण रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है। खड़ी बोली की लहर में इन्होंने भी अपनी लेखनी को स्वच्छ किया और 'अनुराग-रत्न', 'शङ्कर सरोज', 'गर्भ-रण्डा-रहस्य', 'वायस-विजय' आदि पुस्तकें तथा अनेक फुटकर रचनाएँ हिन्दी-साहित्य-देवता की सेवा में अर्पित कीं। महर्षि दयानन्द के समाज-सुधार-सम्बन्धी व्याख्यानों ने शङ्करजी को ऐसा प्रभावित किया कि यदि उन्हें आर्यसमाज का 'तुलसीदास' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। कलाकार, साहित्य-सेवी, वैदिक-संस्कृति-उपासक, समाज-सुधारक, देश-भक्त और दार्शनिक कवि 'शङ्कर' के विभिन्न स्वरूप हैं। इन पहलुओं पर विस्तार-पूर्वक लिखने के लिये यहाँ स्थान नहीं है।

शङ्करजी की अधिकांश कविताएँ अभी अप्रकाशित हैं। जो प्रकाशित हैं, उनमें समाज के अधःपतन के दृश्य हैं, पाखण्डियों के प्रति कबीर की भाँति कवि की समवेदना एवं सुधारात्मक ललकार है। गीति-काव्य-कार के नाते कवि ने सुसंस्कृत समाज को मधुर, सरस और संगीतयुक्त आध्यात्मिक विचारों का दिग्दर्शन कराया है।

जिस काल में शङ्करजी की प्रतिभा विकसित होरही थी, खड़ी बोली जनता की बोलचाल की भाषा थी। काव्य-ग्रंथों में भी उसका सरस प्रयोग आरंभ होचुका था, अतएव शङ्करजी को अंधविश्वासी समाज की आँखें खोलने के लिये खड़ी बोली का प्रयोग ही विशेष रूप से उपयुक्त प्रतीत हुआ। उनकी नई काव्य-भाषा में ब्रजभाषा के प्रचलित और सरस शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। शब्द-निर्माण-कला में शङ्करजी उसी प्रकार सिद्धहस्त थे, जिस प्रकार कोई कुम्भकार पक्के चमकदार पात्र बनाने के लिये विशेष प्रकार की मिट्टियों का चयन करता है।

कवि शङ्कर को हिन्दी-संसार ने आदरपूर्वक अपनाया। अनेक उपाधियों और पदवियों से सम्मानित शङ्करजी, दौड़-धूप के उत्कृष्ट निमंत्रणों से दूर, अपनी कुटिया पर ही डटे रहने में आनन्द अनुभव करते थे। उनके

द्वार पर ही विद्वानों का उत्सव रहता था। कविता-पाठ करने में उनकी वाणी को सरस्वती की दुहरी कृपा प्राप्त थी। 'कवि-व-चित्रकार', 'काव्य-सुधाकर', 'रसिक-मित्र' और 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में शङ्करजी की समस्या-पूर्तियाँ और स्फुट रचनाएँ निरंतर प्रकाशित होती रहती थीं।

शङ्करजी को छन्द, रस, अलंकार और भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। नए छन्द-निर्माण के लिए भी उनकी ख्याति है। उनकी सरस, मधुर और भावपूर्ण कविताओं की झाँकी कीजिए—

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से,
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी 'शङ्कर' की,
छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है।
कौन मान लेगा कीर-तुण्ड की कठोरता में,
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥

साहित्य-मर्मज्ञ श्री पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी के शब्दों में "शंकरजी की कविता में मौलिकता है, नवीनता है, भाव की विशदता है और गम्भीरता है। कुछ वर्ष पहले 'सरस्वती' में उनकी 'पंचपुकार' नाम की एक कविता छपी थी। उसे पढ़कर हमें बर्नार्डशा के एक नाटकीय पात्र का यह कथन याद आजाता है–My way of joking is to tell the truth. (मेरा व्यंग्य सत्य की ओर संकेत करने के लिए ही होता है)। ......अभी हिन्दी-साहित्य के कज्जल-कूट पर शंकरजी की दीप-शिखा शोभा दे रही है। हमें विश्वास है कि यह दीप-शिखा कभी मलिन नहीं होगी।"

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि
श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि
राहु के कबंध पै कराल केतु तारा है।

'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि
ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥

'रंक-रोदन' में कवि ने धनी से निर्धन होने वाले एक व्यक्ति का कैसा मार्मिक चित्र अंकित किया है, देखिये—

प्रतिभा को प्रतिवाद, प्रचण्ड पछाड़ चुका है।
आदर को अपमान, कलंक लताड़ चुका है।
पौरुष का सिर नीच, निरुद्यम फोड़ चुका है।
विशद हर्ष का रक्त, विषाद निचोड़ चुका है॥

× × ×

मक्की, मटरा, मोठ, भुनाय चबा लेते हैं।
अथवा रूखे रोट, नमक से खा लेते हैं।
सत्तू, दलिया, दाल पेट में भर लेते हैं।
गाजर मूली पाय, कलेवा कर लेते हैं॥

× × × ×

बालक चोखे खान-पान को अड़ जाते हैं।
खेल-खिलौने देख, पिछाड़ी पड़ जाते हैं।
वे मनमानी वस्तु न पाकर रो जाते हैं।
हाय हमारे लाल, सुबकते सो जाते हैं॥

कवि शंकर ने जहाँ खड़ी बोली और व्रजभाषा में कवित्त, सवैये, पद, दोहे, लावनी आदि छन्दों में विविध विषयों पर काव्य-रचना की है, वहाँ उनके उर्दू-फ़ारसी के ज्ञान का परिचय भी उनकी कुछ रचनाओं से मिलता है। एक ग़ज़ल देखिये—

हर शाख़ से अयां है, हर सू जलाल तेरा।
माशूक़े बुलबुलाँ है, ऐ गुल जमाल तेरा॥

नाज़िर न देखता है, इन्साफ की नज़र से।
मन्ज़र दिखा रहे हैं, कामिल कमाल तेरा ॥ आदि।

समाज-सुधार, देश-प्रेम और दर्शन सम्बन्धी अधिकांश रचनाएँ शंकरजी ने खड़ी बोली में की हैं।

परिडत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

खड़ी बोली के द्वितीय उत्थान के आरम्भ में परिडत महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उर्दू के छन्दों और शब्दों में रँगती जाने वाली हिन्दी-कविता के नए स्वरूप को संस्कृत के छन्दों और पदों में ढालने के लिये संदेश दिया। उसी काल में परिडत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' गद्य-क्षेत्र में प्रगति करते हुए कविता को सांस्कृतिक रूप से संस्कृत-छन्दों और शब्दों के ठोस आभूषणों द्वारा सुसज्जित करने लगे। इस उद्देश्य में वे इतने तल्लीन हुए कि संस्कृत-पद-विन्यास के साथ उपसर्गों के ठाट और शृङ्खलाबद्ध शब्दावली से सजी हुई 'प्रिय-प्रवास' की भाव-व्यंजनात्मक भाषा कहीं-कहीं केवल विद्वानों की ही पाठ्यसामग्री रह गई। कहने का तात्पर्य यह कि द्विवेदीजी के अनुयायी कवि-मंडल से उपाध्यायजी की कविता का क्षेत्र पृथक् और अपने ढंग का निराला रहा। 'प्रिय-प्रवास' में आनन्दकन्द व्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द्र का वर्णन है। कोमल-कांत पदावली में यह सुन्दर रचना है।

उपाध्यायजी की रचनाओं में ध्यान देने योग्य जो बात है वह उनके काव्य में दुहरी शैली का प्रयोग है। 'चोखे चौपदे' नामक प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ में बोलचाल की मुहावरेदार भाषा के प्रयोग से रचनाओं का जड़ाव है। 'पद्य-प्रसून' में साहित्यिक और बोलचाली दोनों शैलियों का समन्वय है। 'वैदेही-वनवास' और 'पारिजात' इनके दो नए ग्रंथ हैं। 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रंथ में उपाध्यायजी के प्रसिद्ध विचारपूर्ण साहित्यिक व्याख्यानों का सुन्दर संग्रह है। हिन्दी-साहित्य-शिक्षक उपाध्यायजी हिन्दी-काव्य और भाषा के संरक्षक का उत्तरदायित्व लेकर जो सेवा इस

वृद्धावस्था में भी कर रहे हैं, उसके लिये हिन्दी संसार आभार से शीश झुकाये हुए है। कवि 'हरिऔध' ने व्रजभाषा और खड़ी बोली की काव्य-रचनाओं में निरन्तर रत रहकर अपना अमिट स्थान बना लिया है। आपकी विविध रचनाओं में से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

निमिष में वन-व्यापित वीथिका,
विविध धेनु-विभूषित हो गई।
धवल–धूसर–वत्स–समूह भी,
विलसता जिनके दल–साथ था॥

जब हुए समवेत शनैः-शनैः,
सकल गोप सधेनु समण्डली।
तब चले व्रज-भूषण को लिये,
अति अलंकृत गोकुल–ग्राम को॥

गगन–मंडल में रज छा गई,
दश–दिशा बहु–शब्दमयी हुई।
विशद गोकुल के प्रति–गेह में,
बह चला वर स्रोत विनोद का॥

सकल वासर आकुल से रहे,
अखिल मानव गोकुल ग्राम के।
अब नितान्त विलोकत ही बढ़ी।
व्रज–विभूषण दर्शन–लालसा॥

× × ×

आई प्यारे निकट श्रम से एक वृद्धा प्रवीणा।
हाथों से छू कमल-मुख को प्यार से लीं बलाएँ॥
पीछे बोली दुखित स्वर से 'तू कहीं जा न बेटा–
तेरी माता उधर कितनी बावली हो रही है'॥

× × × ×

है उसी एक की झलक सब में,
हम किसे कान कर खड़ा देखें।
तो गड़ेगा आँख में न कोई,
हम अगर डीठ को गड़ा देखें॥

शार्दूल विक्रीड़ित छन्द

रूपोद्यान प्रफुल्ल–प्राय–कलिका राकेन्दु–बिम्बानना,
तन्वंगी कल–हासिनी सुरसिका क्रीड़ा–कला–पुत्तली।
शोभा–वारिधि की अमूल्य-मणि-सी लावण्य-लीलामयी,
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥

× × × ×

क्यों पले पीस कर किसी को तू?
है बहुत पालिसी बुरी तेरी।
हम रहे चाहते पटाना ही,
पेट तुझ से पटी नहीं मेरी॥

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

'पूर्णजी' का उल्लेख आधुनिक व्रज-काव्य के प्रकरण में किया जा चुका है। यहाँ उनकी खड़ी बोली की रचनाओं के विषय में यही कहना है, कि राय देवीप्रसादजी व्रजभाषा की कविताएँ लिखकर अपनी भक्ति-भावना, देश-प्रेम और तत्कालीन समाज के दब्बू दृष्टि-कोण को प्रतिविम्बित करने वाली राजभक्ति-विषयक भावना का चित्रण कर गए हैं। इधर खड़ी बोली के क्षेत्र में आकर भी इनकी यही भाव-पद्धति रही। इन्होंने कुछ फुटकर रचनाएँ भी कीं। प्रकृति-चित्रण की ओर भी 'पूर्णजी' की विशेष प्रवृत्ति रही।

'पूर्णजी' की काव्य-कृतियों में 'अमलतास', 'वसंत-वियोग', 'नए सन् का स्वागत' आदि कविताएँ उनके व्यक्तित्व का सुन्दर परिचय देती हैं। अपने दार्शनिक व्यक्तित्व को प्रकाशित करते हुए इन्होंने 'ब्रह्मावर्त्त सनातन धर्म-

मंडल' की स्थापना की। 'रसिक-वाटिका' नामक पत्रिका का संचालन कर 'पूर्णजी' ने अनेक कवियों से समाज को परिचित कराया। नई सभा-समितियों को प्रोत्साहित करने में कवि देवीप्रसादजी बड़ा आनन्द अनुभव करते थे। वकीली जीवन में गुथे रहकर भी 'पूर्णजी' आजीवन ललित और सरस रचनाओं से साहित्य-स्रोत को सरस बनाते रहे। उदाहरणार्थ इनके 'पूर्ण-संग्रह' से कुछ रचनाएँ उद्धृत की जाती हैं—

नन्दन-वन का सुना नहीं है किसने नाम।
मिलता है जिसमें देवों को भी आराम॥
उसके भी वासी सुखरासी, उग्र हुआ यदि उनका भाग।
आकर के इस कुसुमाकर में करते हैं नन्दन-रुचि त्याग॥

× × ×

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म।
राजभक्ति भी चाहिये सच्ची सहित सुकर्म॥
सच्ची सहित सुकर्म देश की भक्ति चाहिये।
पूर्ण भक्ति के लिये पूर्ण आसक्ति चाहिये॥
नहिं जो पूर्णासक्ति वृथा है शोर चढ़े स्वर।
है जो पूर्णासक्ति सहायक है परमेश्वर॥

× × × ×

गाढ़ा झीना जो मिलै उसकी ही पोशाक।
कीजै अंगीकार तो रहै देश की नाक॥
रहै देश की नाक स्वदेशी कपड़े पहने।
हैं ऐसे ही लोग देश के सच्चे गहने॥
जिन्हें नहीं दरकार चिकन योरुप का काढ़ा।
तन ढकने से काम गजी होवै या गाढ़ा॥

———o———

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में द्विवेदीजी उसी प्रकार प्रविष्ट हुए जिस प्रकार विकृत लौहराशि को देख कोई लुहार उसकी मरम्मत करे और सुदृढ़ सुन्दर रूप में बनी हुई उपयोगी स्वदेशी वस्तुओं को बाज़ार में सजा दे। जिन दिनों फ़ारसी, अरबी और हिन्दी के मेल से बनी हुई उर्दू भाषा का साहित्य तेज़ी के साथ अग्रसर हो रहा था, उन दिनों हिन्दी-कविता उसी रंग में रँगी प्रचलित थी। वही उर्दू के छन्द, वही उर्दू, फ़ारसी और अरबी-शब्दों का चयन। भाव सामयिक स्थिति को लेकर चलते ही थे। द्विवेदीजी को हिन्दी-कविता का यह रूप रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वे चाहते थे कि हिन्दी-कविता अपनी संस्कृति को न त्यागे, अतः भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होनी चाहिए। संस्कृत-छन्दों को व्यवहृत करना हिन्दी-काव्य को मौलिकता प्रदान करना है। शब्दों का चयन अधिक से अधिक जनसाधारण की समझ में आने के लिए होना चाहिये, इसीलिए कविता के वास्ते बोलचाल की भाषा बहुत उपयुक्त माध्यम है।

खड़ी बोली की कविता को परिष्कृत करने में द्विवेदीजी का ही प्रथम प्रयत्न था। खड़ी बोली का प्रचार करने में तो वे अग्रगण्य हैं ही। जहाँ तक द्विवेदीजी की कविताओं का सम्बन्ध है, वे हिन्दी-कवि के रूप में समाज का उद्धार करने नहीं आए। समाज के साहित्य को सुगठित और सुन्दर बनाने के लिए ही उन्होंने हिन्दी-क्षेत्र में पदार्पण किया। अपनी आदर्श भाषा का प्रयोग करने वाले भावुक कवियों का एक उन्नत शिष्य-मण्डल तैयार कर द्विवेदीजी ने खड़ी बोली का राज्याभिषेक-सा कर दिया। अपनी पत्रिका (सरस्वती) में शुद्ध संशोधित भाषा का प्रकाश कर आचार्य द्विवेदीजी ने बहुत से लोगों को हिन्दी लिखना सिखाया। द्विवेदीजी ने स्वयं भी बहुत लिखा। पद्य-रचना के क्षेत्र में भी इन्होंने कुछ कार्य किया था। 'नागरी तेरी यह दशा !' और 'अयोध्या का विलाप' आदि द्विवेदीजी की व्रजभाषा की रचनाएँ हैं। खड़ी बोली में 'कुमार-सम्भव-सार', 'काव्य-मंजूषा' और 'सुमन' उनकी पद्यमय रचनाएँ हैं। आगे द्विवेदीजी की शिष्य-

परम्परा का वर्णन किया जायगा, अतः इस महान् साहित्य-सेवी के विषय में अधिक न लिख उनकी इतिवृत्तात्मक कविता के दो उदाहरण देते हैं—

तुम्ही अन्नदाता भारत के सचमुच बैलराज ! महाराज ।
बिना तुम्हारे हो जाते हम दाना दाना को मोहताज ॥
तुम्हें षण्ढ कर देते हैं जो महानिर्दयीजन-सिरताज ।
धिक उनको, उन पर हँसता है, बुरी तरह, यह सकल समाज ॥

जहाँ कोमल पदावली और संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया गया है वहाँ द्विवेदीजी ऐसा लिखते हैं—

सुरम्य रूपे, रस-राशि-रंजिते,
विचित्र वर्णाभरणे ! कहां गई ?
अलौकिकानन्द-विधायिनी महा,
कवीन्द्रकान्ते, कविते ! अहो कहाँ ?
मांगल्य-मूलमय वारिद-वारिवृष्टि ॥

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

आचार्य द्विवेदी के प्रमुख अनुयाइयों में श्री मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक कवियों के श्रेष्ठ वर्ग में हैं। लोकचिन्तक राम का यश लोक-कल्याण के निमित्त ही गाने वाले कवियों में, गुप्तजी आधुनिक युग के भक्त तुलसीदास कहे जा सकते हैं। इनके 'साकेत' नामक प्रबन्ध-काव्य में राम-चरित्र अंकित है। उसमें प्रबन्धात्मा की अपेक्षा कवित्व अधिक है, क्योंकि नई धारा के प्रभाव से गीतों के प्रयोग मुक्तक काव्य का-सा रूप लक्षित करते हैं। रही कविता, सो कवि के नाते गुप्तजी अत्यन्त सहृदय और समन्वय वृत्ति वाले व्यक्ति हैं। प्राचीन और नवीन कविता की दोनों धाराओं को साथ लेकर चलने वाले कवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिंदी-काव्य को अमूल्य भेंटें प्रदान की हैं।

आरम्भ में गुप्तजी ने 'सरस्वती' में अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराईं। 'रंग में भंग' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखने की रुचि ने इन्हें अनेक ऐसे

सुन्दरतम काव्य लिखने को प्रेरित किया। 'यशोधरा' नामक काव्य-ग्रंथ भगवान् बुद्ध के जीवन सम्बन्धी चरित्रों की शिष्ट और संदेशात्मक भावना को लेकर सुन्दर सरस गीत-काव्यों के नाटकीय रूप में अवतरित हुआ है। कहीं-कहीं गद्यांशों का भी प्रयोग है। खण्ड-काव्यों की रचनाओं में 'जयद्रथ-बध' और 'पंचवटी' गुप्तजी के उन्नत विचार और उनकी आदर्श कविता का अच्छा परिचय देते हैं।

गुप्तजी की काव्य-रचना-पद्धति की सराहना इस दृष्टि से भी की जा सकती है कि उन्होंने समय के प्रत्येक उतार-चढ़ाव को साहित्यिक सहयोग दिया। जब से इनकी प्रतिभा का स्रोत प्रवाहित हुआ है, तब से आज तक की लगभग हर एक अवस्था का प्रतिविम्ब इनके काव्य में है। इनकी कविता का विकास किसी रुढ़ि विशेष से चिपका हुआ नहीं है। उसमें स्वाभाविक गति है। वातावरण के साथ इनकी कविता ने भी अपनी वेश-भूषा परिवर्त्तित की है। 'झंकार' में गुप्तजी ने नई धारा वाले छायावादियों और रहस्यवादियों को अपनी वीणा की झंकार सुनाई है। बँगला-साहित्य के अध्ययन से कवि मैथिली बाबू की पदावली कोमल और मृदुल होती गई। इसी मृदुलता, कोमलता और सरसता को अपनी वर्त्तमान गीति-धारा से संयुक्त कर कवि गुप्तजी हमारे सामने जीवन के प्रलयकारी संघर्षों को शान्त करने का सचेष्ट प्रयत्न कर रहे हैं। कविवर गुप्तजी की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। सीधे-सरल भावों के साथ ये थोड़े में ही बहुत कुछ कह देते हैं। गुप्तजी ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रंथों में 'साकेत', 'यशोधरा', 'भारत-भरती', 'पंचवटी', 'जयद्रथ-बध', 'द्वापर', 'झंकार' और 'कारा' के नाम उल्लेख्य हैं। उदाहरण-स्वरूप उनकी कविताओं में से 'साकेत' की उर्मिला का एक गीत देखिए—

मन को यों मत जीतो।
बैठी है यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी मीतो!

इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग-सी जिसके मारे।
देखो, ग्रीष्म भीष्म तनु धारे, जन को भी मन चीतो।
मन को यों मत जीतो॥

प्यासे हैं प्रियतम सब प्राणी,
उन पर दया करो हे दानी,
इन प्यासी आँखों में पानी, मानस कभी न रीतो।
मन को यों मत जीतो॥

धर कर धरा धूप ने धाँधी,
धूल उड़ाती है यह आँधी,
प्रलय, आज किस पर कटि बाँधी? जड़ न बनो, दिन, बीतो।
मन को यों मत जीतो॥

'पंचवटी' की कुछ पंक्तियाँ देखिये। प्रकृति सुन्दरी का कैसा वैज्ञानिक चित्रण कवि ने किया है—

है बिखेर देती वसुन्धरा, मोती सबके सोने पर।
रवि बटोर लेता है उनको, सदा सबेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी, संध्या को दे जाता है।
शून्य श्याम तनु जिससे उसका, नया रूप झलकाता है॥

स्वदेश-संस्कृति के उपासक, कवि मैथिलीशरण गुप्त विदेशियों से ऊबकर अपने देशवासियों को सचेत करते हैं—

क्षत्रिय! सुनो, अब तो कुयश की कालिमा को मेंट दो।
निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो।
वैश्यो! सुनो, व्यापार सारा मिट चुका है देश का।
सब धन विदेशी हर रहे हैं, पार है क्या क्लेश का॥

———०———

पण्डित रामचरित उपाध्याय

द्विवेदीजी के अनुयायी खड़ी बोली के कवि-मंडल में इनका उचित स्थान है। उपाध्यायजी संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान् थे। प्राचीन परिपाटी की काव्य-धारा को त्याग कर ये भी खड़ी बोली के प्रचारक हो गए और कवि-रूप में सर्व-प्रथम 'सरस्वती' ने इनका स्वागत किया। समाज की सामयिक परिस्थितियों को देश-प्रेम के आदर्श में रँगकर इनकी अनेक रचनाओं ने प्रकाशन पाया। देश-भक्ति की कुछ झाँकी इनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'रामचरित-चिंतामणि' में भी मिलती है। 'रामचरितमानस' का प्रभाव इनके 'रामचरित-चिंतामणि' पर विशेष रूप से पड़ा है। स्फुट रचनाओं में 'राष्ट्र-भारती', 'भारत-भक्ति' और 'देव-सभा' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। उपाध्यायजी की भाषा निर्दोष गति से चलती थी। 'रामचरित-चिंतामणि' की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

फिर शान्त होने पर भरत ने बहुत समझाया सही,
पर अवध का चलना तनिक रघुनाथ को भाया नहीं।
रघुनाथ-आज्ञा से भरत फिर घर गए होकर दुखी,
हत भाग क्यों उद्योग करके स्वप्न में भी हो सुखी॥

× × ×

तुम्हें क्यों न हो राम, सुग्रीव प्यारा,
उसी-सा बुरा हाल है जो तुम्हारा।
मिलेगा कभी निर्बली क्या बली से ?
सदा प्रीति होगी छली की छली से।

——o——

द्विवेदी-परम्परा के कुछ अन्य कवि—

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव-क्षेत्र के कवियों में पण्डित गिरधर शर्मा नवरत्न और पं० लोचनप्रसाद पांडेय के नाम भी उल्लेखनीय हैं। दोनों की कविताओं ने सर्व-प्रथम 'सरस्वती' द्वारा प्रकाशन पाया।

पं० गिरिधर शर्मा ने फुटकर कविताओं के अतिरिक्त अनुवाद का कार्य भी किया है।

पांडेयजी जड़ और चेतन दोनों में अपनी प्रखर भावुकता का अनुभव करते हैं। 'मृगी-दुखमोचन' में इन्होंने एक मृगी की पीड़ा का सुन्दर और मार्मिक चित्रण किया है। फुटकर कविताओं के अतिरिक्त कथात्मक काव्य-रचना भी इन्होंने की है। संक्षेप में यही कहना है कि दोनों कवियों की कविताएँ अधिकतर इतिवृत्तात्मक ही हुईं। पांडेयजी की कविता का एक उदाहरण लीजिए—

> **ग्रामों के प्रान्त में हैं तरुतल करते ढोर बैठे जुगाली,**
> **बैठे हों ग्वाल-बाल ध्वनि मुदित करें बाँसुरी की निराली।**
> **भूखा-प्यासा अकेला पथिक तपन के ताप से क्लांत होके,**
> **छाया में वृक्ष की है गमन कर अहो बैठता श्रांत होके॥**

——o——

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी

त्रिपाठीजी ने स्वच्छन्द रूप से भारत के कोने-कोने की यात्रा की है, अतः प्राकृतिक चित्रों और स्वच्छन्दता से भरा हुआ इनका साहित्यिक हृदय सुन्दर स्वच्छ भाषा में प्रसाद गुणयुक्त काव्य-रचनाएँ करने को उन्मुख हुआ। पं० श्रीधर पाठक की भाँति ये भी कल्पना के विषयों को ही कविता का रूप देते आए हैं। देश-भक्ति और सौन्दर्य-भावना से पूर्ण इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ 'मिलन', 'पथिक', और 'स्वप्न' नामक तीन खण्ड-काव्यों में हैं। 'पथिक' में त्रिपाठीजी ने यात्रा के मार्मिक दृश्यों का वर्णन किया है। 'स्वप्न' की रचना होते-होते नई धारा का प्रभाव त्रिपाठीजी के विचारों पर पड़ चुका था। स्वदेश-प्रेम की भावना इनके काव्य की प्रधान सामग्री रही है, अतएव आगे भी इनका प्रयत्न इसी ओर रहा है। हिन्दी-साहित्य और भाषा के प्रचारार्थ त्रिपाठीजी ने प्रशंसनीय प्रयत्न किये हैं। वर्त्तमान वयोवृद्ध साहित्य-महारथियों में त्रिपाठीजी का उत्तम स्थान है। इनकी कविता के दो-एक उदाहरण पढ़िये—

प्रकृति-चित्रण का एक स्वाभाविक चित्र—

छिटक रही थी स्निग्ध चाँदनी पवन तान भरता था,
ज्योत्स्ना में पत्ते हिलते थे जल छुप्-छुप् करता था।
बैठे हुए शिला पर तन आगे की ओर झुकाए,
पथिक अचेतन अचल एकटक क्षिति पर दृष्टि गड़ाए।

× × × ×

रात-दिवस की बूंदों द्वारा,
तन-घट से परिमित यौवन जल।
है निकला जा रहा निरन्तर,
यह रुक सकता नहीं एक पल।

लाला भगवानदीन 'दीन'

इनकी कविताएँ 'दीन' उपनाम से होती थीं। दीनजी ने हिन्दी के प्राचीन काव्य-ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया था। इनकी अभिलाषा भी यही थी कि हिन्दी के साहित्यिक विदेशियों के प्रभाव में अपनी परम्परा को न बदलें। नई धारा वालों से इनकी अप्रसन्नता का यही कारण था। व्रजभाषा के काव्य-क्षेत्र से निकल कर लाला भगवानदीनजी ने खड़ी बोली में अधिकतर वीर-रस-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं। 'वीर क्षत्राणी' 'वीर बालक', और 'वीर पंचरत्न' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह 'नवीन वीन' में है। 'नदी में दीन' भी इसका दूसरा नाम है। टीकाकार के नाते दीनजी का पृथक् स्थान है। 'हिन्दी-शब्द-सागर' के सम्पादक-मंडल में दीनजी का भी सहयोग रहा है। हिन्दी अध्यापक और हिन्दी-शिक्षा-प्रचारक के पद से दीनजी ने सराहनीय सेवाएँ की हैं। रामचन्द्रिका, कविप्रिया, दोहावली, और बिहारी सतसई आदि की टीकाएँ दीनजी की स्मृति को विद्यार्थी-समुदाय में सदा हरा-भरा रक्खेंगी। दीनजी की कविता के नमूने देखिये—

ख़ाक़-धूल में मिल जाती है जहाँ महाराजों की शान,
बस गूँगे ही हो रहते हैं जहाँ बड़े वागीश सुजान।
ख़ाली हाथ हिलाते आते कोट्याधीश जहाँ धनवान,
पोथी-पत्रा जहाँ नहीं कुछ रख सकते सुविज्ञ विद्वान।
बकरी से सीधे हो जाते जहाँ पहुँचते ही बलवान,
'दीन' कहै क्या महिमा तेरी जग के अंतिम मित्र मसान।

× × × ×

बहुत दिनों से इश्तियाक़ था कब हुज़ूर का होय नियाज़,
बेनियाज़ ने मक़सद मेरा पूरा किया, बड़ा एज़ाज़।
सुनती हूँ हुज़ूर को अज़हद गाना सुनने का है शौक़,
बन्दी भी इस अपने फ़न में रखती है औरों से फ़ौक़।

पण्डित रूपनारायण पांडेय

पांडेयजी प्रारम्भ में व्रजभाषा के कवि थे। खड़ी बोली की कविता के द्वार खुलते ही इन्होंने भी उसमें प्रवेश किया और अपनी प्रतिभा का सुन्दर चमत्कार दिखाया। संस्कृत-साहित्य का अध्ययन भी पांडेयजी ने किया है, अतः इनकी कविता में हिन्दी-संस्कृत के शब्दों और छन्दों का सुदृढ़ एवं सुन्दर समावेश है। 'पराग' नामक ग्रंथ इनकी प्रसिद्ध कविताओं का संग्रह है। 'दलित कुसुम' और 'वन-विहंगम' नामक सरस और हृदय-स्पर्शी कविताओं ने पांडेय जी का नाम खड़ी बोली के श्रेष्ठ काव्यकारों में रख दिया है। कुछ पद्य-बद्ध कथाओं के रूप में समाज की पतनावस्था पर व्यंग्य-काव्य लिखकर, तथा किसी-किसी स्थान पर प्रेम और सौन्दर्य्य-भावना के चित्र अंकित कर पांडेयजी ने अपने काव्य-साहित्य को बड़ा आकर्षक बनाया है। पण्डित रूपनारायणजी गद्य-लेखक भी बड़े अच्छे हैं। आप 'माधुरी' पत्रिका का सम्पादन बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। पाण्डेयजी की उपालम्भ नामक एक कविता देखिए—

वह चंचलता गई, हुए वे दिन सपने-से,
अर्पण ही कर दिया हृदय अपना अपने से।
पतित कहो तो भले गले से नहीं लगाओ,
चरण-चिन्ह तो हृदय-बीच आकर कर जाओ॥

अछूतों के प्रति आपका एक पद्य पढ़िये—

अपना ही अंग हैं ये अन्त्यज असंख्य इन्हें—
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे।
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो—
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत जाओगे।
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे॥

पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

आरम्भ में इनकी कविताएँ 'त्रिशूल' नाम से प्रकाशित होती रहीं। अब तो हिन्दी-संसार, शुक्लजी के 'सनेही' स्वरूप से पूर्ण परिचित है। व्रज-काव्य-धारा के काल में आपकी रचनाएँ 'रसिक-मित्र' आदि पत्रिकाओं में निरन्तर निकलीं। आजकल, खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में भी सनेहीजी ने यथेष्ट प्रगति की है। पण्डितजी की कविता का मुख्य विषय 'प्रेम' रहा है। अब तो विविध विषयक कविताएँ लिख कर सनेहीजी स्वदेश और भारतीय संस्कृति के उपासक होगए हैं। 'सुकवि' नामक कविता का प्रसिद्ध मासिकपत्र आपके सम्पादकत्व में खूब पनपा है। सनेहीजी की काव्य-भाषा में उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

सनेही हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में से हैं, इनकी कविता की सुन्दर शब्द-योजना और मौलिक भावपूर्णता अत्यन्त प्रशंसनीय है। आपकी

शिष्य-परम्परा भी अच्छी है। आपने प्रोत्साहन देकर कितने ही नवयुवकों को हिन्दी का प्रसिद्ध कवि बना दिया। सनेहीजी की कविताएँ हिन्दी के लिये गौरव-रूप हैं। वे सरल, बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में बड़ी लोकप्रिय होती हैं। उदाहरण देखिये—

घूमता कुलाल-चक्र कितनी ही तीव्रता से,
एक रेखा सुस्थिर, छिपी है चकफेरे में।
छिपी रहती है मंद मुसकान-छवि-छाया,
भाग्य-भामिनी के तीखे तेवर-तरेरे में।
आशा-द्वार खुलते भी लगती नहीं है देर,
डालती निराशा जब चित्त घोर घेरे में।
क्रांति में 'सनेही' एक शांति का निवास छिपा,
प्रबल प्रकाश छिपा अधिक अँधेरे में॥

× × × ×

मौन पतंग प्राण देता है समझ प्रेम का मोल।
मौन विरह में मैं जलता हूँ रहकर अचल अबोल।
प्रियतम निष्ठुर है, होने दे, तू मत जिह्वा खोल।
आग न लगा हृदय में मेरे अपना हृदय टटोल॥

———o———

आधुनिक काव्य

छायावाद

कवि का उत्तरदायित्व महान् है। किसी भी देश और किसी भी काल में जागृति उत्पन्न करना देश और जाति के प्रति सच्चा अनुराग प्रदर्शित करना है। जहाँ ऊँघते, मदमाते देशवासियों की जर्जर जीवन-नौका को पार लगाने के लिये अनेक देशभक्त कर्णधार पतवार अपने हाथ में लेते हैं, वहाँ चैतन्य भावों का भाण्डार लेकर एक कवि भी अपनी वाणी से भीषण उथल-पुथल कर सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने पर विदित होगा कि रीतिकालीन काव्य-परम्परा, आधुनिक काव्य-दिवाकर की द्वितीय किरण के दर्शन कर तुहिन-बिन्दु-सी विलीन होगई। इसका कारण स्पष्ट है। आश्रय-दाताओं के आश्रित कवि-मंडल में ऐश्वर्य और शृङ्गार की दुर्गन्ध आने लगी थी। और आगे चलिये, भारतेन्दु और द्विवेदी-युग की कविता में समाज की स्पष्ट छाया थी, देशभक्ति की सजीव तस्वीर थी। नई भाषा का नया ढर्रा था। फिर भी इस काव्य-धारा पर स्थायी बाँध लगाने के लिए विशाल प्रयत्न क्यों हुए? इसका भी कारण स्पष्ट है। जब नियम-बद्ध जीवन ग्रहण कर, समाज-सुधार-सम्बन्धी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों का राग अलापने वाला भोला उपयोगितावादी कवि गाता ही रहे, और उसकी काव्य-साधना को महत्त्व देने वाला कोई सहृदय सामने नहीं आवे, तो अन्ततः कवि बेचारा क्या अनन्त की ओर भी न उड़े? स्थूल विषयों पर ठस्स काव्यरचना करते हुए, छन्दों के बन्धन में, इतिवृत्तात्मक अभिव्यंजना में, क्या उसे सुख और सन्तोष मिलेगा? कवि उस रूढ़ि-ग्रस्त काव्य-परम्परा को कभी अङ्गीकार नहीं करेगा जिसकी ध्वनि स्नेह से सुनने वाला कोई भूला-भटका भी न हो। संसार का प्रत्येक प्राणी परिवर्तन-प्रिय है। हम हिन्दी-साहित्य में 'छायावाद' के प्रवेश की बात कह रहे थे। भारत की संस्कृति और प्राचीन समाज-व्यवस्था को समझने की बुद्धि भारत के गोरे शासकों में बिल्कुल भी दिखाई

नहीं दी। अतः समाज उपेक्षित रहा, मरता रहा, पिसता रहा। वह आशा की ज्योति देख कर मुसकाया भी, किन्तु फिर वही गहन अन्धकार! कवियों ने कहा, जब संसार हमारा साथ नहीं देता, हमारे शासक हमें पशुवत् समझते हैं, तो हम क्यों ऐसे क्रूर-मण्डल से सहयोग और समझौते की बात करें। हम अपना संसार ही अलग बनाएँगे। वन-उपवन और प्रकृति हमारी क्रीड़ा-स्थली होंगी। निर्झर और सरिताएँ हमारे प्रेम-मिलन के तरल तट निर्माण करेंगे। आकाश में हमारी कल्पना का सदन होगा। पर्वतों की उच्चतम चोटियों पर हमारा गौरव निवास करेगा। स्वच्छन्दता का विशाल वैभव-ध्वज क्षितिज के इस कौने से उस कौने तक फहरायगा। कहने का प्रयोजन यह कि इन कवियों ने स्थूल जगत् से नाता तोड़ कर सूक्ष्म संसार का निर्माण कर डाला। कवियों की ठेस खाई हुई भावना भौतिकता के विरोध में भभक उठी और इसी स्थूल और सूक्ष्म के विद्रोह को लेकर जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई, विद्वानों ने उसका नामकरण किया 'छायावाद'।

छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द छन्दों में अपनी अनुभूतियों का नया चित्रण आरम्भ किया। पुरानी भाषा में नया जीवन उँड़ेला गया। देशी और विदेशी अलंकारों का प्रयोग कर कविता में अनोखा रंग छिड़का। शब्दों में ध्वनि का प्राधान्य पाया जाने लगा। संगीतमय काव्य की लहर ने साहित्यिक-मण्डल को चकित कर दिया। इस प्रकार काव्य-शैली और काव्य-कला-सम्बन्धी जितने भी सुन्दर परिवर्तन हो सके, छायावादी कवियों ने अपने काव्यों में किये।

इस काल की कविता का रुख प्रकृति-सौन्दर्य और मानव-सौन्दर्य के अन्तर्बाह्य चित्रण की ओर ही नहीं रहा, प्रत्युत कवियों ने सहृदयता से काम लेकर उपेक्षित विषयों की भी मार्मिक व्यंजना की। 'पंतजी' ने 'ग्राम्या' में दुखी भारत को हृदय से लगा कर करुणा के अश्रु बहाये। 'निरालाजी' ने 'विधवा', 'भिखारी' और 'कुकुरमुत्ता' लिखे। अनेक कवि आज जर्जर मानवता का चित्रांकन कर रहे हैं।

छायावादी कवियों का स्पष्ट व्यक्तित्व उनकी कविताओं में मिलेगा। प्राचीन रीति-कवियों में गिने-चुने कवि ही अपने व्यक्तित्व की झांकी अङ्कित कर पाए थे। आज तो कविता की प्रथम पंक्ति पढ़ कर ही आप कह देंगे—अमुक 'प्रसाद' की है, अमुक 'निराला' की और अमुक 'पंत' की। 'महादेवी' की कविता के आंसू अलग छलक आते हैं। जिस कविता में कवि की आत्मा का सत्य, शिव या सुन्दर कोई भी स्वरूप हो वह कविता देश के हित में कल्याणमयी अवश्य है। छायावादी काव्य-धारा में 'रहस्यवाद' नामक एक और धारा है। कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के रहस्यमय भावों का प्रभाव हिन्दी की कविता पर पड़ा। रहस्यवाद का वास्तविक अर्थ यह है कि कविगण स्वच्छन्द रूप से अलौकिक रहस्यों के सम्बन्ध में अध्ययन और चिन्तन करें, और अपनी जिज्ञासा-शान्ति के परिणाम-स्वरूप कुछ धार्मिक सिद्धांतों का प्रयोग काव्यमय—कलामय भाषा में करदें। वही रहस्यवादी कविता है। छायावाद के प्रमुख कवियों ने अपने दार्शनिक विचारों की सुन्दर विवेचना की है।

श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता में दुःखवाद की झलक मिलती है। उनके दार्शनिक विचारों की विवेचना बौद्ध-दर्शन के प्रभावान्तर्गत हुई है। अतः वैराग्य के रंग में ही कवयित्री ने संसार का कल्याण-गान गाया है। अद्वैतवाद की भावना को लेकर 'प्रसाद' और 'निरालाजी' ने अपने उत्तम विचार प्रकट किये हैं। हालावादी कवि 'बच्चन' ने भी अपनी 'मधुशाला' की सुन्दर प्रतिष्ठा की है। हिन्दू कवि ने मन्दिर की पावन भूमि में समाधिष्ठ परमात्मा की अर्चना की। मुसलमान कवि ने मस्जिद में अपने धर्म की प्रचार-भूमि निर्माण की। इधर स्वच्छन्दवादी (छायावादी) काव्य-परम्परा के कवि 'बच्चन' ने भी अपने दार्शनिक सिद्धान्तानुसार 'मधुशाला' में मादक सुगन्ध से पूर्ण 'मधुकलश' के निकट एक 'मधुबाला' को बैठाया है।

आधुनिक काल की नवीन काव्य-परम्परा के प्रमुख कवियों के विषय में हमें संक्षेप में कहना है। पड़ोस के प्रकरण में देखिये।

——o——

ठाकुर गोपालशरणसिंह

आचार्य द्विवेदी ने ठाकुर साहब की कविता की खूब सराहना की है। इनकी सब कविताओं के पाँच संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता', 'ज्योतिष्मती' और 'कादम्बिनी' इन संग्रहों के नाम हैं। ठाकुरसाहब की कविता खड़ी बोली में होती थी, किन्तु व्रजभाषा का-सा माधुर्य उसमें रहता था। उर्दू के शब्द और मुहावरों के प्रयोग भी इनकी भाषा में मिलते हैं। देश की सामाजिक दशा का चित्रण ठाकुर गोपालशरणजी ने बड़े हृदयग्राही ढंग से किया है। सरलतापूर्वक भाव-व्यंजना करना ठाकुरसाहब को अधिक अच्छा लगता था। विषयोचित भाषा, रस और अलंकार के प्रयोग ही अधिकतर इन्होंने अपनी कविता में किए हैं। 'अभागिनी' को सम्बोधित कर लिखी गई एक कविता देखिए—

चुकती है नहीं निशा तेरी, है कभी प्रभात नहीं होता,
तेरे सोहाग का सुख, बाले ! आजीवन रहता है सोता।
हैं फूल फूल जाते मधु में, सुरभित मलयानिल बहती है,
सब लता-बल्लियाँ खिलती हैं, बस तू मुरझाई रहती है।
सब आशाएँ-अभिलाषाएँ, उर-कारागृह में बंद हुईं,
तेरे मन की दुख-ज्वालाएँ, मेरे मन में हैं छन्द हुईं॥

——o——

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी

'भारतीय आत्मा' के नाम से भी ये रचनाएँ करते रहे हैं। राष्ट्रिय, भक्तिपूर्ण और रहस्यमयी भावना को लेकर कविता करने वाले कवियों में आपका प्रमुख स्थान है। आपकी भाषा-शैली और गद्य-रचना-शैली भी काव्यमय हैं। आप बड़े चिन्तनशील मौलिक साहित्यकार हैं।

चतुर्वेदीजी की रचनाओं में इनका गम्भीर व्यक्तित्व निहित है। इनकी विचारशीलता, तन्मयता तथा स्वदेश के कल्याणकारी भावों के प्रति निर्भीकता विशेष रूप से इनकी राष्ट्रिय रचनाओं में देख पड़ती हैं। छायावादी उड़ान

का प्रयोग भी इन्होंने अपनी रचनाओं को रोचक और ललित बनाने के लिये किया है। जीवन की परिस्थितियों से अनुभूति-संचय करके ही ये लेखनी उठाते हैं। मध्यप्रदेश में खंडवा नामक स्थान से प्रकाशित होने वाले 'कर्मयोगी' नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र के यशस्वी सम्पादक आप ही हैं। आपकी सुन्दर कविता का एक उदाहरण देखिये—

महलों पर कुटियों को वारो, पकवानों पर दूध-दही,
राज-पथों पर कुन्जें वारो, मंचों पर गोलोक-मही।
सरदारों पर ग्वाल और नागरियों पर व्रज-बालाएँ,
हीर-हार पर वार लाड़ले वनमाली वन-मालाएँ।
छीनूँगी निधि नहीं किसी सौभागिनि पुण्य प्रमोदा की,
लाल ! वारना नहीं किसी पर गोद ग़रीब यशोदा की।

पण्डित अनूप शर्मा

शर्माजी हिन्दी के विख्यात कवि-मंडल में अनुपम प्रतिभा लेकर चमके हैं। पहले व्रजभाषा में भी इन्होंने रचनाएँ कीं। खड़ी बोली में 'सुनाल', 'सिद्धार्थ', और 'सुमनांजलि' इनकी प्रसिद्ध कविता-पुस्तकें हैं। प्रथम पुस्तक एक खंड-काव्य है, द्वितीय प्रबन्ध-काव्य, तृतीय में इनकी फुटकर कविताएँ संगृहीत हैं। अनूपजी की कविता में भाषा का सजीव प्रवाह रहता है। भावों की दृष्टि से यदि इनकी कविता परखी जाय तो उसमें वीर-रस, प्राचीन वैभव, संस्कृति और सामयिक ज्ञान-वृद्धि की सामग्री पाते चले जाइये। जिस विषय को भी शर्माजी ने ग्रहण किया है, उसका मार्मिक विश्लेषण करके ही छोड़ा है। सरसता और लालित्य तो इनके काव्य की विशेषताएँ हैं ही। एक उदाहरण देखिये—

होता नीच नृत्य महा दारुण दरिद्रता का,
भूख से प्रजा में एक तड़प समाई है।
परम प्रचण्ड पारतन्त्र्य के पयोनिधि की,
कहर मचाती हुई लहर सिधाई है।

भौंर में पड़ा हुआ समाज का जहाज आज,
डूबा जो नहीं तो डूबने की घड़ी आई है।
तोष गया, रोष गया, जोश—औ'ख़रोश गया,
होश क्यों गया ? तुम्हें कहाँ की नींद आई है ॥

—o—

'हितैषीजी'

व्रजभाषा का मधु खड़ी बोली के कवित्त-सवैयों में उँड़ेलने वाले कवियों में परिडत जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' का सराहनीय प्रयत्न है। 'कल्लोलिनी' और 'नवोदिता' में इनकी सरस और भावपूर्ण कविताओं का सुन्दर संग्रह है। हितैषीजी की कविता भावपूर्ण, चमत्कारिणी और सरस होती है। ये रससिद्ध कवि हैं। हितैषीजी की रचनाओं से परिचय प्राप्त कीजिये—

हूँ, 'हितैषी' सताया हुआ किसी का, हर तौर किसी का बिसारा हुआ।
घर से किसी के हूं निकाला हुआ, दर से किसी के दुतकारा हुआ ॥
नज़रों से गिराया हुआ किसीका, दिल से किसीका हूँ उतारा हुआ।
अजी हाल हमारा हो पूछते क्या ? हूँ मुसीबत का इक मारा हुआ ॥

—o—

श्री सियारामशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के कनिष्ठ भ्राता सियारामशरणजी हिंदी-कविता के सच्चे पुजारियों में से हैं। सहृदयता, सहानुभूति और अध्ययनशीलता के गुणों से सम्पन्न गुप्तजी जब कविता का विषय खोलने बैठते हैं, तो अपनी रचना में समाज-कल्याण की ध्वनि भरकर ही इन्हें शान्ति मिलती है। मार्मिक चित्रण करने में इनकी प्रतिभा ने खूब विकास पाया है। छोटी, शिक्षाप्रद, पद्यमय कथाओं का वर्णन करने में इनकी लेखनी बड़ी प्रखरता से चली है। कोमल-कांत पदावली में गुप्तजी ने सामाजिक पतन और देश की दासता के विरोधस्वरूप तीक्ष्ण वाणी में अपनी खिन्नता प्रकट की है। भारत की प्रशंसा में कवि कहता है—

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे।
शौर्य-वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे।
रोम, मिस्र, चीनादि काँपते रहते सारे।
यूनानी तो अभी-अभी हमसे हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय।
फिर एकबार हे विश्व तुम गाओ भारत की विजय॥

एक और उदाहरण लीजिये—

हे जननी, हे जन्म-दायिनी जननी मेरी,
हो जाता मन विकल याद आते ही तेरी।
समझा तूने सदा मुझे आँखों का तारा,
मुझे समझती रही सदा प्राणों से प्यारा।

———o———

बाबू जयशंकरप्रसाद

संवत् १६४६ में बाबू जयशंकरप्रसाद ने काशी में जन्म पाया। बाल्यावस्था से ही इनकी रुचि काव्य की ओर थी। व्रजभाषा की कविता के प्रवाह में इन्होंने भी अपने 'प्रेम-पथिक' के स्वर प्रवाहित किये। किन्तु खड़ी बोली के विस्तृत क्षेत्र में इनकी प्रतिभा ने अद्भुत विकास पाया। प्रसाद जी ने हिन्दी-कविता के इतिवृत्तात्मक रुख को अपनी छायावादी धारा के प्रयोग से लगभग बदल ही दिया। केवल कवि के नाते ही प्रसादजी का हिन्दी-संसार में आदर नहीं; आप श्रेष्ठ नाटककार थे, उपन्यासकार थे और गल्प-लेखन में भी सिद्ध-हस्त थे। हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी और फ़ारसी का अध्ययन इन्होंने घर पर ही किया था।

प्रसादजी की कविता का विकास हिन्दी-काव्य की प्रगति के साथ-साथ क़दम मिलाकर हुआ है। द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मक काव्य-धारा से हटकर इन्होंने भावपूर्ण और अतुकान्त रहस्यवादी रचनाओं का सुन्दर सृजन किया। इससे भी आगे बढ़ कर कवि प्रसाद ने एक कमनीय महा-

काव्य की रचना-द्वारा हिन्दी का गौरव बढ़ाया। 'आंसू', 'झरना', 'लहर' और 'कामायिनी' आदि काव्य-ग्रन्थों में प्रसादजी का भाव-सौन्दर्य और गम्भीर चिन्तन भरपूर मिलता है। वास्तव में देखा जाय तो प्रसादजी की कविताओं में यौवन का अनूठा उन्माद है। उनके मृदुल गीति-पूर्ण उद्‌गारों में प्रेम की पुकार है। किन्तु उनकी प्रेम-भावना लौकिक प्रेम की उन्मत्त पीड़ा और अश्लीलता से परे भगवद्भक्ति की छाया बनकर चलती है। इस कवि का संकेत अनंत सत्ता में लीन होने के लिये ही हुआ है। जीवन के सत्य का चिन्तनपूर्ण चित्रण इस कवि की एक-एक पंक्ति में अङ्कित है। 'कामायिनी' नामक प्रबन्ध-काव्य में कवि प्रसाद की प्रतिभा का पूर्ण विकसित रूप है। इस ग्रंथकी कथा वैदिक साहित्य में से ली गई है। मनु, श्रद्धा (कामायिनी) और इड़ा कथा के प्रधान पात्र हैं। मनु द्वारा निर्मित एक आदर्श मानव-सृष्टि 'कामायिनी' के सर्गों में प्रतिष्ठित है।

प्रकृति-चित्रण में प्रसादजी की तूलिका कच्चे रंगों से सहायता नहीं लेती। पक्के आकर्षक रंगों में प्रकृति-सुन्दरी का भावपूर्ण चित्रांकन करने में उन्होंने विशेष निपुणता का परिचय दिया है। जहाँ करुणा, वेदना, स्नेह, श्रद्धा, भक्ति और स्वदेश-प्रेम जैसे मार्मिक स्थलों की अभिव्यंजना कवि ने की है, वहाँ उसके उन्नत विचार और गम्भीर चिन्तन की प्रशंसा में नत होजाना पड़ता है। बौद्धों के दर्शन से प्रसादजी को बड़ा प्रेम था। इनके नाटकों में उसका प्रसंग मिलता है। भारतीय अद्वैतवाद और बौद्धों की स्संकृति का अध्ययन ही सम्भवतः प्रसादजी को सौन्दर्योपासना और प्रेम-भक्ति के काव्य-क्षेत्र से मोड़कर जीवन के गहन एकाकी चिन्तन-क्षेत्र में ले आया। यहीं आकर कवि की प्रतिभा अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुई और 'कामायिनी' जैसी अमूल्य भेंट हिन्दी-संसार को देकर अपने साधक को लेगई।

प्रसादजी के गीतों में एक अनोखी मनोहरता है। भाषा में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग होते हुए भी कोमलता का कहीं अभाव नहीं है। मृदुलता और भाव-तल्लीनता इनकी कविता के विशेष गुण हैं। कवि प्रसाद के

अनेक काव्य-ग्रंथों के विषय में पृथक्-पृथक् न लिखकर यहाँ केवल उनकी नामावली ही दे सकते हैं। वह यों है, १—प्रेम-पथिक २—चित्राधार ३—कानन-कुसुम ४—करुणालय ५—महाराणा का महत्त्व ६—झरना ७—आँसू ८—लहर और ९—कामायिनी ।

इनकी कविताओं में से कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं। पहले कामायिनी के 'आशा' सर्ग में से ब्रह्म की सत्ता का आभास देखिए—

महा नील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान ।
ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण, किसका करते-से संधान ॥
छिप जाते हैं और निकलते, आकर्षण में खिंचे हुए ।
तृण-वीरुध लहलहे हो रहे, किसके रस से सिंचे हुए ॥
हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता ।
कैसे हो ! क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ॥

'लहर' में कवि जीवन के कोलाहल से ऊब कर सहसा गा उठता है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे ।
जिस निर्जन में सागर-लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो—
तज कोलाहल की अवनी रे ।

'आंसू' की कुछ पंक्तियां देखिये—

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई ।
दुर्दिन में 'आंसू' बनकर, वह आज बरसने आई ॥
× × × ×
शीतल समीर आता है, कर पावन परस तुम्हारा ।
मैं सिहर उठा करता हूँ, बरसाकर आँसू-धारा ॥
× × × ×

छिप गईं कहां छूकर वे, मलयज की मृदुल हिलोरें।
क्यों घूम गईं हैं आकर, करुणा-कटाक्ष की कोरें ॥
× × × ×
नीलिमा शयन पर बैठी, अपने नभ के आंगन में।
विस्मृति का नील-नलिन रस, बरसो अपांग के घनसे ॥
× × ×
काली आंखों में कितनी, यौवन के मद की लाली।
मानक-मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली ॥

'लहर' का एक मधुर गीत देखिये—

बीती विभावरी, जागरी !
अम्बर पन-घट में डुबो रही तारा-घट उषा-नागरी !
खगकुल कुल-कुल सर बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई, मधु मुकुल नवल रस गागरी।
बीती विभावरी, जागरी !

कुछ क्षण कवि की राष्ट्रिय कविता की झांकी और कीजिए—

हिमालय के आँगन में उसे,
प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया,
और पहिनाया हीरक-हार ॥
जगे हम लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नाश,
अखिल संसृति हो उठी अशोक ॥

× × × ×

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥

सरस-तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा ॥

प्रसादजी के नाटकों में गीतों की रचनाएँ बड़ी लालित्यपूर्ण बन पड़ी हैं। उनमें रस है, ध्वनि है, गति है, और भाव तथा भाषा का अद्भुत मिठास है। देखिये—

'तुम कनक-किरन के अंतराल से,
लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
नतमस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस-कन ढरते,
हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो,
मौन बने रहते हो क्यों ? तुम कनक.......'



पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

संवत् १९५५ में 'निरालाजी' का जन्म हुआ था। ज़िला मेदिनीपुर (बंगाल) के अन्तर्गत महिषादल नामक राज्य में पण्डितजी की जन्म-भूमि है। आजकल आप प्रयाग की एक एकान्त गली में फ़क़ीरों की भाँति निवास करते हैं।

कविवर 'निराला' हिन्दी-साहित्य के स्वाभिमानी सेवकों में ज्योतिर्मय प्रकाश-स्तम्भ की भाँति अटल, उन्नत मस्तक उठाये भारत का गौरव बढ़ा रहे हैं। निरालाजी की प्रतिभा मर्दानी है किन्तु प्रेम और भक्ति की कोमलतम भावनाएँ उनकी वाणी से स्पन्दित अवश्य होती हैं। कवि के उद्‌गारों में अद्वैतवाद का तन्मय राग है। जीवन की कठोरताओं, संघर्षों और उतार-चढ़ावों के पाषाण-वक्ष पर पग रखता हुआ हमारा कवि आशा-पथ से विचलित कहीं नहीं होता—

'एक दिन थम जायगा रोदन तुम्हारे प्रेम-अंचल में'

इत्यादि पंक्तियाँ जब प्रेमी की साधना को धीरज—आश्वासन देती हैं, तब

हम सोचते हैं—निरालाजी के विचारों में अपने आराध्य के प्रति कितना स्पष्ट विश्वास है, कितनी ठोस लगन है।

कवि निराला के दार्शनिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो उनकी अद्वैतवादी सूक्ष्म दृष्टि और चिन्तन-गांभीर्य को संगीतमय शब्दों से मढ़ा पाकर चकित होजाना पड़ता है। 'जागो फिर एक वार', 'मैं और तुम', 'जागरण' और 'पंचवटी-प्रसंग' कवि की दार्शनिक भावना के उज्ज्वल और उत्तम उदाहरण हैं। किन्तु सच्चा कवि अपनी संस्कृति के आधार पर लोक-चिन्ता की भावना लेकर ही आगे बढ़ता है। कविवर श्री निरालाजी भी वैदान्तिक साहित्य की पृष्ठ-भूमि तैयार करने के उपरान्त जनसाधारण के कवि-रूप में अग्रसर हुए। 'अनामिका' के बाद 'परिमल' में निरालाजी के काव्य की झांकी पाकर लोगों ने उनकी सहृदयता और उनके मानव-पक्ष को पहचाना और उनकी दिल खोलकर सराहना की।

'परिमल' की भूमिका में निरालाजी लिखते हैं—"............ ऐसी परिस्थितियों में से 'परिमल' निकल रहा है। इसमें मेरी प्राथमिक अधिकांश चुनी हुई रचनाएँ हैं। इसके मैंने तीन खंड किये हैं। प्रथम खंड में सम-मात्रिक, सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं जिनके लिए हिन्दी के लक्षण-ग्रन्थों के द्वारपालों को 'प्रवेश-निषेध' या 'भीतर जाने की सख़्त मुमानियत है' कहने की ज़रूरत शायद न होगी। दूसरे खण्ड में विषम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं। इस ढंग के साथ मेरे 'समवायः सखा मतः' या 'एक क्रियं भवेन्मित्रम्' सुकुमार कवि-मित्र पंतजी के ढंग का साम्य है; यह भी उसी तरह ह्रस्व-दीर्घ-मात्रिक संगीत पर चलता है। पन्तजी के छन्दों में स्वर की बराबर लड़ियाँ या सम-मात्राएँ अधिक मिलती हैं; इसमें बहुत कम—प्रायः नहीं। ह्रस्व-दीर्घ-मात्रिक सङ्गीत का मुक्त रूप ऐसा ही होगा, जहाँ स्वर के उत्थान तथा पतन पर ही ध्यान रहता है, और भावना प्रसरित होती चली जाती है। तीसरे खण्ड में स्वच्छन्द छन्द हैं।"

निरालाजी ने देशभक्ति, प्रकृति-चित्रण और मनोवैज्ञानिक चित्रण को

लक्ष्य करते हुए भी सुन्दर और टिकाऊ रचनाएँ की हैं। सफल शब्द-चित्रण के लिए निरालाजी की लेखनी में भारी बल था। गम्भीर और हृदयग्राही भाव-व्यंजना के अनेक उदाहरण कवि निराला की कविताओं में मिलते हैं। स्वतंत्रताप्रिय, स्वच्छन्द छन्दवादी कवि निराला की संस्कृतयुक्त कोमल-कान्त पदावली के प्रयोग में छिपे हुए, विविध चिन्तन-जन्य आदर्श भावों के विहंगावलोकन मात्र से काम नहीं चल सकता। निरालाजी के काव्य-ग्रंथों के गम्भीर और मननपूर्ण अध्ययन की आवश्यकता है। निरालाजी नवीनतम साहित्यिक परम्परा के चुने हुए निर्माताओं में से हैं। काव्य के अतिरिक्त उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध भी इन्होंने उच्च-कोटि के लिखे हैं। पण्डितजी की काव्य-रचनाओं में 'तुलसीदास', 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अणिमा' और 'कुकुरमुत्ता' उल्लेखनीय हैं। आरम्भ में कवि की मातृभाषा बँगला रही है, अतः इस भाषा में सिद्धहस्त होने के कारण कवीन्द्र रवीन्द्र की कविता का विस्तृत अध्ययन भी निरालाजी ने किया था। 'रवीन्द्रकविता-कानन' नामक पुस्तक में कवि ने कवीन्द्र के काव्य की हिन्दी में सुन्दर व्याख्या की है। उर्दू-फ़ारसी और अँगरेज़ी के शब्दों का प्रयोग निरालाजी ने ख़ूब किया है। अन्त में कवि की कविता के कुछ सुन्दर उदाहरण देकर हम आगे बढ़ते हैं। प्रकृति की सुरम्य पृष्ठ-भूमि पर कवि के दार्शनिक विचार कैसी शान्त गति से उठे हैं, देखिये—

बीत चुका शीत, दिन वैभव का दीर्घतर
डूब चुका पश्चिम में, तारक-प्रदीप-कर
स्निग्ध-शान्त-दृष्टि संध्या चली गई मन्द-मन्द
प्रिय की समाधि-ओर, हो गया है रव बन्द
विहगों का नीड़ों पर, केवल गंगा का स्वर
सत्य ज्यों शाश्वत सुन पड़ता है स्पष्टतर
बहता है साथ गत गौरव का दीर्घ काल
प्रहत—तरङ्ग—कर—ललित—तरल—ताल
....

तट पर उपवन सुरम्य, मैं मौन मन
बैठा देखता हूँ तारतम्य विश्व का सघन
जाह्नवी को घेर कर आप उठे ज्यों करार
त्यों ही नभ और पृथ्वी लिए ज्योत्स्ना ज्योतिर्धार
सूक्ष्मतम होता हुआ जैसे तत्व ऊपर को
गया, श्रेष्ठ मान लिया लोगों ने महाम्बर को
स्वर्ग त्यों धरा से श्रेष्ठ, बड़ी देह से कल्पना
श्रेष्ठ सृष्टि स्वर्ग की है' खड़ी सशरीर ज्योत्स्ना

कवि की संगीतमय वाणी में उसकी 'प्रिया' के प्रति भाव-व्यंजना कैसी मधुर ध्वनि लेकर उतरी है—

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका;
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल-कामिनी,
मेरे कुञ्ज-कुटीर-द्वार की कोमल-चरण गामिनी;
नूपुर मधुर बज रहे तेरे,
सब श्रृङ्गार सज रहे तेरे,
अलक-सुगन्ध मन्द मलयानिल धीरे-धीरे ढोती,
पथ श्रान्त तू सुप्त कांत की स्मृति में चलकर सोती।
कितने वर्णों में, कितने चरणों में तू उठ खड़ी हुई,
कितने बन्दों में, कितने छन्दों में तेरी लड़ी गई,
कितने ग्रंथों में, कितने पन्थों में, देखा, पढ़ी गई।
तेरी अनुपम गाथा,
मैंने वन में अपने मन में
जिसे कभी गाया था।

'जागो फिर एक बार' में कवि की आत्म-चेतना मानो मानव-सृष्टि को उकसाकर उन्नति के उच्चतम शैल पर चढ़ा देगी—

जागो फिर एक वार !

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें

अरुण-पंख तरुण-किरण

खड़ी खोलती है द्वार—

जागो फिर एक वार !

आँखें अलियों-सी

किस मधु की गलियों में फँसी;

बन्द कर पाँखें

पी रही हैं मधु मौन

या सोई कमल-कोरकों में ?—

फिर अन्तिम उच्छ्वास में कवि कहता है—

जागो फिर एक वार !

उगे अरुणाचल में रवि

आई भारती-रति कवि-कंठ में,

क्षण-क्षण में परिवर्तित

होते रहे प्रकृति-पट

गया दिन, आई रात,

गई रात, खुला दिन,

ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,

वर्ष कितने ही हज़ार

जागो फिर एक वार !

इसी कविता के दूसरे खंड का अन्तिम भाव-विस्फोट देखिये। कवि जन-कल्याण की भावना में कितना तल्लीन है—

महामंत्र ऋषियों का

अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ—

तुम हो महान, तुम सदा हो महान,

है नश्वर यह दीन भाव,

कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व-भार—
जागो फिर एक बार !

कवि की लेखनी ने भारतीय विधवा का कैसा मार्मिक चित्रण किया है—

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।

ऐसा ही कारुणिक चित्रण एक भिखारी का देखिये—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।

परिमल में संगृहीत लगभग सब रचनाएँ निरालाजी की ललित, सरस और अमर हैं।

——०——

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

संवत् १६५८ में पंतजी का जन्म अलमोड़े में हुआ था। प्रकृति की ओर पंतजी बाल्यावस्था से ही आकर्षित हैं। अँगरेजी-विद्यालयों का कृत्रिम जीवन आपको रुचिकर न मालूम हुआ। अन्त में प्रकृति की मनोरमता में लीन होते हुए, कवि पन्त हिन्दी-कविता के स्वच्छन्द वातावरण में आ विराजे। नई काव्य-धारा को अपनी मौलिक और मृदुल भाव-धारा से मिलाकर पंतजी ने हिन्दी-कविता की भाषा में संस्कृतगर्भित खड़ी बोली के कोमलतम स्वरूप को ही स्थान दिया। इनकी भाव-भाषा-प्रणाली, कोमल-कान्त पदावलियों और अँगरेज़ी-कवियों के नवीन भावों का संकेत-मात्र लेकर, मधुर-संगीतमय ध्वनि में मन्थर गति से प्रवाहित हुई।

पन्तजी के काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन करने से विदित होगा कि उनके भाव-क्षेत्र में सौन्दर्य का प्रमुख स्थान है। प्रकृति के अनुपम दृश्य कवि को तन्मय कर देते हैं। प्रकृति की कली-कली, और निर्मल जल से पूर्ण पर्वतमालाएँ कवि की दृष्टि में जीवन के वास्तविक सत्य से पूर्ण हैं। पक्षियों के कलरव में कवि को जीवन की जागृति-ध्वनि सुनाई देती है—

विहग, विहग,
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज
चिर सुभग, सुभग !

यही नहीं, मानव-सौन्दर्य से भी कवि पन्त ने गहरी प्रीति का निर्वाह किया है। सौन्दर्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों अंगों का समान दृष्टि से निरीक्षण करने में कवि ने विशेष रूप से अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। कवीन्द्र रवीन्द्र की रहस्यमई भावना का प्रभाव पन्तजी के काव्य पर भी पड़ा अवश्य है, किन्तु हिन्दी के इस कवि ने किसी 'वाद' के बन्धन में बँध कर अपनी भक्तिपूर्ण प्रेम-विषयक कविताओं का सृजन नहीं किया।

कल्पना-शक्ति का प्रयोग करने में पन्तजी बड़े सिद्धहस्त हैं। इनकी विचार-धारा पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जीवन के अनेक

उत्थान-पतन देखते हुए कवि की प्रतिभा अपनी विकसित अवस्था पाकर लोक-हित और दार्शनिकता की ओर उन्मुख होगई है—

धुन जग का दुर्गम अन्धकार
चुन नाम रूप का अमृत-सार,
मैं खोज रहा खोया प्रकाश
सुलझा जीवन के तार-तार !

पन्तजी के काव्य में जितना भी चरित्र-चित्रण मिलता है, वह विविध रंगों से कलात्मक रूप धारण किये है। लापरवाही की रेखाएँ खोजने का अवसर वहीं मिलता है, जहां कवि अनुभूति से साक्षात्कार किये विना कोरी कल्पना के लोक में दौड़ जाता है। पन्तजी आजकल चिन्तन की गम्भीर अवस्था में प्रविष्ट हैं। भयंकर रुग्णतासे त्राण पाकर, मौत की क़ैद से मुक्त होकर कवि पंत की कविता उन्नत पथ पर मानव-कल्याण का उद्देश्य लेकर ही चलती रहेगी। यहां इनकी पुस्तकों के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक कुछ न लिख कर कवि की विख्यात कृतियों की नामावलीमात्र प्रस्तुत करते हैं:—

१–'वीणा', २–'ग्रन्थि', ३–'पल्लव', ४–'गुँजन', ५–'ज्योत्स्ना', ६–'युगान्त' ७–'ग्राम्या' और आठवीं पुस्तक है 'पल्लविनी' जिसमें कवि ने 'युगान्त' तक की कृतियों में से चुनी हुई कविताएँ संगृहीत की हैं।

अन्त में कवि पन्त की सौन्दर्य-प्रियता को उनकी जन-कल्याण-सम्पन्न काव्य-धारा में बिंधा पाकर हमें कहना पड़ता है कि उनका मार्ग दृढ़ है और वह उनके विराट् व्यक्तित्व को सदियों तक जीवित रखने में सहायक रहेगा। पन्तजी की कुछ सुन्दर रचनाओं के उदाहरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

—परिवर्तन—

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत छवि-जाल,
ज्योति चुंबित जगती का भाल ?

राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार ?
स्वर्ग की सुखमा जब साकार
धरा पर करती थीं अभिसार !
प्रसूनों के शाश्वत शृङ्गार,
(स्वर्ण भृङ्गों के गन्ध विहार)
गूंज उठते थे बारम्बार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार !
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार,
ऋद्धि औ सिद्धि अपार !
अए, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहां वह सत्य वेद विख्यात,
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरचित जरा-मरण भ्रू पात !

–मधु-स्मृति–

उड़ता है जब प्राण !
तुम्हारी सारी का सित छोर,
सौ वसन्त, सौ मलय
हृदय को करते गंध-विभोर !
उड़ता उर से कभी
तुम्हारी सारी का जब छोर !
ग्रीवा मोड़, कभी विलोकती
जब तुम बंकिम कोर,
खिल-खिल पड़ते श्वेत कमल,
नाचती विलोल हिलोर !
ग्रीवा मोड़ हंसिनी-सी,
देखती फेर जब कोर !

जब-जब प्राण ! तुम्हारी मधु स्मृति
देती मुझ को बोर,
जीवन के घन अन्धकार में
हो उठता नव भोर !
मधुर प्रेम की उज्ज्वल स्मृति जब
देती मन को बोर !

—बापू के प्रति—

तुम विश्व मञ्च पर हुए उदित
बन जग-जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिए मन से
कर नर-चरित्र का नवोद्धार
आत्मा को विषयाधार बना
दिशि पल के दृश्यों को सँवार,
गा-गा—'एकोहं बहु स्याम'
हरलिए भेद, भव-भीति भार !

—कलरव—

बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी वी टी—टुट् टुट् !
वे ढाल-ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रम-जर्जर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेह वेदना सने !
ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
भारी है जीवन ! भारी पग !!

कवि पन्त की मंगल-भावना के उद्‌गार देखिये। कैसी सुन्दर कामना है—

मंगल चिर मंगल हो।
मंगलमय सचराचर,
मंगलमय दिशि पल हो। मंगल०
तमस गूढ़ हों भास्वर,
पतित क्षुद्र, उच्च प्रवर,
मृत्यु भीत, नित्य अमर,
अग जग चिर उज्ज्वल हो। मंगल०
.....................''

–धोबियों का नृत्य–

'......उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ' हुडुक घुडुकता ढिम-ढिम ढिन,
मंजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन,
लो, छुन छुन, छुन छुन,
छुन छुन, छुन छुन,
थिरक गुजरिया हरती मन !......'

–भारत माता–

भारत माता
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला-सा आँचल,
गंगा-जमुना में आँसू-जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग-युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी

श्रीमती महादेवी वर्मा

संवत् १९६४ में महादेवीजी का जन्म फ़र्रुख़ाबाद में हुआ था। आपके पिताजी शिक्षा-प्रेमी थे, अतः महादेवीजी को प्रयाग-विश्व-विद्यालय से एम० ए० परीक्षा पास करने का सुन्दर सुयोग प्राप्त हुआ। विद्यार्थी-जीवन से ही कविता की ओर इनकी रुचि थी। आज वर्तमान कवि-समुदाय में कवयित्री महादेवी का भी निराला स्थान है।

श्रीमती महादेवी की कविता अधिकांश विरह-वेदना से भरी है। उसका कारण है। दुख की अवस्था सब पीड़ा-भोगियों के लिए समान होती है। सुख अहंकार की फ़सीलें खड़ी किये विना रहता नहीं। अतः दुखवादी कवि अपने व्यापक दृष्टिकोण से सारे पीड़ाग्रस्त संसार को एक ही सतह पर देखकर उसको अनन्त सुख की ओर ले जाने में रत रहता है। श्रीमती महादेवी का जीवन-सम्बन्धी दर्शन संभवतः यही हो। इनके काव्य का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि श्रीमती वर्मा इस जीवन में तृप्ति नाम की वस्तु पाना दुर्लभ और असाध्य समझ चुकी हैं—

'मेरे छोटे जीवन में, देखा न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें, भरती आँसू के सागर।'

किन्तु तृप्ति-प्राप्ति के साधनों में जो आनन्द मिलता है वह तृप्ति में नहीं—

'इस अचल क्षितिज-रेखा से, तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ पाने के, सारे प्रयत्न हों फीके।'

बौद्ध-दर्शन के अध्ययनानन्तर रहस्यमयी भावना से ओतप्रोत कवयित्री महादेवी की काव्य-धारा अश्रु-कण छलकाती हुई प्रवाहित हुई है।

बहुत दिनों आपने 'चाँद' मासिक पत्रिका का सुन्दर संपादन किया। आज-कल आप एकाकी वियोगिनि की भाँति निवास करती हैं। श्रीमती-महादेवीजी ने गद्य-क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। काव्य-क्षेत्र में इनकी उल्लेखनीय पुस्तकों के नाम ये हैं—'नीहार', 'सांध्यगीत', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'दीपशिखा'। महादेवी वर्मा सरल हिन्दी की कवयित्री हैं। इनकी कविता में संगीत है, आर्द्रता है और मृदुलता है। पढ़ने वाला रमे विना नहीं रह सकता। चित्रांकन करने में श्रीमती जी लेखनी और तूलिका दोनों का कुशल उपयोग करती हैं। 'दीपशिखा' में कवयित्री द्वारा निर्मित चित्रों की सजीव पृष्ठभूमि पर हस्त-लिखित रचनाएँ प्रकाशित हैं। निस्सन्देह आज के छायावादी कवियों में सु-श्री महादेवी वर्मा का उच्च स्थान है। इनकी प्रतिभा की झलक दिखाने के लिए कुछ चुनी हुई रचनाओं के अंश नीचे दिये जाते हैं—

टूट गया वह दर्पण निर्मम!
उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझ में रोदी ममता माया,
अश्रुहास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख मिचौनी,
प्रिय जिसके परदे में 'मैं'-'तुम'।

× × × ×

लाये कौन संदेश नए घन!
अम्बर गर्वित,
हो आया नत,
चिर निस्पन्द हृदय में उसके उमड़े री पुलकों के सावन!
चौंकी निद्रित,
रजनी अलसित,
श्यामल पुलकित कम्पित कर में दमक उठे विद्युत के कंकण!

× × × ×

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !

× × ×

मैं नीर भरी दुख की बदली,
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक-से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली !
मैं नीर भरी दुख की बदली !

× × ×

मोम-सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है !
विरह के रंगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
बरुनियों में उलझ बिखरे स्वप्न के फीके सुमन ले,
खोजने फिर शिथिल पग,
निश्वास-दूत निकल चुका है !
मोम-सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है !

'नीरजा' के कुछ और मृदुल गीतों का रसास्वादन करिये—

मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले हौले बोल !

जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और'।
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे मौर॥
समीरण मत्त उठेगा डोल;
हठीले हौले हौले बोल!

× × × ×

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल;
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल!
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल!

———o———

वर्त्तमान प्रमुख कवियों के विषय में अब तक संक्षेप में वर्णन किया गया। इसी युग के कुछ और प्रतिष्ठित कवियों का वर्णन हमें करना अवश्य है, किन्तु स्थानाभाव के कारण उनका परिचयमात्र देकर हम आगे बढ़ते हैं।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

आप बिहार प्रान्त के निवासी हैं। स्वदेश-प्रेम आपका प्रमुख विषय है। 'रेणुका' नामक काव्य-ग्रंथ में आपकी सुन्दर और सरस कविताओं का संग्रह है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आप काँग्रेस के प्रसिद्ध नेता हैं। कानपुर के 'प्रताप' में आपकी सुन्दर ओजपूर्ण कविताएँ प्रकाशित होती रहती हैं। देश-प्रेम आपका अति प्रिय विषय है। 'कुंकुम' में आपकी पुरानी कविताएँ संगृहीत हैं। संभव है

नवीनजी का नया संग्रह प्रकाशित हो। आप गद्य भी बड़ा सुन्दर लिखते हैं। आपकी लेखनी बड़ी ओजस्विनी है।

श्री हरिवंशराय 'बच्चन'

प्रयाग विश्व-विद्यालय में आप अँगरेज़ी के अध्यापक हैं। हिन्दी-काव्य में 'हालावाद' का प्रयोग सर्वप्रथम आपकी मृदुल लेखनी के चमत्कार से ही हुआ। आपकी कविता और उसकी कोमल मधुर भाषा में एक मादक गति रहती है। 'मधुबाला', 'मधु-शाला', 'निशा-निमंत्रण', 'आकुल अंतर' और 'मधु-कलश' आपकी प्रसिद्ध कविता-पुस्तकें हैं।

श्री गुरुभक्तसिंहजी

खड़ी बोली के प्रसिद्ध वर्त्तमान कवियों में आपका प्रमुख स्थान है। 'नूरजहाँ' नामक प्रबन्ध-काव्य-ग्रंथ की सुन्दर सरस रचना पर आप अनेक बधाइयों के पात्र हैं।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

बाल्य जीवन और देश-प्रेम श्रीमती चौहान की कविता का मुख्य विषय रहा है। महिला कवियों में आजकल आपका श्रेष्ठ स्थान है। स्वाभाविक और भावपूर्ण काव्य-रचना आपका उद्देश्य रहता है। 'मुकुल' में आपकी पुरानी कविताओं का सुन्दर संग्रह है। इस पुस्तक पर 'सेकसरिया पारितोषिक' भी इन्हें मिला है।

श्री रामकुमार वर्मा

वर्माजी की कविता में वैराग्य की सुन्दर अभिव्यंजना रहती है। मधुर, संगीतमय गीत लिखकर आप उनका पाठ भी तन्मय होकर करते हैं। 'चित्रलेखा' में आपने सुन्दर रचनाएँ संगृहीत की हैं। इस पुस्तक पर 'देव-पुरस्कार' भी प्राप्त कर चुके हैं। आज-कल आप प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हैं।

श्री भगवतीचरण वर्मा

आप हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखकों में से हैं। उर्दू और अँगरेजी-कविताओं का गंभीर अध्ययन करके आपने अपनी मौलिक काव्य-धारा को जन्म दिया है। 'मधु-कण' आपका प्रसिद्ध कविता-संग्रह है। 'नूरजहाँ की क़ब्र पर' इस संग्रह की सुन्दर रचना है। आजकल आप चित्रपट सम्बन्धी साहित्य निर्माण कर रहे हैं।

आज की नवीन काव्य-धारा में श्रमपूर्वक भावविसर्जन करने वाले कवियों में पण्डित उदयशंकर भट्ट, श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन', श्री नरेन्द्र, श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' और श्री 'अज्ञेय' जी के नाम उल्लेखनीय हैं।



हिन्दी-गद्य का विकास

जितना सहित्य हिन्दी-पद्य में प्राचीन कलाकारों ने निर्मित किया, उतना गद्य में उपलब्ध नहीं होता। हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग से पूर्व के साहित्य में यदि थोड़ा-बहुत गद्य-साहित्य था, तो व्रजभाषा में ही उसका स्वरूप देखने को मिलता था। कुछ गद्य-ग्रन्थ गोरख-पन्थियों के साहित्य से प्राप्त हुए हैं किन्तु अधिकाँश व्रजभाषा का गद्य भक्तिकाल की कृष्ण-भक्तिशाखा के रचयिताओं द्वारा निर्मित होता रहा। श्री वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ कृत 'शृङ्गार रस मण्डन' और श्री विट्ठलनाथजी के पुत्र गोसाईं गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में बोलचाल की व्रजभाषा के उदाहरण मिलते हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' नामक ग्रंथ में विदेशी शब्दों का मिश्रण भी मिलता है। इन वार्ताओं के एक गद्यांश का नमूना देखिये:—

"......**सो एक दिन श्री महाप्रभुजी के सेवक वैष्णवन की मंडली में आयो। सो खंडन करन लाग्यो। वैष्णवन ने कही 'जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली में तेरे आयबे को काम नहीं। इहाँ खण्डन मण्डन नहीं है।**......"

इसके उपरान्त नाभादास का 'अष्टयाम', वैकुण्ठमणि का 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख माहात्म्य', एक अज्ञात लेखक द्वारा रचित 'नासिकेतोपाख्यान', सुरति मिश्र कृत 'वैताल पच्चीसी' और लाला हीरालाल कृत 'आईन अकबरी की भाषा वचनिका' आदि गद्य-पुस्तकों की रचनाएँ तो हुईं, किन्तु व्रजभाषा का गद्य अविकसित ही रह गया। इस भाषा की गद्य-धारा उचित और उपयुक्त प्रचार-गति से वंचित रहने के कारण आधुनिक काल तक प्रवाहित न होसकी। श्री गोकुलनाथ आदि लेखकों की 'वैष्णवों की वर्ता' में जो व्रजभाषा गद्य का स्वरूप झलका, बस उससे

अधिक उज्ज्वलता वह ग्रहण न कर पाया। अनेक टीकाकारों ने काव्यों की समीक्षा करते हुए व्रजभाषा-गद्य का प्रयोग किया, किन्तु उस भाषा में प्रकटीकरण की शक्ति नहीं है। वाक्यों के अर्थ असंबद्ध हैं। यदि उदाहरण-स्वरूप प्राचीन गद्य के विकसित स्वरूप को प्रदर्शित करना ही हो, तो नीचे दिये हुए उद्धरण का प्रयोग किया जा सकता है—

"सो राजभोग आरती करिकें श्री गुसाईंजी श्री गिरराज ते नीचे उतरे सो आप परासोली पधारे। भीतरिया सेवक रामदासजी प्रभृति और कुम्भनदासजी और श्री गुसाईं के सेवक गोविन्दस्वामी चत्रभुजदास प्रभृति और सब श्री गुसाईंजी के साथ आए। सो आवत ही सूरदास जी सों श्री गुसाईंजी ने पूछौ जो सूरदासजी कैसे हौ? तब सूरदासजी ने श्री गुसाईंजी को दंडौत करिकें कह्यौ, जो महाराज आए हौ महाराज की बाट देखत हुतौ। यह कहिकें सूरदासजी ने एक पद गायौ।......"

इस प्रकार की रचनाएँ अल्पकाल तक होती रहीं, और जब गद्य के लिये खड़ी बोली का क्षेत्र विशेष रूप से तैयार होगया तो व्रज-भाषा-गद्य की प्रगति जहाँ की तहाँ रुक कर रह गई।



खड़ी बोली की गद्य-धारा

मुसलमान शासकों के काल में दिल्ली और मेरठ के आस-पास जो भाषा बोली जाती थी वही आधुनिक हिन्दी-गद्य की प्रारम्भिक अवस्था थी। कुछ समय तक यह भाषा एक सीमित क्षेत्र में ही प्रचार पाती रही, किन्तु जब दिल्ली मुसलमान शासकों की राजधानी बनी, तो राज्य की ओर से भी यही भाषा अपनाई गई। राज्य की भाषा का दूर-दूर तक प्रचार होना स्वाभाविक ही था। वही भाषा आज खड़ी बोली के नाम से गद्य और पद्य दोनों के साहित्य का आधार बनी हुई विकसित होरही है।

आरम्भ में विदेशी मुसलमानों को भारतवर्ष के दिल्ली केन्द्र के आस-पास की खड़ी बोली को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

अतः धीरे-धीरे उन्होंने इस भाषा पर अपनी संस्कृति का रंग चढ़ाना आरम्भ किया। अरबी-फ़ारसी और तुर्की शब्दों के मिलाप से हिन्दी का वह स्वरूप (बुन्देलखण्डी हिंदी, बैसवाड़ी हिंदी आदि की भांति) 'उर्दू-हिन्दी' नाम से पुकारा जाने लगा। इधर हिन्दी अपना अलग विकास पाने लगी थी। उर्दू भी अरबी-फ़ारसी के व्याकरण का आधार पाकर अपना निजी साहित्य-भाण्डार भरती रही। जब अंग्रेज़ों की पताका दिल्ली के दुर्ग पर फहराने लगी तो हिन्दी-व्याकरण का आधार लेकर 'हिन्दुस्तानी' का जन्म हुआ। इस हिन्दुस्तानी भाषा में हिन्दी और उर्दू दोनों के प्रचलित शब्द सम्मिलित किये गए।

जिस 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग अभी तक केवल बोलचाल की भाषा में ही होरहा था, वह आज हिन्दी और उर्दू की प्रतिद्वन्द्विनी बनी हुई है। राष्ट्र के उच्चतम नेता महात्मा गाँधी का आदेश है कि 'हिन्दुस्तानी' में साहित्य-सृजन हो ताकि इस बोलचाल की भाषा में लिखे गए लेख जन-साधारण तक पहुँचें और वे जनता के कल्याण का कारण बनें। कुछ भी हो, हिन्दी का हिन्दुस्तान में विशेष रूप से वन्दनीय स्थान है। हिन्दी की पावन धारा उन्नत हिमशिखरों से उतरकर भागीरथी की भांति मनुष्य-मात्र का कल्याण करती हुई पृथिवी पर प्रवाहित है। इसका साहित्य-सृजन कभी शिथिल न हो सकेगा। यों हिन्दुस्तानी में भी साहित्य-सृजन की अत्यावश्यकता है, किन्तु भारतीय राष्ट्र की मूल राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है। क्योंकि भारत के अधिकतर निवासी इसका प्रयोग करते हैं। उर्दू और हिन्दुस्तानी इसकी शाखाएँ बन कर अपनी उन्नति करें तो इसमें हिन्दी का ही गौरव है।

हम खड़ी बोली के गद्य के विषय में कह रहे थे। इस बोली का गद्य इस के पद्य के समान प्राचीन नहीं है। वास्तव में किसी वस्तु की आवश्यकता जब अनुभव की जाती है, तो शीघ्र ही उसके आविष्कर्ता का अविर्भाव होता है। मुसलमानों के शासन में खड़ी बोली का दूर-दूर तक प्रचार हुआ। किन्तु जब अंग्रेज़ लोग भारत में आए तो अपने साथ व्यापार-

वाणिज्य के विभिन्न साधन लाए। मुद्रण-यन्त्र के आविष्कार ने नए वैज्ञानिक साहित्यों के प्रचार में भारी सहयोग दिया। समाज में भौतिकवाद की लहर-सी दौड़ गई। ऐसी दशा में विचारों का प्रकटीकरण और भिन्न-भिन्न विषयों की विवेचना व समीक्षा की आवश्यकता हुई और खड़ी बोली के गद्य का उदय भी शनैः-शनैः होने लगा। आगे खड़ीबोली के प्रारम्भिक गद्य-लेखकों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

गंग

हिन्दी गद्य का प्रथम निर्माता गंग को स्वीकार किया जा सकता है। गंग सम्राट् अकबर की राजसभा में थे। इनसे पूर्व का कोई गद्य-लेख नहीं मिलता। 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' गंग ने खड़ी बोली के गद्य में लिखी थी।

—o—

मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़'

(1803 – 1881)

'नियाज़' जी फ़ारसी के पण्डित, कवि और लेखक थे। इनका रचा हुआ 'सुखसागर' नामक एक धार्मिक आख्यान है, जो भागवत से अनुवादित किया गया है। इनकी सीधी- शान्त भाषा का उदाहरण देखिये—

"जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सतोवृत्ति है, वह प्राप्त हो और जिससे निज स्वरूप में लय हूजिये।"

—o—

इंशा अल्लाख़ाँ

ख़ाँसाहब उर्दू- फ़ारसी के विद्वान् और कवि थे। मुग़ल-राजसभा में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्होंने 'रानी केतकी की कहानी' लिख कर हिन्दी के आदि मौलिक कहानी-लेखक के नाते अपना नाम अमर कर लिया। इनकी भाषा में चुलबुलाहट, व्यंजना में आमोद-प्रमोद तथा

वाक्यों में मुहाविरेबन्दी और पद्यात्मकता का पुट पाया जाता है। इनकी भाषा-शैली में उर्दू-शब्दों का भी अनूठा तारतम्य रहता है। अतः हिन्दी-उर्दू दोनों भाषा-भाषी इंशाअल्लाखाँ को अपना-अपना कहते हैं। इनकी कहानी के दो-चार वाक्यों को देखिए—

"जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन-भादों के रूप रोने लगी और दोनों के जी में यह आगई—यह कैसी चाहत जिसमें लहू बरसने लगा और अच्छी बातों को जी तरसने लगा।"

———o———

सदल मिश्र

मिश्रजी कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग में अध्यापक थे। इंशा अल्लाखाँ की भांति ये भी वाक्यों को उलट-फेर कर लिखा करते थे। अपने कालेज के अध्यक्ष डा० गिलक्रिस्ट के आदेश से इन्होंने चलताऊ भाषा में 'नासिकेतोपाख्यान' ग्रंथ लिखा। इनकी भाषा और व्यञ्जना-शैली का एक उदाहरण देखिये—

"......कब मैं सुन्दर बालक सहित चन्द्रावती का मुँह, कि जो बन के रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोंगी। देखो यह कर्म का खेल, कहाँ इहाँ नाना भाँति भोग-विलास में वो फूलन्ह के बिछौने पर सुख से जिसके दिन रात बीतते थे, सो अब जंगल में कन्दमूल खा काँटे कुश पर स्यारों के चहुं दिशि डरावने शब्द सुनि कैसे विपत्ति को काटती होगी।"

———o———

लल्लूलालजी

श्री लल्लूलालजी आगरा-निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। संस्कृत और उर्दू की साधारण जानकारी के साथ इन्होंने हिन्दी-गद्य के विकास में अच्छा सहयोग दिया। फ़ोर्ट विलियम कालेज के अध्यक्ष के कार्यालय में आप हिन्दी-सम्बन्धी कार्य करते थे। अंगरेज़ कर्मचारियों को हिन्दी का ज्ञान

दान करने के निमित्त लल्लूलालजी ने 'प्रेमसागर' नामक गद्य-ग्रंथ का निर्माण किया। आपकी भाषा में उर्दू का प्रयोग नहीं के बराबर है। व्रज-भाषा और संस्कृत के शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। 'प्रेमसागर' के अतिरिक्त इन्होंने 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'शकुन्तला नाटक' और 'माधोनल' आदि पुस्तकों की रचना की है। श्री लल्लूलालजी की व्रजभाषा के ढर्रे की भाषा का एक उदाहरण लीजिए—

"......**इस धूम धाम से पावस को आता देख, ग्रीष्म, खेत छोड़, अपना जी ले, भागा, तब मेघ पिया ने वर्षा से पृथ्वी को सुख दिया। उसने जो आठ महीने पति के वियोग में योग किया था, तिसका भोग कर लिया।**"

इन प्रारम्भिक गद्य लेखकों के उपरान्त ईसाई-सम्प्रदाय की ओर से उनकी धार्मिक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कराया गया। अंगरेज़ों के सम्मुख हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषाएँ थीं। और दोनों भाषा-भाषियों को प्रसन्न रखना भी उनका लक्ष्य रहता था। किन्तु हिन्दी के पथ में दोनों ओर खाई और खड्ड थे। न्यायालयों में उर्दू का बोलबाला था। उधर मैकोले-शिक्षा-योजना के अन्तर्गत जनता अँगरेज़ी की ओर झुकती जारही थी। अतः लोग उर्दू और अँगरेज़ी के दास बनने लगे। सौभाग्य से इसी काल में हिन्दी-प्राण राजा शिवप्रसादजी युक्तप्रांत में स्कूलों के निरीक्षक नियुक्त हुए और इन्होंने हिन्दी को स्कूलों में उचित स्थान दिलाया। देव-नागरी-लिपि का उत्साह से प्रचार करते हुए 'बनारस अख़बार' भी प्रकाशित किया।



राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द

राजा साहब हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी तीनों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। आपके ही कारण हिन्दी अपनी प्रतिष्ठा पर दृढ़ रह कर आज इतनी विकसित हो सकी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी राजा साहब को अपना

साहित्य-गुरु मानते थे। अनेक गद्य-ग्रंथों की रचना करके श्री शिवप्रसादजी ने हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सेवा की। जहाँ आप हिन्दी भाषा के प्रचार और उसकी साहित्य-वृद्धि में संलग्न रहे, वहाँ 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार के पक्ष में भी कम नहीं थे। उर्दू के लेखकों में भी राजासाहब का अच्छा स्थान था। 'गुटका', 'मानव-धर्मसार', 'भूगोल-हस्तामलक' आदि पेंतीस के लगभग पुस्तकें राजासाहब की लेखनी से लिखी गईं। अपनी भाषा-शैली में आपने उर्दू का अधिकांश प्रयोग किया है। एक उदाहरण लीजिये—

'यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब के इहतियात और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है। देखकर लोग पाठशाले के क़िते के मकानों की ख़ूबियाँ अक्सर बयान करते हैं और उनके बनने के ख़र्च की तज़-वीज़ करते हैं कि जमा से ज़्यादा लगा होगा और हर तरफ़ से लायक़ तारीफ़ के है।"

राजा लक्ष्मणसिंह

राजा शिवप्रसाद की भाँति आगरा-निवासी श्रीमान् राजा लक्ष्मणसिंह उर्दू-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी के पक्षपाती नहीं थे। विशुद्ध हिन्दी-लेखन की ओर ही आपकी रुचि रही। सरस, मधुर, सुबोध और संस्कृत-विशिष्ट हिंदी में आपने कई सुन्दर अनुवाद किये। कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल', 'मेघदूत' और 'रघुवंश' का अनुवाद देखने से पता चलता है कि राजासाहब ने मूल ग्रंथ की रोचकता का आभास कहीं विलीन नहीं होने दिया। आपने 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र का प्रकाशन भी किया था। राजासाहब श्री लक्ष्मणसिंहजी की भाषा का नमूना देखिए—

"यह हमारे वंश का कैसे हुआ और इस भगवती ने मेरी उनहार का इसे क्यों कहा? हाँ पुरुवंशियों में यह रीति तौ निश्चय है।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामीजी संस्कृत के विद्वान् थे। गुजराती उनकी मातृभाषा थी। हिन्दी-गद्य-लेखन-कला को सामाजिक, दार्शनिक और राजनैतिक क्षेत्रों में प्रयुक्त करने वाले सर्व-प्रथम आपही हैं। आपके प्रयत्न से हिंदी का दूर-दूर तक प्रचार हुआ। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो स्वामीजी ने हिन्दी की सेवा करते हुए किया, वह वैदिक-संस्कृति का सार्वदेशिक प्रचार है। आज भी उनके अनेक अनुयायी देश-विदेशों में उस पवित्र संस्कृति का संदेश सुना रहे हैं। स्वामीजी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश', 'वेदार्थ-प्रकाश', 'संस्कार-विधि', 'व्यवहार-भानु', 'गोकरुणानिधि', 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' आदि पुस्तकें लिखकर हिन्दी के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक साहित्य का गौरव बढ़ाया। संस्कृतप्रधान हिन्दी लिखने के कट्टर समर्थकों में स्वामीजी का नाम लिया जाता है। स्वामीजी के द्वारा संस्थापित आर्यसमाज ने तो हिन्दी-प्रचार में बहुत ही बड़ा काम किया है। जहाँ हिन्दी को कोई जानता भी नहीं था, वहाँ घर-घर में उस हिन्दी का बोलबाला है। स्वामीजी की भाषा-शैली का उदाहरण देखिए—

"......एक शब्द में, पंच मकारान्तर्गत सारे पैशाचिक अनुष्ठानों की ब्राह्मण से लेकर चमार तक के लिए व्यवस्था की गई है, और इससे बढ़कर इन पैशाचिक अनुष्ठानों को अनन्त मुक्ति का उपाय बताया गया है; तो यह सब देख कर मुझे इतना विस्मय हुआ जिसकी कोई सीमा नहीं। इन तंत्र-ग्रंथों को पढ़कर मैंने उज्ज्वल रूप से जान लिया कि ऐसे जघन्य ग्रंथों को लिखकर धूर्त और दुष्ट लोगों ने उन्हें धर्म-शास्त्र के नाम से प्रचारित किया है।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

बाबू हरिश्चन्द्रजी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे थे। काव्य-रचना करते हुए भी वे सफल गद्य-रचना करते रहे। साहित्य-

सेवा का परम्परागत वरदान भी आपको अपने पिता से प्राप्त था। अतः हिन्दी भाषा और साहित्य, दोनों को विकसित करने में आप तन-मन-धन से एक होगए। बँगला-साहित्य के नाटकों से प्रभावित होकर आपने हिंदी में बँगला-नाटक रूपान्तरित किये और साथ ही मौलिक नाटक भी लिखे। ऐतिहासिक, सामाजिक और पौराणिक नाट्य-साहित्य प्रदान करके आपने इतिहास-पुस्तकें भी रचीं। अन्त में उपन्यास-रचना की ओर अग्रसर होते हुए संसार से विदा होगए। भारतेन्दुजी ने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका', 'कविवचन-सुधा' और 'बाला-बोधिनी' नामक तीन पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं। उनके जीवन का उद्देश्य ही वास्तव में हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार था। भारतेन्दुजी उर्दू- शब्दों का कलापूर्ण ढंग से हिन्दी में व्यवहार करते हुए नहीं हिचकते थे। एक प्रकार से उन्होंने उर्दू और संस्कृत, दोनों भाषाओं के बीच की ऐसी भाषा-शैली अपनाई, जिससे किसी को पक्षपात की शिकायत न रहे। भारतेन्दुजी के रचे हुए गद्य-ग्रंथोंमें 'विद्या-सुन्दर', 'वैदिकी हिंसा-हिंसा नभवति', 'कर्पूर-मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली नाटिका','भारत-दुर्दशा', 'अन्धेर नगरी' और 'नील देवी' आदि नाटकों की रचनाएँ भी शामिल की जासकती हैं। इनके अतिरिक्त 'काश्मीर-कुसुम' और 'बादशाह-दर्पण' नामक इतिहास-ग्रंथ भी इन्होंने रचे। इनकी भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिए—

"भला, किस तरह मुनि से प्राण बचें। अब चलें अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल-लाल आँखें नहीं देखी हैं।······"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का काल हिन्दी की उन्नति के लिए बड़े सौभाग्य का युग था। भारतेन्दुजी के सम्पर्क और आदेश से अनेक लेखक और कवि साहित्य-सृजन के लिए आगे बढ़े। बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इन पत्रिकाओं के कारण हिंदी-गद्य की नई-नई शैलियों का जन्म हुआ।

———०———

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र

हिन्दी-गद्य को मांज-मांज कर उज्ज्वल करने वाले प्रतिष्ठित लेखकों में उर्दू-हिंदी और अँगरेजी के ज्ञाता श्री मिश्रजी का प्रमुख स्थान है। इनकी गद्य-शैली और पद्य-रचना दोनों ही रोचक और भावपूर्ण होती थीं। मिश्रजी के निबन्धों में बड़ा मृदुल व्यंग्य रहता था। उनकी सुबोध उर्दू-मिश्रित हिंदी में जीवन और चुटीलापन था। 'निबन्ध-नवनीत' में इनके विद्वत्तापूर्ण और रोचक निबन्ध हैं। 'ब्राह्मण' नामक पत्र का सम्पादन करके मिश्रजी ने हिन्दी का अत्यधिक प्रचार किया। सुन्दर निबंध-लेखन की परम्परा इन्हीं के काल से आरम्भ हुई। मिश्रजी ने 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक का हिंदी-अनुवाद भी किया था। इनकी भाषा-शैली का एक सरस उदाहरण देखिए—

"हुज़ूर की मुलाज़मत से अक़्ल ने इस्तीफ़ा दे दिया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि 'आप लफ़्ज़े-फ़ारसी या अरबीस्त'' अथवा "ओः इटिज़ एन इँगलिश वर्ड" (Oh! it is an English word.)**। जब यह नहीं है तो ख़ाहमख़ाह यह हिन्दी शब्द है, पर कुछ सिर-पैर मुँह-गोड़ भी है कि यों ही ?... "**

श्री बालकृष्ण भट्ट

हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्ध-लेखकों में भट्टजी का विशेष स्थान है। इनकी शैली में रोचकता के अतिरिक्त स्पष्टवादिता भी लक्षित रहती थी। श्री प्रतापनारायण मिश्र की भाँति इन्होंने भी नवीन विषयों पर खोजपूर्ण लेख-माला तैयार की थी। हास्यपूर्ण तथा गम्भीर दोनों प्रकार की निबन्ध-रचना में भट्टजी कुशल थे। इनकी भाषा में कहीं-कहीं मुहाविरों तथा उर्दू, फ़ारसी और अँगरेजी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। 'साहित्य-सुमन' में आपके कुछ लेखों का संग्रह है। भट्टजी की भाषा-शैली के दो नमूने देखिए—

"पिता को अपने शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न भावेगा। यह माता ही है जो पुत्र के स्वाभाविक स्नेह के परवश हो इतने-इतने दुख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बातों को सोच-विचार कर लिख दिया कि—'पिता से माँ का गौरव सौ गुना अधिक है।"

"यावत् मिथ्या और दरोग़ की किबलेगाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं ओर-छोर किसी ने पाया है! अनुमान करते-करते हैरान गौतम से मुनि 'गौतम' होगए। कणाद तिनका खा-खाकर किनका बीनने लगे, पर मन की मन-भावनी कन्या कल्पना का पार न पाया।"

श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

प्रेमघन गद्य-रचना करते समय कला का प्रदर्शन करने में बड़े निपुण थे, अतः इनकी अति परिमार्जित शैली में विलक्षणता रहती थी। अनुप्रास-युक्त पेचीदा भाषा लिखने के कारण इनके वाक्यों में पाठक उलझे रह जाते हैं। प्रेमघनजी ने 'भारत-सौभाग्य' और 'वीराङ्गना-रहस्य' नामक नाटकों का निर्माण किया। एक मासिक और एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी इन्होंने हिन्दी के प्रचारार्थ किया था। प्रेमघनजी की मासिक-पत्रिका 'आनंद-कादम्बिनी' के एक समाचार की चुहचुहाती भाषा का उदाहरण देखिये—

"दिव्य देवी श्री महाराणी बड़हर लाख झंझट झेल और चिर-काल पर्य्यन्त बड़े-बड़े उद्योग और मेल से दुख के दिन सकेल, अचल 'कोर्ट' का पहाड़ ढकेल, फिर गद्दी पर बैठ गईं। ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दुख की रेल-पेल और कभी उसी पर सुख की कुलेल है।"

श्रीनिवासदास

चौधरी प्रेमघनजी के पश्चात् बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन सहयोगी साहित्यिकों में श्रीनिवासदास, ठाकुर जगमोहनसिंह और बाबू तोताराम के

म भी उल्लेखनीय हैं। श्रीनिवासदासजी ने 'परीक्षा गुरु' नामक एक न्दर उपन्यास की रचना की। 'तप्ता-सम्बरण', 'संयोगिता-स्वयंवर' और णधीर-प्रेम मोहिनी' इनके नाटकों के नाम हैं।

ठाकुर जगमोहनसिंह

संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी गद्य-शैली में काव्य का-सा ाधुर्य झलकता था। ठाकुरसाहब की प्रसिद्ध रचना 'श्यामा-स्वप्न' में ाषा-शैली की सरसता के साथ यमक-प्रियता के उदाहरण भी मिलते हैं।

बाबू तोतारामजी

आप अलीगढ़ के निवासी थे। आपने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। ारतेन्दुजी की पत्रिका 'हरिश्चन्द्र-चंद्रिका' के आप प्रतिष्ठित लेखकों में । थे। 'भाषा-सम्बर्द्धिनी सभा' का संचालन कर आपने हिंदी का उत्तम ्चार किया। तोतारामजी ने 'कीर्ति-केतु' आदि नाटकों की रचना भी ी थी।

भारतेन्दु-मंडल के लेखकों में पं० अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण ोस्वामी, श्री केशवराम भट्ट और मोहनलाल-विष्णुलाल पाराड्या के नाम ी उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः देखा जाय तो भारतेन्दु बाबू के व्यक्तित्व के ाभाव तथा उनके श्रम से उनके काल में हिन्दी-गद्य का यथेष्ट कार्य हुआ। ़रिश्चन्द्रजी की सम-सामयिक मंडली में सब प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यिकों ा सम्मेलन था। पत्रों के प्रकाशन ने इस काल में हिंदी-गद्य को नित्य ई शैली का रूप दिया, जिससे भाषा के परिमार्जन में पूर्ण सहायता मेली। उपन्यास, नाटक, निबन्ध तथा स्फुट लेख-मालाओं से गद्य-साहित्य-ांडार की अच्छी वृद्धि हुई। विशेष रूप से इस काल में नाटकों की ही ्चना अधिक हुई।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्रजी के देहांत के पश्चात् हिंदी-साहित्य की सेवार्थ एक संस्था ने जन्म लिया। इसका नाम था 'नागरी-प्रचारिणी सभा' स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दरदास के विशेष श्रम और सहयोग से संवत् १९५० में इस सभा की स्थापना काशी नगर में हुई। इस सभा ने हिंदी भाषा-साहित्य और नागरी लिपि का प्रचार करने में अत्यधिक कार्य किया है। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' भी इस सभा की ओर से प्रकाशित हुई, जो अभी तक खोजपूर्ण लेख-मालाओं का प्रकाशन कर रही है। गम्भीर और पांडित्यपूर्ण लेखों का चयन ही इस पत्रिका में मिलता है। सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया है वह प्राचीन ग्रन्थों का अनुसंधान और प्रकाशन है। जब से इस सभा की स्थापना हुई है, इसका प्रशंसनीय कार्य हिंदी की उन्नति के लिये निरंतर चल रहा है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की भाँति आगरा-नागरी-प्रचारिणी सभा ने भी हिंदी-भाषा-साहित्य और नागरी लिपि के प्रचार का सराहनीय कार्य किया है। अन्य नगरों में भी नागरी-प्रचारिणी सभाओं के कार्य जारी हैं। संवत् १९५५ में हिन्दी-प्रचार-आंदोलन की अति प्रबल धारा प्रवाहित हुई। **पं० मदनमोहन मालवीयजी** के प्रयत्न और नेतृत्व में प्रतिष्ठित राजा-महाराजाओं का एक 'डेपूटेशन' लाटसाहब के पास गया, जिसके परिणाम-स्वरूप न्यायालयों में नागरी के प्रयोग की अनुमति प्राप्त हुई। श्रीमान् मालवीयजी ने उसी समय एक पुस्तक 'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा' की रचना कर जनता के सामने हिन्दी का महत्त्व व्यक्त किया। इसी प्रकार जहाँ हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचारार्थ भिन्न-भिन्न सभाओं पत्रों, ग्रंथों, तथा नेताओं का उद्योग सफलता की ओर अग्रसर होरहा था, आर्यसमाज के सिद्धांतों को लेकर हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा **पं० भीमसेन शर्मा** ने जनता के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्तर को उठाने का प्रयत्न किया। संस्कृत-ग्रंथों के अनेक भाष्य तथा हिन्दी-पुस्तकों की रचना पण्डितजी ने की। 'आर्य-सिद्धांत' नामक एक मासिक पत्र भी इन्होंने

प्रकाशित किया। अरबी, फ़ारसी-शब्दों को संस्कृत का रूप देने के पक्ष-पातियों में पण्डित भीमसेन शर्मा का विशेष नाम है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग की समाप्ति के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य का दूसरा उत्थान आरम्भ हुआ। इस काल में नाटकों की परम्परा चलती रही। मौलिक नाटकों की रचना भी हुई, किन्तु अल्प संख्या में। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने 'चौपट-चपेट' और 'मयंक-मंजरी' नामक दो नाटक लिखे। समाज के पतन का दिग्दर्शन कराते हुए गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं में शृङ्गार रस-धारा भी बहाई, किन्तु वह लोक-प्रियता प्राप्त न कर सकी। इसी काल में पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय, पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, बाबू शिवनन्दनसहाय, राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि लेखकों ने नाटक-रचना की ओर अच्छे प्रयास किये, किन्तु किसी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का जन्म न हो पाया।

नाटकों की भांति उपन्यासों की रचनाएँ भी इस काल में हुई। देशी-विदेशी भाषाओं के प्रसिद्ध उपन्यासों का अनुवाद-कार्य बड़ी धूम से किया गया। हिन्दी-उपन्यासों की मौलिक कृतियों के लेखकों में बाबू देवकीनंदन खत्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अधिकतर ऐयारी के उपन्यासों का ही निर्माण किया। 'नरेन्द्रमोहिनी', 'कुसुमकुमारी' आदि आरम्भ की रचनाओं के उपरान्त इन्होंने 'चन्द्रकान्ता', और 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' नामक बड़ी रोचक उपन्यास-पुस्तकें लिखीं। देवकीनन्दनजी के 'तिलस्मी' साहित्य के प्रति नए पाठकों के जवान दिलों में अभी तक एक-चित्त होकर पढ़ने का उत्साह है। इनकी पुस्तकों की भाषा हिन्दुस्तानी है, इसलिये वह जनसाधारण के लिये सरल होकर ख़ूब लोकप्रिय बनी।

उपन्यास-रचयिताओं में पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी ने इस काल में भारी श्रम किया! 'तारा', 'चपला', 'तरुण तपस्विनी' 'रज़िया बेगम', 'लीलावती' आदि उपन्यासों की रचना-द्वारा गद्य-साहित्य की पर्याप्त पूर्ति हुई। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय, पण्डित लज्जाराम मेहता और बाबू व्रजनन्दनसहाय ने भी उपन्यास लिखे, किन्तु अभी

आदर्श कृति का पूर्ण अभाव था। निबन्ध और छोटी कहानियों की रचना भी इस काल में होती रही, किन्तु कोई महत्त्वपूर्ण चीज़ नहीं निर्मित हुई। संक्षेप में पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र, बाबू माधवप्रसाद मिश्र और बाबू बालमुकुन्द गुप्त की सुन्दर गद्य-रचनाओं का उल्लेख कर हम हिन्दी गद्य के यशस्वी संरक्षक और संपादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के निकट आते हैं। इस महापुरुष की तन्मय सेवाओं से हिन्दी का स्वरूप असाधारण रूप से सुधरा।

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी की गद्य शैली और साहित्य के नव निर्माण-कर्ता पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी से समस्त हिन्दी भाषा भाषियों को परिचित होना अनिवार्य है। 'सरस्वती' की आदर्श संपादन कला द्वारा द्विवेदीजी ने अनेक गद्य-लेखक और कवियों को हिन्दी-साहित्य की सेवा के लिये उपस्थित किया। द्विवेदीजी संस्कृत और अंगरेजी के बड़े अच्छे ज्ञाता थे। इनकी सरल सुबोध हिन्दी-भाषा-शैली में विषय की स्पष्टवादिता और स्वच्छ अभिव्यक्ति रहती थी। द्विवेदीजी समालोचक भी उच्च कोटि के थे। आपने गद्य और पद्य की जो नवीन पद्धति प्रचलित की, और जिस योग्यता के साथ आपने 'सरस्वती' का सम्पादन कर सम्पादनकला का आदर्श रक्खा, उसके-लिये आचार्य की उपाधि सर्वथा उपयुक्त और सर्वमान्य है। आपके निबंधों के संग्रहों का हिन्दी-साहित्य में बड़ा आदर है। द्विवेदीजी की कुछ पंक्तियाँ भाषा-शैली के उदाहरण स्वरूप नीचे देखिये—

"कविता में कुछ न कुछ झूँठ का अंश ज़रूर रहता है। असभ्य अथवा अर्ध सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है; शिक्षित और सभ्य लोगों को बहुत। तुलसीदास को रामायण के ख़ास-ख़ास स्थलों का स्त्रियों पर जितना प्रभाव पड़ता है, उतना पढ़े-लिखे आदमियों पर नहीं।"

बाबू श्यामसुन्दरदास

स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दरदास नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के मुख्य संस्थापकों में से थे। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। श्यामसुन्दरदासजी हिन्दी-साहित्य के श्रेष्ठ समालोचक हुए हैं। 'साहित्यालोचन', 'हिन्दी भाषा और साहित्य', 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला', 'भाषा-विज्ञान' आदि अनेक पुस्तकों के मननशील रचयिता आप ही हैं। बाबूजी की भाषा में विषय को स्पष्ट करने की अद्भुत शक्ति है। हिन्दी के विद्यार्थियों के लिये आपने जो उपयोगी साहित्य दिया उसके लिये हिन्दी-संसार आपका चिर ऋणी रहेगा। आपकी सुगठित, प्रवाहयुक्त, और मधुर भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिये—

"प्रकृति के रम्य रूपों से तल्लीनता की जो अनुभूति होती है, उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। यह अखण्ड भूमण्डल तथा असंख्य ग्रह-उपग्रह, रवि-शशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं।"

———o———

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी-आलोचना-क्षेत्र में विद्वत्तापूर्ण गम्भीर विषयों के लेखक स्वर्गीय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की प्रतिष्ठा चिरस्थायी रहेगी। शुक्लजी ने अपने विस्तृत अध्ययन द्वारा आलोचनात्मक साहित्य का अथाह ज्ञान एकत्र किया। इनका रचा हुआ 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' तथा तुलसी, जायसी, सूरदास आदि प्राचीन कवियों पर लिखे आलोचनात्मक प्रबन्ध हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों के लिये अमूल्य भांडार हैं। गम्भीर और मननशील लेखक होते हुए भी शुक्लजी की भाषा-शैली में मधुर और सूक्ष्म व्यंग्य का समावेश है।

आपकी सुगठित एवं परिमार्जित भाषा का एक नमूना देखिये—

"घोर नैराश्य के समय हिन्दू जाति ने जिस भक्ति का आश्रय लिया, उसी की शक्ति से उनकी रक्षा हुई। भक्ति के सच्चे उद्गार

ने ही हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की और मानवजीवन की सरसता दिखाई। इस भक्ति के विकास के साथ ही साथ इसकी अभिव्यंजना करने वाली वाणी का विकास भी स्वाभाविक था।"

पण्डित पद्मसिंह शर्मा

स्वर्गीय शर्माजी हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना के प्रथम आलोचक थे। हिन्दी-कविता और गद्य को परखने की जो अद्भुत प्रतिभा शर्माजी को प्राप्त थी उसकी प्रशंसा के लिए शब्द नहीं हैं। शर्माजी की आलोचना-शैली पर आक्षेप करते हुए उसे 'दुर्गन्ध-युक्त' कहने वाले उदार (?) 'आलोचकों' की भांति शर्माजी (पण्डित पद्मसिंह शर्मा) संकीर्ण-हृदय व्यक्ति नहीं थे। जिस अंश की वे प्रशंसा करते थे, जी खोल कर करते थे। उनकी भाषा में सजीवता थी, चहक थी, मिठास थी और काव्यमय आनन्द था। शर्माजी ने उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, प्राकृत, व्रजभाषा आदि भाषाओं के साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। इसीलिये उनकी हिन्दी भाषा में भी इन भाषाओं की खासी छाप मिलती है। 'बिहारी-सतसई', 'पद्मपराग', 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' आदि उनकी प्रसिद्ध विद्वत्तापूर्ण कृतियाँ हैं। शर्माजी के सम्पर्क और निर्देश द्वारा अनेक साहित्यिकों का व्यक्तित्व विकसित हुआ। इनकी भाषा में विषय का प्रतिपादन सुन्दर व्यंग्यात्मक कला के साथ व्यंजित होता था। एक उदाहरण देखिये—

"पुरानी दिल्ली और नई खेमों वाली दिल्ली की जन-संख्या बारह लाख से ऊपर पहुँच गई थी, इतने पर भी उदारहृदय दिल्ली ने अपने मेहमानों का खुले दिल से स्वागत और आतिथ्य-सत्कार किया। वास्तव में यह दिल्ली ही का हौसला है, जो वह ऐसे-ऐसे भारी हजूमों को आसानी से सँभाल लेती है, छोटे-बड़े सबकी समाई उसमें हो जाती है।"

मिश्र बन्धु

हिन्दी-आलोचना-क्षेत्र में श्री गणेशविहारी मिश्र, श्री श्यामविहारी मिश्र और श्री शुकदेवविहारी मिश्र—इन तीनों बन्धुओं ने 'मिश्र बन्धु' नाम से कई आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की। मिश्र बन्धुओं ने अपने विस्तृत अध्ययन द्वारा 'मिश्र-बन्धु-विनोद' और 'हिन्दी-नवरत्न' आलोचनात्मक ग्रन्थ रचे। अनेक निबन्धों का लेखन भी इन बन्धुओं ने किया है।

मिश्र बन्धुओं की भाषा में प्रवाह और गठन दोनों ही हैं। हिन्दी-साहित्य को खोजपूर्ण सामग्री प्रदान करने वालों में इनका प्रमुख स्थान है। मिश्र बन्धुओं की भाषा-शैली का नमूना देखिये—

"यह अनुभव चाहे अपना हो चाहे पराया, किन्तु दोनों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अध्ययन ही कहेंगे। अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान कुछ विशेष चिरस्थाई एवम् लाभकारी होता है। किन्तु यदि मनुष्य सारा ज्ञान अपने ही अनुभव द्वारा प्राप्त करे, तो उसके ज्ञान की मात्रा बहुत ही सीमा-संकुचित रहेगी।"

——o——

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

हिन्दी-साहित्य के आलोचकों में श्री पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी का भी प्रमुख स्थान है। अपने गम्भीर अध्ययन और मनन द्वारा बख़्शीजी ने आलोचना, इतिहास, दर्शन, साहित्य और अध्यात्म आदि विषयों पर सुन्दर और स्थाई रचनाएँ उपस्थित कीं। 'हिन्दी-साहित्य-विमर्श', 'विश्वसाहित्य' आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। आचार्य द्विवेदी के पश्चात् सरस्वती-संपादन का भार आपने ही योग्यतापूर्वक सँभाला। बख़्शीजी की भाषा उनके भावों का प्रकटीकरण करने में कुशलतापूर्वक सधी हुई है। एक उदाहरण लीजिये—

"रवीन्द्र बाबू के 'घरे-बाहिरे' नामक उपन्यास में सन्दीप जैसा इन्द्रियपरायण है, वैसा ही स्वदेश-वत्सल और वीर भी। 'इब्सन'

'मेटरलिंक' अथवा 'रवीन्द्रनाथ' की कुछ प्रधान नायिकाओं के चरित्र ऐसे अंकित हुए हैं कि जब हम अपने संस्कारों के अनुसार उन पर दृष्टिपात करते हैं तो उनके चरित्र में हीनता देखते हैं, परन्तु सत्य की ओर लक्ष्य रखने से यही कहना पड़ता है कि हम अपनी सम्मति नहीं दे सकते।"

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पंजाब प्रान्तीय 'गुलेर' ग्राम के निवासी थे। संस्कृत, प्राकृत और अंगरेजी भाषा का पंडितजी ने गम्भीर अध्ययन किया था। अपनी विद्वत्ता के कारण ही आपने 'समालोचक' तथा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' जैसे ठोस साहित्यिक पत्रों का सफल सम्पादन किया।

भारतमित्र, सरस्वती और अनेक प्रतिष्ठित पत्रों में आपके लेख प्रकाशित होते रहे। गुलेरीजी ने अपनी प्रखर कल्पनाशक्ति और मार्मिक भाषा-शैली द्वारा तीन कहानियों का निर्माण किया था। उनमें 'उसने कहा था' हिन्दी-गद्य-साहित्य की एक अमर कृति है। इस कहानी को पाठक आदि से अन्त तक विना पढ़े नहीं रह सकते। गुलेरीजी ने सुन्दर और खोजपूर्ण निबन्धों का भी निर्माण किया है। दुख की बात है कि ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति हिन्दी की सेवा अधिक समय तक न कर सका। काल-चक्र की भूलभुलैयाँ में गुलेरीजी विलीन तो हो गए किन्तु 'उसने कहा था' में वे चिरजीवी रहेंगे। आपकी सरल, सुबोध और चटपटी भाषा का नमूना देखिये—

"जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखें न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने ही को

सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं; तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लट्ठी वाले के लिए ठहर कर, सब्र का समुद्र उमड़ा कर—'बचो खालसाजी', 'हटो भाईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा'—कहते हुए सफ़ेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं।"

इसी काल में रायबहादुर हीरालालजी ने भी इतिहास तथा पुरातत्व सम्बन्धी साहित्य द्वारा हिन्दी गद्य का गौरव बढ़ाया। अध्यापक पूर्णसिंह का स्थान भी हिन्दी-गद्य-निर्माताओं में प्रमुख है। उन्होंने अल्प-संख्यक सांस्कृतिक, मननपूर्ण निबन्धों की रचना द्वारा प्रशंसनीय कार्य किया। सरल और संकेतात्मक भाषा उन्हें बहुत प्रिय थी।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दृढ़ और साहसी सैनिक होते हुए भी अपने जीवनकाल में हिन्दी की सेवा करते रहे। कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'प्रताप' नामक पत्र के संस्थापक और आदि संपादक आप ही थे। विद्यार्थीजी की भाषा में उर्दू और हिन्दी का रुचिर मिश्रण रहता था। ओजपूर्ण भावाभिव्यक्ति में उनका मन विशेष रूप से रमता था। देश की हीनावस्था के अनेक चित्र खींच कर विद्यार्थीजी ने सोते हुए समाज को जगाने का जीवनपर्यन्त प्रयत्न किया। आपकी भाषा-शैली का रसास्वादन कीजिए—

"महान् पुरुष! निस्सन्देह महान् पुरुष! भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनी चमक है? स्वतन्त्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी? देशभक्त लेकिन देश पर अहसान जताने वाला नहीं, पूरा

राजा लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढ़ता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना।"

मुंशी प्रेमचन्द

मुंशी धनपतराय ही अपनी साहित्यिक कृतियाँ 'प्रेमचन्द' नाम से लिखते थे। आरम्भ में आपने उर्दू में लिखा। किन्तु अपनी रचनाओं की लोकप्रियता देखकर हिन्दी में भी मुंशीजी ने कहानियाँ लिखनी शुरू कर दीं। प्रेमचंदजी ने अपने काल की देश-दशा का गम्भीर अध्ययन किया था। अतएव समाज के भिन्न-भिन्न चित्रों को अपने कहानियों और उपन्यास-ग्रंथों में सुसज्जित कर, इन्होंने जनता को वही साहित्य दिया, जिसके पढ़ने से वह अपनी बुराइयाँ जान कर परिवर्तन की ओर अग्रसर हो। प्रेमचन्दजी अपनी प्रतिभा द्वारा विश्व-साहित्यिकों में गिने जाते हैं। उनकी कहानियाँ और उपन्यास दोनों ही चाव से अपनाए गए। आधुनिक मौलिक रचनाओं में इतने विशाल कथा-साहित्य के प्रथम जन्मदाता प्रेमचन्द ही हैं। इनकी प्रत्येक रचना में चरित्र-चित्रण और मानसिक भावों का मार्मिक विश्लेषण विशेष रूप से रहता है। स्वाभाविक कथोपकथन और जीवन की वास्तविकता के आलोचनात्मक एवं व्यंग्यात्मक चित्र प्रायः प्रेमचन्दजी की हर रचना में मिलेंगे। सरल, सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक भाषा-शैली में मुंशीजी ने अपनी कृतियों की ढेरी लगादी है। उपन्यासों में 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'ग़बन' आदि उल्लेखनीय हैं। 'गोदान' मुंशीजी का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। 'प्रेमपूर्णिमा', प्रेमद्वादशी', 'नवनिधि' आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं। मुंशी प्रेमचन्दजी मज़दूर और किसानों के सच्चे हितैषी थे। नीचे उनकी मार्मिक भाषा-शैली का एक उद्धरण दिया जाता है—

"संध्या का समय है। प्रवीणजी अपनी फटी-पुरानी अचकन, सड़े हुए जूते और बेढंगी-सी टोपी पहने घर से निकले। ख़्वाह-मख़्वाह बांगड़ू उचक्के-से मालूम होते थे। डील-डौल और चेहरे-मुहरे

के आदमी होते तो इस ठाठ में भी एक शान होती। स्थूलता स्वयं रौब डालने वाली वस्तु है। पर साहित्य-सेवा और स्थूलता में विरोध है; अगर कोई साहित्य-सेवी मोटा-ताज़ा डबल आदमी है, तो समझ लो उसमें माधुर्य नहीं, लोच नहीं, हृदय नहीं। दीपक का काम है, जलना। दीपक वही लबालब भरा होगा जो जला नहीं।"

प्रेमचन्दजी अपने मनोभावों के प्रकटीकरण में इतने पटु थे कि किसी-किसी स्थान पर उनका एक ही वाक्य कई अवतरणों का मसाला समेट कर स्वयं ध्वनित होने लगता था। उनके अनेक छोटे-छोटे वाक्यों का एक अच्छा सूक्ति-संग्रह बन सकता है। प्रेमचन्दजी भारत में ही नहीं विदेशों में भी 'उपन्यासकार प्रेमचन्द' नाम से प्रसिद्ध हैं। हिंदी-गद्य की महान् गौरव-वृद्धि कर प्रेमचंदजी ने हिंदी को चिर-ऋणी बना दिया है। प्रेमचंदजी द्वारा संस्थापित और सम्पादित 'हंस' (मासिक-पत्र) आज भी उनकी पुण्य-स्मृति में निकल रहा है।

श्री जयशंकरप्रसाद

प्रसादजी हिंदी-साहित्योद्यान में सर्वतोमुखी प्रतिभा का वरदान लेकर प्रतिष्ठ हुए थे। जहाँ पद्य-साहित्य की प्रशंसनीय सेवा कर उन्होंने अपनी प्रतिभा का अद्भुत प्रदर्शन किया, वहाँ उपन्यास, गल्प और नाटकों में भी उनका काव्य-कौशल चकित कर देता है। प्रसादजी उन साधक साहित्यिकों में थे जो साहित्य-सेवा के लिए साहित्य-देवता के चरणों में तन-मन से आत्मार्पण कर देते हैं। उनकी लेखन-शैली में नवीनता थी। भाषा-शैली में संस्कृतात्मक हिंदी के प्रयोग द्वारा नई पद्धति के जन्मदाता प्रसादजी ही थे। दार्शनिक एवं जीवन के गम्भीर अध्ययन द्वारा उन्होंने जो कुछ व्यक्त किया, वह अपनी मौलिकता और प्रभावोत्पादकता से सर्वत्र ओत-प्रोत था। 'आंधी' और 'आकाश दीप' में उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ संगृहीत हैं। 'कंकाल' और 'तितली' उनके सुन्दर उपन्यास हैं। नाटकों की रचना द्वारा प्रसादजी ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है, वह

निस्संदेह उनकी महत्ता की द्योतक है। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री', 'जनमेजय का नाग यज्ञ' आदि नाटकों के अतिरिक्त छोटी गीत-नाटिकाएँ भी प्रसादजी ने लिखी थीं। इनकी भाषा-शैली का एक उदाहरण नीचे देखिए—

"इस साम्राज्य का बोझ किसके लिए? हृदय में अशांति, राज्य में अशांति; परिवार में अशांति! केवल मेरे अस्तित्व से? मालूम होता है कि सबकी—विश्व-भर की-शांति-रजनी में मैं ही धूमकेतु हूं। यदि मैं न होता तो यह संसार अपनी स्वाभाविक गति से, आनंद से, चला करता। परन्तु मेरा तो निज का कोई स्वार्थ नहीं, हृदय के एक-एक कोने को छान डाला—कहीं भी कामना की वन्या नहीं। बलवती आशा की आँधी नहीं चल रही है। केवल गुप्त-सम्राट के वंशधर होने की दयनीय दशा ने मुझे इस रहस्यपूर्ण क्रिया-कलाप में संलग्न रक्खा है। कोई भी मेरे अंतःकरण का आलिंगन करके न रो सकता है, और न हँस सकता है। तब भी विजया...? ओह! उसे स्मरण करके क्या होगा। जिसे हमने सुख-शर्वरी की सन्ध्या-तारा के समान पहले देखा, वही उल्कापिंड होकर दिगन्त-दाह करना चाहता है। विजया! तूने क्या (देखकर) ओह! कैसा भयानक मनुष्य है! कैसी क्रूर आकृति है! मूर्तिमान् पिशाच है! अच्छा, मातृगुप्त तो अभी तक नहीं आया। छिप कर देखूँ।"

———o———

राय कृष्णदास

इसी काल में राय कृष्णदासजी ने गद्य-काव्यों की सुन्दर रचनाएँ कीं। परोक्ष के प्रति कल्पना-रंजित भावना की अभिव्यक्ति कृष्णदासजी ने बड़े हृदयग्राही ढंग से की है। भाषा का माधुर्य भी किसी स्थल पर फीका नहीं होने पाया। आपकी अनुभूति का शब्द-चित्रण देखिए—

"तुम्हें लुभाने के लिए ख़ूब सज-सजा कर घर से बाहर निकला। राज-पथ पर भीड़ थी, इससे मुझे रुकना पड़ा। लोग मेरी ओर देखने

और सजावट की प्रशंसा करने लगे। भला प्रशंसा किसे पागल नहीं बना देती? मैं भी अपना प्रकृत-उद्देश्य भूल कर उन्हें अपनी सजावट दिखाने लगा। आनन्द से मेरा हृदय नाच रहा था।"

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

श्री उग्रजी निर्भीक लेखकों में हैं, जो दो-टूक कहने और लिखने में कभी झिझक अनुभव नहीं करते। उनके विचारों में समाज की कायापलट करने वाली शक्ति है। उनके उद्गारों में तरुण सुधारक की उग्रता है। उग्रजी की सत्य भाषिणी वाणी में लोगों को कटुता और विकृति का भले ही अनुभव हो, किन्तु बात वे पते की कहते हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन उग्रजी कई वर्षों से करते आरहे हैं। आपके व्यंग्यात्मक लेखों में समाज के दुराचारों की तीखी आलोचना रहती है। उग्रजी ने 'शराबी', 'दोज़ख़ की आग' और 'गंगा का बेटा' आदि अनेक उपन्यास और नाटकों की रचना की है। उग्रजी ने हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी और उर्दू-फ़ारसी का अध्ययन करके अपनी निराली भाषा-शैली का निर्माण किया है। आपकी मनोहर, प्रभावोत्पादक और चटकीली भाषा का एक उदाहरण देखिये—

"……यह सब जानकर भी करोड़ीमल ने कड़ाई से कार्रवाई की, और जो न करना चाहिए था, सो आनन-फ़ानन में कर डाला। नौकर-शाही राज, विदेशी क़ानून, कूटनीति के ताने-बाने में जकड़ा हिंदुस्तानी-समाज प्रजा का रक्त जोंक चूँसे या खटमल या करोड़ीमल। इसका कोई पुर्सां हाल नहीं। सड़क पर नंगा घूमना क़ानूनन गुनाह, मगर लोगों को नंगा बनाकर दर-दर ठोकरें खिलाने वाले सूदख़ोर क़ानूनन इज़्ज़तदार, शरीफ़, सेठ और क्या-क्या? भिखारी भी जिन मुसीबतज़दों से दाम लेने में शमारते, करोड़ीमल सूद और मूल की सूरत में उनकी जान तक निचोड़ कर महल उठाने वाला महापुरुष।……"

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी ने 'भारतीय आत्मा' नाम से पद्य और गद्य दोनों ही सुन्दर लिखे हैं। उर्दू और हिंदी के शब्द-मिश्रण से प्रवाहित इनकी भाषा-शैली में अनूठा माधुर्य रहता है। आपकी प्रसिद्ध 'गद्य माधुरी' और 'साहित्य देवता' नामक गद्य-काव्य पुस्तकें हिंदी-गद्य की अमूल्य सामग्री हैं। श्री चतुर्वेदीजी अनेक वर्षों से 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। आपके लेखों में राजनैतिक, साहित्यिक और पाण्डित्यपूर्ण तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहते हैं। अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व भी हाल ही में चतुर्वेदीजी ने ग्रहण किया था। आपकी भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिये—

"कौनसा आकार दूँ ? तुम मानव हृदय के मुग्ध संस्कार जो हो ! चित्र खींचने की सुध कहाँ से लाऊँ ? तुम अनन्त 'जाग्रत' आत्माओं के ऊँचे, पर गहरे 'स्वप्न' जो हो ! मेरी काली क़लम का बल, समेटे नहीं सिमटता ! तुम कल्पनाओं के मन्दिर में बिजली की व्यापक चकाचौंध जो हो ! मानव-सुख के फूलों के और लड़ाके सिपाही के रक्त-बिन्दुओं के संग्रह, तुम्हारी तस्वीर खींचूँ मैं ?...."

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदीजी ने कितने ही वर्षों तक 'विशाल भारत' का सम्पादन कर अनेक गद्य-लेखकों को हिंदी-साहित्योद्यान का प्रवेश-पत्र प्रदान किया। अपनी प्रचारात्मक लेख-पद्धति द्वारा चतुर्वेदीजी ने हिंदी की दूर-दूर तक प्रतिष्ठा की है। आपने प्रतिभाशाली देशी और विदेशी पत्रकारों और लेखकों के सुन्दर जीवन-चरित भी हिंदी में प्रस्तुत किए हैं। श्री चतुर्वेदीजी ने अँगरेज़ी-गद्य-साहित्य का ठोस अध्ययन किया है। पत्रकार-कला के विशेषज्ञों में आपका अन्यतम स्थान है। आपके विशालभारत-सम्पादन-काल में श्री व्रजमोहन वर्मा ने अपनी प्रतिभा का सहयोग देकर चतुर्वेदीजी के

पत्र का सर्वश्रेष्ठ अस्तित्व निर्माण किया। चतुर्वेदीजी की भाषा में उर्दू-हिंदी और अंगरेज़ी शब्दों का अच्छा प्रवाह रहता है। स्पष्टवादिता और भावों की निर्मलता आपकी शैली का विशेष गुण है। रेखाचित्रों (Sketches) की रचना में आपकी लेखनी सिद्ध है। आजकल आप टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'मधुकर' का सम्पादन कर रहे हैं। हाल ही में अखिल-भारतवर्षीय हिंदी-पत्रकार-सम्मेलन के अध्यक्ष-पद को आपने सुशोभित किया है। चतुर्वेदीजी की भाषा-शैली का एक उदाहरण लीजिये—

"...पर मानसिक स्वाधीनता के मानी यह नहीं है कि साहित्यिक युद्ध-क्षेत्र से दूर भाग जाय। अपनी मानसिक स्वाधीनता की रक्षा करते हुए स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेना, यही साहित्यिक के लिए सर्वोत्तम मार्ग है। सजीव बने रहने के लिए ही साहित्यिक को युद्ध में भाग लेना चाहिए। यदि साहित्यिक सजीव न रहा, तो वह लिखेगा ही क्या ? मुर्दे सड़ा करते हैं, लड़ा नहीं करते।

इस सिलसिले में एक पुराना क़िस्सा याद आता है। किसी भोग-विलासी बादशाह के मुल्क पर आक्रमण हुआ था। बहुत दिनों तक हज़रत बेख़बर रहे; पर जब दुश्मन क़िले के नज़दीक आ पहुंचे, तो मसला पेश हुआ कि आख़िर दुश्मनों को रोकने का क्या इलाज किया जाय ? अन्त में यह तय पाया कि हम लोग चूड़ियाँ पहन लेंगे और पर्दे के भीतर से हाथ निकाल कर दुश्मनों से कहेंगे—

'मुए इधर न आइयो, इधर ज़नाने हैं'।

जो साहित्यिक ज़नाने बनकर संकट को टालना चाहते हैं, उनसे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।"

पण्डित हरिप्रसाद द्विवेदी

हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में आप 'वियोगी हरि' नाम से प्रसिद्ध हैं। आपने व्रजभाषा का गम्भीर अध्ययन किया है और उसके साहित्य की रक्षार्थ

अनेक सुन्दर ग्रंथ लिखे हैं। 'व्रज माधुरी सार', 'वीर-सतसई', 'अंतर्नाद', 'तरंगिणी', 'साहित्य विहार' आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। द्विवेदीजी ने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही खूब सुन्दर रचनाएँ की हैं। 'वीर-सतसई' पर आपको 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्राप्त हो चुका है। आपकी गद्य-लेखन-शैली में आपके गम्भीर अध्ययन और अध्यात्म सम्बन्धी पांडित्य का सुन्दर प्रवाह रहता है। एक उद्धरण देखिए—

"दृष्टि निर्मल करो, दिव्य दृष्टि से उसका दर्शन होगा। दृष्टि का अंजन तुम्हें इस वृक्ष के नीचे ही मिल जायगा। धीरज धरो पथिक! बहुत भटक चुके, अब चलने-फिरने की ज़रूरत नहीं। तुम चाहोगे तो वह हीरा इसी क्षण मिल जायगा।"

———o———

पण्डित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्याचार्य द्विवेदीजी हिंदी-गद्य-लेखकों में अपनी पांडित्यपूर्ण मननशील लेखन-शैली के लिये अति प्रसिद्ध हैं। आपने संस्कृत, हिंदी और अँगरेज़ी-साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। 'शांतिनिकेतन-विश्वभारती' के हिंदी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष आप ही हैं। श्रीद्विवेदीजी ने हिंदी में सुन्दर सांस्कृतिक साहित्य की वृद्धि की है। 'अभिनव भारती ग्रंथमाला' का योग्यतापूर्ण सम्पादन भी आप करते हैं। शांतिनिकेतन की प्रसिद्ध हिंदी-पत्रिका 'विश्वभारती' का सम्पादन भी द्विवेदीजी की लगन और पुरुषार्थ का उदाहरण है। स्फुट, गम्भीर लेखों के अतिरिक्त पण्डितजी ने 'हिंदी-साहित्य की भूमिका' सदृश मननपूर्ण ग्रंथ-रचनाएँ भी की हैं। आपकी भाषा-शैली गठी हुई और संस्कृतात्मक है। विद्वानों में आपकी रचनाओं का बड़ा आदर है। द्विवेदीजी की शैली का एक उदाहरण देखिए—

"सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा-असुविधाओं पर रहती है,

संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर। सभ्यता नज़दीक की ओर दृष्टि रखती है, संस्कृति दूर की ओर। सभ्यता का ध्यान व्यवस्था पर रहता है, संस्कृति का व्यवस्था से अतीत पर। सभ्यता के निकट क़ानून मनुष्य से बड़ी चीज़ है, लेकिन संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य क़ानून के परे हैं। सभ्यता बाह्य होने के कारण चंचल है, संस्कृति आंतरिक होने के कारण स्थायी।"

श्री राहुल सांकृत्यायन

श्री राहुलजी हिंदी, संस्कृत और पाली-साहित्य के मर्मज्ञ और पंडित हैं। अंगरेज़ी, उर्दू, फ़ारसी, रूसी तथा अन्य कई भाषाओं के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं। श्री राहुलजी ने देश-विदेश के भ्रमण द्वारा जो अनुभव एकत्र किया, वह उनकी यात्रा-पुस्तकों में सुन्दरता से वर्णित है। बौद्ध-साहित्य के अध्ययन द्वारा आपने उस धर्म पर प्रकाश डालते हुए बड़े-बड़े पोथे रचे हैं। सांस्कृतिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक रचना-क्षेत्र में राहुलजी ने अपनी लेखनी का अच्छा चमत्कार दिखाया है। आपने उपन्यास और कहानी-लेखन की ओर भी प्रवृत्ति दिखाई है। संक्षेप में राहुलजी ने हिंदी-गद्य-साहित्य की वृद्धि के लिए दर्जनों मननपूर्ण पुस्तकें लिखकर सराहनीय सेवा की है। आजकल आप मास्को-स्थित विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष हैं। आपकी भाषा में उर्दू-हिंदी के शब्दों का सुन्दर प्रयोग रहता है। बड़े सरल ढंग से आप अपने भाव व्यक्त करते चले जाते हैं। एक नमूना देखिए—

"जिस चीज़ में मनुष्य की मेहनत जितनी ही अधिक लगती है, उतना ही अधिक उसकी क़ीमत होती है, यह समझना मुश्किल नहीं है। खोदने की बहुत भारी मेहनत के बाद और अक्सर बहुत-सी खुदाई की मेहनत बरबाद करके हीरा कभी-कभी मिला करता है, अर्थात् एक हीरे में वह सारी मेहनत शामिल है, इसलिए उसकी क़ीमत इतनी अधिक है। अगर एक आदमी की आधे ही दिन की मेहनत से कोहनूर मिल जाते, तो उनकी क़ीमत इतनी न हुआ करती।"

पण्डित श्रीराम शर्मा

'सैनिक', 'प्रताप' और 'विशाल भारत' आदि पत्रों की पुरानी और नई फ़ाइलों को खोलिए तो मालूम होगा पं० श्रीराम शर्मा वर्षों से साहित्य-साधना में रत हैं। 'प्रताप' और 'विशाल भारत' का सफल सम्पादन आपने कई-कई साल तक किया है। शर्माजी ने हिंदी को शिकार-संबंधी साहसिक और रोमांचकारी साहित्य प्रदान कर हिंदी-गद्य में ओजपूर्ण भाषा-शैली की प्रतिष्ठा की है। प्रभावोत्पादक घटना-वर्णन के साथ-साथ दार्शनिक विवेचना आपकी लेखन-शैली की विशेषता है। 'शिकार' नामक पुस्तक में आपके शिकार-संबंधी व्यक्तिगत अनुभवों की मनोहर और रोमांचकारी गाथाएँ हैं। 'प्राणों का सौदा' में आपने देशी-विदेशी सच्ची साहसिक घटनाओं को मौलिक कथाओं का रूप देकर रुचिरता प्रदान की है। 'बोलती प्रतिमा' में आपकी विविध-विषयक मार्मिक कहानियाँ संगृहीत हैं। पण्डितजी ने भारतीय संस्कृति के महत्त्व की दृष्टि से 'झाँसी की रानी' और 'हमारी गायें' नामक दो सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। 'शिकार' अपनी लोक-प्रियता के कारण गुजराती और बँगला में भी अनूदित हो चुका है। अपने कठोर राजनैतिक सिद्धांतों का अनुगमन करते हुए भी पण्डितजी हिंदी-गद्य-साहित्य की सेवा तन-मन से कर रहे हैं। आपकी भाषा-शैली का एक उदाहरण आपकी अप्रकाशित 'हमारे पड़ौसी' पुस्तक से दिया जाता है—

"होनहार पौधे के समान सिंह-पछाड़ बढ़ने लगा। जब कालचक्र ने उसके जीवन के तीस धागे अपने चक्र की परिधि में लपेटे, तब सिंहपछाड़ की चढ़ती जवानी का आलोक उसके अंग-प्रत्यंग से फूटने लगा था। एक एक फुट के सफ़ेद दांत उसकी जवानी का विज्ञापन करने बाहर निकल आए थे। उसकी सूँड़ में वह लचीलापन आ गया जो किसी अच्छे फिकैत के पुट्ठों में होता है। रंग उसका गहरा काला होता जाता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसमें अब स्वावलम्ब और आत्म-विश्वास की मात्रा तेज़ी से बढ़ रही थी।"

—— ० ——

पण्डित बदरीनाथ भट्ट

स्वर्गीय भट्टजी लखनऊ विश्वविद्यालय में हिंदी का अाध्यापन करते थे। कुछ काल तक 'बाल-सखा' का सम्पादन भी आपने सँभाला। जिस कारण भट्टजी की हिंदी-साहित्य-मंडल में विशेष प्रतिष्ठा है, वह उनकी 'हास्य प्रियता' है। हास्य-प्रेमी भट्टजी अपने मधुर स्वभाव से मित्र-मंडली में शीघ्र ही आदृत हुए। उनके जीवन का लक्ष्य समाज की वक्र गति पर केवल हँस-हँस कर तालियाँ बजाना ही नहीं था, बल्कि अपने व्यंग्य द्वारा उन्होंने बुराई करने वाली संस्थाओं को लज्जित किया और उन्हें मार्ग दिखाया। भट्टजी ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन, प्रहसन तथा व्यंग्यात्मक निबंधों द्वारा किया। 'कुरु-वन-दहन', 'चंद्रगुप्त', 'चुन्नी की उम्मेदवारी', 'लंबड़ धोंधों', 'मिस अमेरिका', 'राज परिवर्तन', 'तुलसीदास', 'हिंदी' आदि आपके अमूल्य छोटे-बड़े ग्रंथ हैं। भट्टजी छोटे-छोटे वाक्यों में अपने हास्य का बड़ा मधुर रस भर देते थे। एक उदाहरण लीजिये—

'....इसीलिए तो मैंने अपने इलाक़े का प्रबन्ध आदर्श कर दिया है, और इसीलिए तो मैंने बहुत से सुधार कर दिए हैं। अर्थात् किस लिए! और सुधार कैसे! लीजिये पहला सुधार—कोई आदमी मेरे राज्य में जूता न पहन सके, क्योंकि मैं भी जूता पहनता हूँ, वे भी जूता पहनेंगे, तो क्या वे मेरे बराबर हैं? दूसरा सुधार—कोई भी मेरे राज्य में धूप या बरसात में छतरी न लगा सके, क्योंकि हम छतरी लगावें तो फिर सब दुनिया क्यों लगावे? क्या सब दुनिया हमारी बराबरी करेगी? तीसरा—मेरे राज्य में कोई गाड़ी-घोड़ा न रखने पावे, और अगर रक्खे तो घोड़े की पूँछ में बाँधकर घिसटवा दिया जाय। चौथा सुधार—अगर मेरे कुनबे में एक मच्छड़ की भी मौत हो जाय, तो सारा इलाक़ा का इलाक़ा अपना सिर और मूँछे मुड़ावे। सरदारी यों होती है। प्रबन्ध इसको कहते हैं।"

———o———

पण्डित केदारनाथ भट्ट

स्वर्गीय बदरीनाथजी भट्ट के समान ही उनके ज्येष्ठ भ्राता पं० केदारनाथ भट्ट एम० ए० भी अत्यंत हास्य-प्रिय साहित्यिक हैं। 'नोंक-झोंक' नामक हास्य-रसपूर्ण मासिक-पत्र के संस्थापक और सम्पादक आप ही हैं। हास्य-संबंधी अनेक ग्रंथ भी आपने लिखे हैं। आपकी भाषा-शैली बड़ी सरस और व्यंग्यपूर्ण रहती है।

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

दुख के साथ लिखना पड़ता है कि श्री कौशिकजी का हाल ही में असामयिक देहावसान हो गया। स्वर्गीय कौशिकजी उन प्रतिभाशाली लेखकों में थे, जिनकी लेखनी सदा समाज की खरी आलोचना करती रही। 'विजयानंद दुबे' नाम से आपकी व्यंग्यात्मक चिट्ठियाँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। कौशिकजी अँगरेज़ी, बँगला और फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी भाषा में अतुल माधुर्य रहता था। उपन्यास और कहानियाँ तो आप बहुत दिनों से लिखते रहे। आपकी कहानियों में कथोपकथन बड़ा स्वाभाविक और हृदयग्राही मिलता है। 'संघर्ष' आपका अंतिम और उत्कृष्ट उपन्यास है। कौशिकजी की भाषा-शैली का एक हास्य-रसपूर्ण उदाहरण देखिए—

"....आप पूछेंगे कि 'देवताबाज़ी' में क्या मज़ा आता? मैं बहुधा यह सोचा करता हूँ कि लोगों को बटेर-बाज़ी, कबूतरबाज़ी, पतंगबाज़ी, में क्या मज़ा आता है? परन्तु उन्हें आता है! मुझे तो वह सोलह आने हिमाकतबाज़ी दिखाई पड़ती है। कुछ तो मज़ा आता ही होगा, तभी तो वे उसमें समय तथा धन नष्ट करते हैं। उस मज़े को हम और आप नहीं समझ सकते। इसी प्रकार 'देवताबाज़ी' के मज़े का अनुमान हम-आप नहीं लगा सकते। हाँ देवताबाज़ों को किस बात में आनन्द मिलता है, इसको मैंने समझने का प्रयत्न किया है।"

कुछ अन्य हास्य-लेखक—

हास्य-रस की रचनाएँ और भी प्रतिभाशाली लेखकों ने कीं। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने अनेक हास्य-रसपूर्ण निबंध और नाटिकाएँ लिखीं, किंतु उनके चित्रण विद्वत्समाज में लोक-प्रिय न हो सके। मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई हास्य-रस के सफल लेखक हुए। उनकी भाषा में उर्दू की प्रधानता होते हुए भी चित्रण में सजीवता और गद्‌गद् करने वाला हास था। स्वर्गीय पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, मुंशी नवजादिकलाल, श्री शिवपूजन सहाय तथा श्री अन्नपूर्णानंदजी का हास्य-रस-लेखकों में उत्कृष्ट स्थान है।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी

श्रीयुत त्रिपाठीजी हिंदी के पुराने प्रतिष्ठित साहित्यिक हैं। हिंदी के गद्य और पद्य दोनों की सेवा आपने सचाई के साथ की है। त्रिपाठीजी हिंदी के इतिहासकार हैं, समीक्षक हैं, कवि हैं, आख्यानलेखक हैं, नाटककार हैं और सच्चे कलामर्मज्ञ हैं। उर्दू, हिंदी, बँगला आदि भाषाओं के कवियों पर प्रकाश डालते हुए आपने 'कविता-कौमुदी' नामक ग्रंथ कई भागों में प्रकाशित किया है। सुंदर साहित्य-रचयिता के अतिरिक्त त्रिपाठीजी कुशल सम्पादक भी हैं। आपकी भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिये—

"हे ग़रीब श्रेणी के लोगो! मैं आज छह महीने से तुम लोगों के अन्दर हूँ। तुम में से शायद मुझे कोई न जानता होगा; पर मैं तुम सबको जानता हूँ; क्योंकि मैं अब तक तुम लोगों के जानने का ही धंधा करता रहा हूँ। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम लोग एक विचित्र प्रकार की ग़ुलामी में इस प्रकार जकड़े हुए हो, जो प्रतिक्षण तुमको सर्वनाश की ओर ले जा रही है। अन्याय और अत्याचार के भयंकर परिणामों को भोगते रहने पर भी तुम उनके कारणों को देख नहीं पाते हो, क्योंकि वे स्वार्थी धनियों के द्वारा इतनी दूर रक्खे गए हैं कि तुम्हारी साधारण दृष्टि वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती, और उन्होंने पेट

की चिंता में तुमको इतना उलझा रक्खा है कि तुमको दूसरी बात सोच का, सुनने-समझने का समय ही नहीं मिल सकता। साथ ही भाग्य व फेर बताकर उन्होंने तुम्हारे अन्दर की उत्तेजना वाली आग भ बुझा दी है।"

श्री चतुरसेन शास्त्री

श्री शास्त्रीजी संस्कृत-हिन्दी तथा उर्दू के अच्छे ज्ञाता हैं। आप हिंदी गद्य की सेवा बहुत दिनों से कर रहे हैं। सुन्दर आख्यायिकाएँ तथ उपन्यास रचकर आपने अपना स्थायी स्थान हिन्दी में बनाया है। आयुर्वेद सम्बन्धी उपयोगी ग्रंथों का निर्माण भी शास्त्रीजी ने किया है। आपकी कहानियों में ऐतिहासिह तत्त्व बहुत मिलता है। जिस काल का भी चित्र आपने अंकित किया है, उसमें वातावरण और परिस्थितियों का भी वैसा ही समावेश है। कथोपकथन आपके स्वाभाविक और मार्मिक होते हैं। आपकी उर्दू मिश्रित भाषा-शैली का उदाहरण देखिए—

"सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा ठीक है, ख़ूबसूरती के हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे? तो अब ज़ीनतमहल की क़िस्मत खुली? तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा बोली—'मेरी साक़ी कहाँ है?'

'क़ैद में!'

'क्यों?'

'जहाँपनाह का हुक्म।'

'उसका क़सूर क्या था?'

'मैं अर्ज़ नहीं कर सकती।'

'क़ैदख़ाने की चाभी मुझे दे, मैं उसे छुड़ाती हूँ।'

'आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।'

'तब क्या मैं भी क़ैद हूँ।'

हिन्दी गद्य द्वारा विज्ञान सम्बन्धी साहित्य भी भले प्रकार पनपा। विद्वद्वर रामदास गौड़, डा० सत्यप्रकाशजी, डा० गोरखप्रसाद आदि ने 'विज्ञान' पत्र का सम्पादन करते हुए इस क्षेत्र में ठोस और प्रशंसनीय कार्य किया।

सांस्कृतिक साहित्य

हिन्दी-गद्य-साहित्य के निर्माताओं में कुछ ऐसे विद्वान् महोदयों की भी गणना है, जिनका उद्देश्य आरम्भ से ही समाज को सांस्कृतिक चेतना प्रदान करते रहना है। इस क्षेत्र में डा० भगवानदास, स्व० डा० गंगानाथ झा, सम्पादकाचार्य स्वर्गीय पण्डित रुद्रदत्तजी, पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय, पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बाबू सम्पूर्णानन्द, लाला कन्नोमल, पं० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि प्रतिष्ठित लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

ऐतिहासिक साहित्य

भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों की खोजपूर्ण गाथाएँ भी वर्त्तमान काल में लिखी जा चुकी हैं। प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथों का निर्माण करने वाले महानुभावों में महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा, श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, डा० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, डा० वेणीप्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास भी अनेक विद्वानों द्वारा रचे जा चुके हैं। स्वर्गीय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु तथा पण्डित रामनरेश त्रिपाठी आदि विद्वानों के अतिरिक्त डा० सूर्यकान्तजी शास्त्री, डा० रामकुमार वर्मा, बाबू गुलाबराय, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० 'रसालजी' तथा श्री कृष्णशंकर शुक्ल ने भी इस ओर उपयोगी कार्य किया है।

लक्षण-ग्रन्थ

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-सम्बन्धी विशाल ग्रंथों की रचना के साथ-साथ लक्षण-ग्रंथों की भी पर्याप्त रचनाएँ मिलती हैं। सेठ कन्हैयालाल

पोद्दार का 'काव्य कल्पद्रुम', 'हरिऔधजी' का 'रसकलश', 'रसालजी' का 'अलंकार-पीयूष', लाला भगवानदीन की 'अलंकार-मंजूषा', बाबू गुलाबरायजी का 'हिन्दी काव्य में नव रस', अध्यापक रामरत्न का 'अलंकार-प्रबोध' और पं० हरिशङ्कर शर्मा का 'रस-रत्नाकर' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

निबन्ध और आलोचनात्मक ग्रन्थ

हिन्दी-गद्य के आधुनिक काल में निबन्ध-ग्रंथों की भी उत्कृष्ट कृतियाँ उपलब्ध हैं। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, बा० श्यामसुन्दरदास, श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, बाबू गुलाबराय, पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त, पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों की लेखनी से सुन्दर निबन्धों का निर्माण हुआ है। निबन्धों के साथ ही आलोचनात्मक साहित्य का निर्माण भी उक्त लेखकों ने कठोर परिश्रम और अध्ययन से किया है जो प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय है। पण्डित शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० रामविलास शर्मा, श्री रामनाथ 'सुमन', श्री सत्येन्द्रजी, श्री नगेन्द्रजी आदि ने भी उपयोगी आलोचनाएँ लिखी हैं।

नाटक

हिन्दी-गद्य के आधुनिक काल में अनेक नाटककारों ने भी अपनी कला का सुन्दर प्रदर्शन किया है। सर्व प्रथम बाबू जयशंकर 'प्रसाद' का स्थान है। इसके पश्चात् सेठ गोविन्ददास, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, पण्डित उदयशंकर भट्ट, श्री सियारामशरण गुप्त, बाबू जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', श्री 'उग्रजी', डा० रामकुमार वर्मा तथा श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि के नाम आते हैं। सवाक् चित्रपटों के लिए भी अनेक नाटककारों ने नाटकों की रचनाएँ की हैं। इनमें स्वर्गीय पण्डित नारायणप्रसाद 'बेताब', श्री 'सुदर्शनजी', श्री प्रदीपजी तथा श्री नरोत्तम व्यास ने सराहनीय कार्य किया है।

स्वर्गीय पण्डित नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाटकों द्वारा हिंदी प्रचार में बड़ी सफलता प्राप्त हुई। इन्होंने अपने धार्मिक तथा हिंदी-प्रधान नाटकों द्वारा पारसी रंगमञ्च की काया ही पलट दी। पं० राधेश्याम शर्मा ने भी कई अच्छे नाटक लिखकर इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। शर्माजी की लिखी रामायण ने भी साधारण जनता में हिंदी के प्रति अच्छी रुचि उत्पन्न कर दी है।

कहानी और उपन्यास

हिन्दी-गद्य में यदि सबसे अधिक कार्य हुआ है तो वह कहानी और उपन्यासों की रचनाओं की भरमार है। वास्तव में हमारे गद्य की इस शाखा ने तो हजारों-लाखों हिन्दी के पाठक उत्पन्न कर दिये। कुछ प्रतिष्ठित कलाकारों का उल्लेख तो हम आरम्भ में ही कर चुके हैं। यहाँ वर्त्तमान काल के कुछ प्रतिष्ठित कहानी और उपन्यासकारों में हम श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, श्री अज्ञेयजी, श्री सुदर्शनजी, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री गोपालराम 'गहमरी', पण्डित ज्वालादत्त शर्मा, श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री यशपाल, श्री उग्र आदि के नाम उल्लेखनीय समझते हैं।

प्रोफ़ेसर सुधाकरजी ने भी हिंदी की अच्छी सेवा की, आपको मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तक पर 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान' किया गया। पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अनेक दार्शनिक पुस्तकें लिखकर अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आप भी 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्राप्त कर चुके हैं। पण्डित रघुनन्दन शर्मा का 'वैदिक सम्पत्ति' नामक बृहद् ग्रंथ हिंदी के लिए विभूतिस्वरूप है। पण्डित घासीराम एम० ए० ने महर्षि दयानन्द की विस्तृत और प्रामाणिक जीवनी लिखकर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने हिंदी में अनेक गम्भीर ग्रन्थ और लेख लिखे हैं। पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जहाँ उच्चकोटि के पत्रकार की हैसियत से हिंदी की सेवा की है, वहाँ उन्होंने कई ग्रंथ-रत्नों से भी हिंदी-साहित्य-भांडार को सुशोभित किया है। पण्डित देव शर्मा ने वैदिक साहित्य पर कई

सुन्दर ग्रंथ लिखे हैं। डाक्टर सूर्यकान्त शास्त्री ने भी हिंदी में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपका लिखा हिंदी का इतिहास प्रसिद्ध है। भाषा-विज्ञान आपका मुख्य विषय है। पं० शिवशङ्कर काव्यतीर्थ ने वैदिक साहित्य को हिंदी में परिणत करने के लिए कई विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखे।

नागरिक शास्त्र सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें लिखने में श्री भगवानदास केला का प्रयत्न प्रशंसनीय है। केलाजी ने हिन्दी में सुन्दर और उपयोगी साहित्य की रचना की है। श्री रामनारायण यादवेन्दु राजनीति और नागरिक शास्त्र के श्रेष्ठ लेखक हैं। आपकी पुस्तकों से हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा हुई है।

ऊपर की पंक्तियों में हमने हिन्दी गद्य-साहित्य का संक्षेप में कुछ वर्णन किया है। वास्तव में हिन्दी गद्य का इतिहास लिखने बैठें तो एक भारी पोथा तैयार हो सकता है। किन्तु इस पुस्तक में तो साधारण-सी जानकारी के लिए हिंदी गद्य और पद्य के क्रमशः विकास की केवल झलक-मात्र ही प्रस्तुत की जा सकी है। किसी अन्य अवसर पर हिन्दी की इन दोनों धाराओं के प्रत्येक अंग को लेकर विस्तृत वर्णन और विवेचन किया जायगा।

———o———

हिन्दी के पत्र

किसी देश की सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक प्रगतियों को जन साधारण तक पहुँचाने में पत्र-पत्रिकाओं को ही सबसे अधिक श्रेय प्राप्त है। भारतवर्ष के पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास अधिक पुरातन नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल को ही हिन्दी-पत्र-धारा का वास्तविक स्रोत माना जाता है। फिर भी इस थोड़े-से समय में हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं ने सराहनीय उन्नति की है। हिन्दी के आदि पत्र के रूप में सबसे पहले हमारी दृष्टि 'उदन्त मार्त्तण्ड' पर जाती है।

'उदन्त मार्त्तण्ड'–१८२६ ई०

यह मंगलवार को प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक पत्र था। सम्पादकीय दृष्टिकोण के साथ-साथ इस पत्र में गम्भीर लेख, चुटकुले, देशी-विदेशी समाचार, बाज़ार-भाव और सरकारी गजट की सूचनाएँ विशेष रूप से प्रकाशित होती थीं। 'उदन्त मार्त्तण्ड' की भाषा पुराने ढंग की लचर हिंदी थी। नमूना नीचे दिया जाता है:—

'जो कोई प्रशस्त लोग इस ख़बर के काग़ज़ के लेने की इच्छा करें तो अमड़ातला की गली ३७ अंक मार्तण्ड छापाघर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने ही से सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे और बाहर के रहने वाले डाक पर काग़ज़ पाया करेंगे।"

'उदन्त मार्त्तण्ड' के संचालक और सम्पादक कानपुर निवासी श्री युगलकिशोर शुक्ल कलकत्ता दीवानी कचहरी के पेशकार थे। घाटा सहते हुए कोई डेढ़ वर्ष पश्चात् ही इस पत्र का जीवन समाप्त होगया। इसके बाद शुक्लजी ने 'सामदन्त मार्त्तण्ड' नामक पत्र निकाला था। यह भी थोड़े ही दिनों चला।

'बंगदूत'–१८२९ ई०

राजा राममोहनराय 'बंगदूत' के संचालक थे। उनके शिष्य श्री हालदार पत्र का सम्पादन करते थे। 'बंगदूत' बँगला, हिन्दी और उर्दू तीन भाषाओं में प्रकाशित होता था।

'बनारस अख़बार'–१८४५ ई०

इस पत्र का जन्म राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के प्रयत्न से हुआ। राजा साहब उर्दू के विशेष प्रेमी थे, अतः इस पत्र की भाषा भी उर्दू से बहुत प्रभावित होकर चलती थी। 'बनारस अख़बार' का सम्पादन श्री गोविन्द रघुनाथ थत्ते करते थे। इस पत्र के उर्दू-प्रभाव को दूर करने के लिये श्री तारामोहन मित्र के विशेष सहयोग से शुद्ध हिन्दी का एक नया साप्ताहिक पत्र 'सुधाकर' प्रकाशित किया गया, किन्तु शीघ्र ही वह बन्द कर दिया गया।

'बुद्धिप्रकाश'–१८५२ ई०

इस पत्र का संचालन मुंशी सदासुखलाल ने किया था। कुछ वर्ष चल कर 'बुद्धिप्रकाश' समाप्त होगया। इसकी भाषा पिछले सब पत्रों से शुद्ध और परिष्कृत होती थी।

'समाचार-सुधा-वर्षण'–१८५४ ई०

यह पत्र श्री श्यामसुन्दरसेन के सम्पादकत्व में कलकत्ता से प्रकाशित होता था। हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र यही माना जाता है। अपने समय की राजनैतिक उथल-पुथल में भाग लेने के कारण 'सुधा-वर्षण' के सम्पादक को सजा भोगनी पड़ी और पत्र बन्द कर दिया गया। हिन्दी और बँगला भाषा में इस पत्र का मुद्रण होता था।

'प्रजा-हितैषी'–१८६१ ई०

पत्रों में उर्दू-हिन्दी और अँगरेज़ी भाषा के शब्दों का प्रयोग इतना प्रचलित था कि हिन्दी के पत्रों की भाषा को हिन्दी कहना कठिन था। राजा लक्ष्मणसिंह ने इस दोष की ओर ध्यान दिया और हिन्दी भाषा की शुद्ध महत्ता बढ़ाने के हेतु 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र को जन्म दिया।

'लोकमित्र'–१८६३ ई०

यह ईसाइयों का पत्र था। सिकन्दरा (जि० आगरा) का ईसाई-समाज 'लोकमित्र' का प्रकाशन शुद्ध हिन्दी में करता था।

'कवि-वचन-सुधा'–१८६८ ई०

यह मासिक पत्र था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने इस पत्र का संचालन किया। कुछ समय पश्चात् यह पाक्षिक रूप में प्रकाशित होने लगा।

'अलमोड़ा-अख़बार'–१८७१ ई०

यह पत्र अलमोड़ा की जनता का ही पत्र था। इस अख़बार की सामग्री साधारण भाषा में ही प्रकाशित होती थी। श्री सदानन्द सालवाल 'अलमोड़ा अख़बार' के सम्पादक थे।

'हिन्दी-दीप्ति-प्रकाश'–१८७२ ई०

यह कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र था। इस पत्र का कुल कार्य इसके संस्थापक श्री कार्तिकप्रसाद खत्री को ही करना पड़ता था।

'विहार-बन्धु'–१८७२ ई०

यह पत्र बाँकीपुर से प्रकाशित होता था। विहार का सर्वप्रथम साप्ताहिक पत्र 'विहार-बन्धु' ही निकला।

'सदादर्श'–१८७४ ई०

यह पत्र दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। लाला श्रीनिवासदास इस पत्र के संचालक थे। दो वर्ष पश्चात् 'सदादर्श' और 'कवि-वचन-सुधा' सम्मिलित होगये। इसी प्रकार कुछ समय बाद काशी का 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' बदल कर 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नाम से प्रकाशित होने लगा। अंत में 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के बजाय 'मोहन-चन्द्रिका' नाम से ही उक्त मैगज़ीन का प्रकाशन होता रहा। इसी काल में श्री बालेश्वरप्रसाद ने काशी से 'काशी-पत्रिका' का प्रकाशन किया।

'भारत-बन्धु'–१८७६ ई०

अलीगढ़ के प्रसिद्ध साहित्यिक श्री तोताराम वकील के प्रबन्ध से 'भारत-बन्धु' का संचालन हुआ। यह अलीगढ़ का साप्ताहिक पत्र था।

'मित्र-विलास'–१८७६ ई०

पंजाब का यह पत्र वहाँ हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से सर्वप्रथम पत्र माना जाता है। हज़ारों रुपयों का घाटा सहते हुए भी 'मित्र-विलास' वर्षों हिन्दी का प्रचार करता रहा।

'आर्यदर्पण' और 'हिन्दी-प्रदीप'–१८७७ ई०

'आर्यदर्पण' आर्यसमाज शाहजहाँपुर की ओर से प्रकाशित हुआ। मुन्शी बख़्तावरसिंह के प्रयत्न से इस पत्र ने आर्य-सिद्धान्तों का अच्छा प्रचार किया। 'हिन्दी-प्रदीप' का प्रकाशन प्रयाग से होता था। विद्वद्वर पं० बालकृष्ण भट्ट इसके सम्पादक थे।

'भारतमित्र'–१८७७ ई०

जिन दिनों इस पत्र का प्रकाशन कलकत्ता से हुआ था, वहाँ की जनता हिन्दी से पूर्णतः अनभिज्ञ थी। पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र के सुप्रबन्ध से 'भारतमित्र' अपने समय के सब साप्ताहिक पत्रों में अग्रगण्य रहता था।

'सारसुधानिधि'–१८७८ ई०

'भारतमित्र' से सम्बन्ध त्याग कर पं० दुर्गाप्रसादजी ने 'सार-सुधा-निधि' का प्रकाशन आरम्भ किया। इस काल के साहित्य-सेवियों के लिए यह एक प्रसिद्ध पत्र था। भाषा, लेख, छपाई और कागज़ की दृष्टि से सब पत्रों में इसका अद्वितीय स्थान था।

'उचित वक्ता'–१८७८ ई०

श्री दुर्गाप्रसादजी का यह तीसरा पत्र था। 'उचित वक्ता' में अधिकतर उत्कृष्ट लेखकों के लेख ही निकला करते थे। एक वार बन्द होकर सन् १८६४ ई० में इसका पुनः प्रकाशन हुआ। एक पैसा इस पत्र का मूल्य था। लगभग दो हजार ग्राहकों के हाथ में 'उचित वक्ता' पहुँचता था।

'सज्जन-कीर्ति-सुधाकर'–१८७९ ई०

यह साप्ताहिक-पत्र था। उदयपुर राज्य की ओर से इसका प्रकाशन होता था।

'आनन्द-कादम्बिनी'–१८८१ ई०

पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने मिर्जापुर से इस पत्र को प्रकाशित किया। इसी वर्ष 'क्षत्रिय-पत्रिका' का जन्म बाँकीपुर से हुआ।

'वैष्णव-पत्रिका'–१८८२ ई०

यह पत्र श्री अम्बिकादत्त व्यास के प्रयत्न द्वारा काशी से प्रकाशित हुआ। कुछ समय बाद इसका नाम बदल कर 'पीयूष-प्रवाह' रख दिया गया। इसी काल में पंजाब से 'ज्ञान-प्रदीपिनी पत्रिका' का जन्म हुआ, जो ब्रह्म-समाज के सिद्धांतों का प्रचार करती थी। १८८३ ई० में कलकत्ता से 'धर्म-दिवाकर' का उदय हुआ जो सनातन धर्म का प्रचारक था।

'ब्राह्मण'–१८८३ ई०

सुविख्यात लेखक पं० प्रतापनारायण मिश्र ने इस पत्र को जन्म दिया था। उत्कृष्ट लेख-सामग्री प्रकाशित करने के कारण मिश्रजी के पत्र ने विद्वानों में खूब आदर पाया। अर्थाभाव के कारण 'ब्राह्मण' अधिक समय तक जीवित न रह सका। पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा भी इस में सहयोग देते थे।

'हिन्दुस्थान'–१८८५ ई०

कालाकाँकर-नरेश राजा रामपालसिंह ने सन् १८८३ ई० में इँगलैण्ड से मासिक 'हिन्दुस्थान' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अँगरेजी, उर्दू और हिन्दी तीनों भाषाओं में 'हिन्दुस्थान' मुद्रित होता था। कुछ समय पश्चात् उसका साप्ताहिक संस्करण भी प्रकाशित होने लगा। किन्तु जब राजासाहब भारत वापस आगए तो 'हिन्दुस्थान' केवल हिन्दी में (दैनिक रूप में) काला-काँकर से प्रकाशित होने लगा।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने भी कुछ समय तक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन किया था। सहायक सम्पादक के नाते पं० प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्री अमृतलाल चक्रवर्त्ती, श्री गोपालराम गहमरी आदि ने

भी 'हिन्दुस्थान' की सेवा की है। 'हिन्दुस्थान' उस युग का एकमात्र राष्ट्रिय पत्र था। हिन्दी का पक्ष-समर्थन और सरकारी नीति की कटु आलोचना करना इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था। राजासाहब के देहान्त के साथ इस-पत्र का भी अन्त होगया। पीछे उनके उत्तराधिकारी ने 'सम्राट्' नामक साप्ताहिक पत्र श्री बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में निकाला।

सन् १८८५ में कानपुर से 'भारतोदय' नामक एक और दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ, किन्तु उसका जीवन एक वर्ष बाद ही समाप्त होगया।

'कवि-व-चित्रकार'—सन् १८८५

पण्डित कुन्दनलालजी के सम्पादकत्व में यह मासिक पत्र लीथो में छप कर फ़तहगढ़ से प्रकाशित होता था। इस में उस समय के सभी विद्वान् लेख और कविताएँ लिखते थे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, पं० श्रीधर पाठक, पं० सुधाकर द्विवेदी आदि इसके मुख्य लेखक थे। इस में चित्रकला सम्बन्धी बातें भी दी जाती थीं।

सन् १८८५ ई० से १८६० ई० तक जितनी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं उनमें कलकत्ते का 'आर्यावर्त्त', अजमेर का 'राजस्थान-समाचार', मुरादाबाद का 'आर्यमित्र', और काशी के 'मित्र', और 'सरस्वती-विलास' उल्लेखनीय हैं।

'हिन्दी-बंगवासी'—१८६० ई०

स्वामी कृष्णचन्द्र वन्द्योपाध्याय ने अपने 'बँगला-बंगवासी' की भाँति 'हिंदी-बंगवासी' का भी प्रकाशन किया। यह पत्र अपनी कथा-कहानियों की सचित्रता और आकार की विशालता को लेकर बड़ा लोकप्रिय हुआ।

'नागरी-नीरद'—१८६३ ई०

चौधरी बदरीनारायणजी 'प्रेमघन' ने इस पत्र का प्रकाशन मिर्ज़ापुर से किया था। भाषा की दृष्टि से इस की अच्छी ख्याति थी।

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार'—१८६६ ई०

इस पत्र का प्रकाशन बम्बई से हुआ। इससे पूर्व बम्बई में अनेक पत्र जन्म ले-लेकर समाप्त हो गए, किन्तु उक्त पत्र आज तक जीवित है। इसके प्रथम सम्पादक बा० रामदास थे।

मासिक पत्र-पत्रिकाएँ

'सरस्वती'–बीसवीं सदी का आरम्भ

इण्डियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' हिंदी की वर्त्तमान मासिक पत्रिकाओं में सबसे प्राचीन है। श्रीनागरीप्रचारणी सभा (काशी) ने 'सरस्वती' की व्यवस्था में सहयोग देकर उसे हिंदी-प्रचार का एक महत्त्वपूर्ण साधन बनाया। प्रारम्भ में इसका सम्पादन सम्पादक-समिति द्वारा हुआ, परन्तु फिर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' ने ख़ूब उन्नति की। नई भाषा-शैली का निर्माण तथा नए-नए प्रतिभाशाली लेखकों का हिंदीजगत् से परिचय 'सरस्वती' के प्रकाशन और विद्वत्तापूर्ण सम्पादन द्वारा ही सम्भव हो सका।

'इन्दु'

इस मासिक पत्र का प्रकाशन भी काशी से हुआ। 'प्रसाद' आदि प्रतिभाशाली लेखकों ने 'इन्दु' में अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराईं थीं। 'इन्दु' के ही प्रकाशन-काल में प्रयाग से श्री कृष्णकान्त मालवीय के सम्पादकत्व में 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका का जन्म हुआ। बाबू सम्पूर्णानन्द ने भी काशी से 'मर्यादा' का कुछ समय तक सम्पादन किया था।

'नृसिंह'

हिंदी के मासिक पत्रों में राजनैतिक लक्ष्य लेकर चलने वाला यह प्रथम पत्र था। पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे और श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के उद्योग से इसका प्रकाशन हुआ।

'विशालभारत'

सम्पादकाचार्य श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय के उद्योग से यह पत्र कलकत्ता से श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। चतुर्वेदीजी कई वर्षों तक इसके सम्पादक रहे। फिर पं० श्रीराम शर्मा ने इसका सम्पादन किया और अब श्री मोहनसिंह सेंगर इसके सम्पादक हैं। हिन्दी-संसार में विशालभारत की बड़ी प्रतिष्ठा और धाक है।

'कल्याण'

गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित होने वाला 'कल्याण' धार्मिक जगत् में बहुत लोक प्रिय हुआ है। इसकी ग्राहक संख्या चालीस हज़ार के लगभग बताई जाती है।

'हंस'

औपन्यासिक सम्राट् श्री प्रेमचन्दजी की सम्पादकता में 'हंस' बड़ी शान से निकला। प्रेमचन्दजी ने 'जागरण' नामक साप्ताहिक पत्र का भी सम्पादन किया। श्री प्रवासीलाल वर्मा सहकारी सम्पादक थे।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् हिंदी में अनेक उच्चकोटि की मासिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। ये पत्र 'सरस्वती' की श्रेणी में आते रहे और सुन्दर साहित्य के प्रचार द्वारा हिंदी की अविरल सेवा करते रहे। इनमें कुछ पत्र आज तक उसी सजधज से निकल रहे हैं। सन् १९२१ ई० में लखनऊ से 'माधुरी', प्रयाग से 'चाँद', लखनऊ से 'सुधा' और कुछ समय पश्चात् ही 'विश्ववाणी', 'वीणा', 'वाणी', 'विश्वमित्र', 'मधुकर' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओंकी धूम मच गई। आजकल प्रयाग से 'कर्मयोगी' नामक मासिक पत्र सुन्दर रूप से निकलने लगा है। विज्ञान की दिशा में इलाहाबाद के 'विज्ञान' मासिक पत्र ने भी बहुत काम किया है। आगरे से 'स्वदेश-बान्धव' नामक पाक्षिक पत्र कुंवर हनुमन्तसिंहजी रघुवंशी के सम्पादकत्व में निकलता था, जिसमें पण्डित सत्यनारायण कविरत्न विशेष रूप से लिखा करते थे। विहार के 'हिमालय' और 'पारिजात' भी प्रतिष्ठित पत्र हैं। कहानी सम्बन्धी 'माया', 'मनोहर कहानियाँ', 'रसीली कहानियाँ' आदि पत्रिकाएँ निकलती हैं।

पं० कृष्णविहारी मिश्र के सम्पादकत्व में 'समालोचक' बड़ी सजधज से निकला। श्री गुलाबराय जी एम० ए० और श्री महेन्द्रजी द्वारा सम्पादित 'साहित्य-सन्देश' मासिकपत्र ने भी समालोचना-क्षेत्र में अपना मुख्य स्थान बना लिया है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक-'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' और शान्ति-निकेतन से प्रकाशित होने

वाली 'विश्व-भारती' ठोस और गम्भीर साहित्य देने के लिए प्रसिद्ध हैं। व्रज साहित्य-मंडल से व्रजभाषा का प्रचार करने वाली 'व्रज-भारती' भी अच्छी निकल रही है। हिन्दुस्तानी एकेडमी की त्रैमासिक 'हिन्दुस्तानी' भी श्रेष्ठ है।

---o---

साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ

'अभ्युदय'–१९०७

बीसवीं सदी के साप्ताहिक पत्रों में 'अभ्युदय' का उचित स्थान रहा। पण्डित मदनमोहन मालवीय के कर-कमलों द्वारा इस पत्र की नींव रक्खी गई। माननीय पुरुषोत्तमदास टण्डन और श्री कृष्णकान्त मालवीय ने कुछ समय तक 'अभ्युदय' का सम्पादन योग्यतापूर्वक किया।

'हिन्दी-केसरी'

'हिंदी बंगवासी' की भाँति मराठी पत्र 'केसरी' के प्रतिबिम्ब स्वरूप 'हिंदी-केसरी' का जन्म नागपुर से हुआ। श्री माधवराव सप्रे और पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ने इसका सम्पादन और प्रकाशन कार्य आरम्भ किया था। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद यह पत्र बंद कर दिया गया।

'कर्मयोगी'–१९०९ ई०

यह पत्र प्रारम्भ में पाक्षिक था किन्तु अपनी लोकप्रियता के कारण साप्ताहिक बना दिया गया। पण्डित सुन्दरलाल ने इसका संचालन किया था। अपनी उग्र नीति के कारण 'कर्मयोगी' बहुत जल्दी प्रभावशाली पत्र बन गया, किन्तु सरकारी दबाव के कारण इसको बंद कर देना पड़ा।

'प्रताप'–१९११ ई०

हिंदी के साप्ताहिक पत्रों में कानपुर से प्रकाशित होने वाले 'प्रताप' ने जनता की आवाज़ का जो निर्भयता पूर्वक प्रतिनिधित्व किया वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने राष्ट्रिय-पत्र 'प्रताप' के उच्च आदर्श और स्वाधीनता के सिद्धांतों की जीवन पर्यन्त रक्षा की।

'सैनिक'

देश के सुप्रसिद्ध नेता पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के उद्योग से इसका साप्ताहिक रूप में जन्म हुआ। थोड़े दिनों बाद यह दैनिक होगया। यह राष्ट्रिय पत्र बड़ा निर्भीक और नौकरशाही की खरी आलोचना करने वाला है। अपनी निर्भय नीति के कारण कई वार इसे अपनी आहुति देनी पड़ी है। प्रारम्भ में पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ही सम्पादक थे, इसके पश्चात् पं० जीवाराम पालीवाल ने सम्पादन कार्य सँभाला।

पाटलिपुत्र

यह साप्ताहिक पत्र पटना से प्रकाशित होता था। इसके सम्पादन में सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री काशीप्रसाद जायसवाल का बड़ा हाथ था। सम्पादन बड़ी सुन्दरता और सुयोग्यता से होता था।

उपर्युक्त पत्रों के साथ-साथ अन्य राष्ट्र-सेवी पत्रों में 'भविष्य', 'कर्मवीर', स्वराज्य', 'स्वदेश', 'नवशक्ति', 'हिंदी-नवजीवन', 'हरिजन-सेवक' आदि महत्त्वपूर्ण पत्र हैं। आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त का मुख-पत्र 'आर्यमित्र' आर्यसमाज का बहुत पुराना और प्रभावशाली पत्र है।

ज्वालापुर महाविद्यालय से 'भारतोदय' नामक मासिक पत्र १९०७ ई० में साहित्याचार्य श्री पण्डित पद्मसिंह शर्मा के सम्पादकत्व में बड़ी शान से निकला था। पीछे यह पत्र साप्ताहिक हुआ और फिर बंद हो गया।

अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के सम्पादकत्व में साप्ताहिक पत्र 'सद्धर्म-प्रचारक' गुरुकुल काँगड़ी से बड़ी सफलतापूर्वक निकला। यह पत्र पहले लाहौर से उर्दू में निकलता था, परन्तु स्वामीजी ने इसे हिंदी-प्रचार की दृष्टि से हिंदी में कर दिया, यद्यपि ऐसा करने में उन्हें बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

कलकत्ते से 'प्रेम-पीयूष' नामक एक ऐसा साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें सारे समाचार और सम्पादकीय लेख पद्य में होते थे। इसके सम्पादन में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का बहुत हाथ था।

आजकल के साप्ताहिक पत्रों में 'आज', 'योगी', 'स्वतंत्र', 'विश्वमित्र', 'कर्मवीर', लोकमान्य', 'अर्जुन', 'नवयुग', 'राम-राज्य' आदि प्रमुख हैं।

दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ

'भारतमित्र'–१६११ ई०

बीसवीं शताब्दी के दैनिक पत्रों में सर्वप्रथम दैनिक कहाने वाला 'भारतमित्र' ही माना जाता है। कई वार बंद हो-होकर अन्त में २२ वर्ष तक यह प्रकाशित होता रहा। सन् १६१४ ई० में कलकत्ते से दैनिक 'कलकत्ता-समाचार' निकला, किंतु कुछ समय बाद ही बंद हो गया।

'विश्वमित्र'–१६१७ ई०

यह दैनिक पत्र बाबू मूलचंद अग्रवाल के उद्योग द्वारा सर्वप्रथम कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। इस पत्र के मासिक और साप्ताहिक संस्करणों के साथ ही दैनिक के दो और संस्करण बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित होते हैं। कलकत्ता से 'स्वतन्त्र' नामक अन्य दैनिक पत्र कुछ समय तक पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने निकाला, किंतु बाद में बंद कर दिया गया।

'आज'–१६२० ई०

काशी के सुप्रसिद्ध देशभक्त स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त ने श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन काँग्रेस के एक विशेष अधिवेशन पर दैनिक 'आज' को जन्म दिया। दैनिक 'आज' के प्रकाशन के साथ ही कानपुर से 'वर्त्तमान' और 'प्रताप'; दिल्ली से 'अर्जुन' और कलकत्ते से 'लोकमान्य' दैनिक रूप में प्रकाशित हुए।

सन् १६३० की राजनैतिक उथल-पुथल के अन्तर्गत प्रयाग से 'भविष्य' लाहौर से 'हिंदी-मिलाप' जबलपुर से 'लोकमत' और दिल्ली से 'हिन्दुस्तान' और 'नवयुग' प्रकाशित हुए। प्रयाग का साप्ताहिक 'भारत' भी कुछ समय बाद दैनिक हो गया।

वर्त्तमान काल में प्रांतीय शासन-सत्ता अधिकतर कांग्रेस के हाथ में आ जाने के कारण 'दैनिक' पत्र-पत्रिकाओं की धूम-सी मच गई है। इनमें नागपुर का 'लोकमत', लखनऊ का 'अधिकार' बम्बई का 'हिन्दुस्थान' काशी का 'संसार', कलकत्ते के 'विश्वबन्धु' और 'जागृति', पटना के 'आर्यावर्त्त' और 'राष्ट्रवाणी' झाँसी का 'जागरण' और लाहौर का 'विश्वबन्धु', आगरे के 'उजाला' और 'सन्देश' आदि उल्लेखनीय पत्र हैं।

कविता-सम्बन्धी पत्र

हिन्दी में समस्या-पूर्त्ति सम्बन्धी पत्र भी कई निकले। इन में 'काव्य-सुधाधर', 'रसिकमित्र', 'कवीन्द्र-वाटिका', 'कवि-व-चित्रकार', 'प्रियंवदा', 'सुकवि' आदि मुख्य हैं। सुप्रसिद्ध कवि 'सनेही'जी की सम्पादकता में कानपुर से' सुकवि' अब भी बड़ी सज-धज से निकल रहा है।

हास्य-सम्बन्धी पत्र

इस दिशा में कलकत्तेसे निकलनेवाले 'हिन्दू पञ्च' और 'मतवाला' की बड़ी धूम रही। 'हिन्दू पञ्च' का सम्पादन पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने बड़ी योग्यता से किया और 'मतवाला' में मुंशी नवजादिकलालजी बड़ा सुन्दर और शिष्ट हास्य लिखते थे। 'मदारी' भी अच्छा निकला। 'नोंक-झोंक' भी पं० केदार-नाथ भट्ट के सम्पादकत्व में चमक उठा। श्री प्रवासीलाल वर्मा का 'हँसोड़' भी खूब रहा। श्री सहगलजी का 'गुलदस्ता' भी अपने ढंग का अनोखा था। कलकत्ते के 'औघड़' की भी अच्छी तारीफ़ रही।

बालकों के पत्र

स्वर्गीय पं० बदरीनाथ भट्ट के सम्पादकत्व में इण्डियन प्रेस से 'बाल-सखा' बड़ी सजधज से निकला जो अब तक निकल रहा है। श्री बेनीपुरीजी के

'बालक' ने भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। श्री सुदर्शनाचार्यजी का 'शिशु' अपनी झलक दिखाकर नष्ट हो गया। आगरे के 'झुनझुना' और 'नौ निहाल' भी बच्चों के लिए उपयोगी रहे। 'बानर' और 'बाल-विनोद' भी इस दिशा में उल्लेखनीय पत्र हैं। कुँवर सुरेशसिंहजी का 'कुमार' और पं० रामजीलाल शर्मा का 'विद्यार्थी' नवयुवकों के काम की चीज़ हैं।

स्त्रीउपयोगी पत्र

'भारत भगिनी', 'गृहिणी', 'गृह-लक्ष्मी', 'स्त्री-दर्पण', 'भारत-महिला' 'मनोरमा' आदि पत्रिकाओं ने स्त्री-समाज की प्रशंसनीय सेवा की।

आयुर्वेद सम्बन्धी पत्र

'वैद्य', 'धन्वन्तरि', 'आरोग्य दर्पण', 'अनुभूत योग-माला', 'सुधा-निधि', आदि पत्रिकाओं ने स्वास्थ्य-सम्बन्धी सामग्री जुटाने में प्रशंसनीय कार्य किया।

आज के भारत में इतनी राजनैतिक और सामाजिक क्रांतियाँ हो रही हैं, कि उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए दिनों दिन पत्रों की संख्या बढ़ती जा रही है। निकट भविष्य में जब भारत स्वतंत्र हो जायगा तो पत्रों की कठिनाइयाँ भी दूर हो जायँगी।

हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ केवल भारत में ही नहीं अपितु जहाँ भी विदेशी भूमि पर भारतीयों का प्रवास है वहाँ उनका कोई न कोई पत्र अवश्य प्रकाशित होता है।

अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों में पत्रों द्वारा जागृति उत्पन्न करने के लिए जिन महान् व्यक्तियों ने अपनी सेवाएँ समर्पित की हैं उनमें महात्मा गांधी और स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के नाम प्रमुख हैं। स्वामीजी ने 'हिन्दी' और 'धर्मवीर' के प्रकाशन द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार और आर्यसमाज के

सिद्धांतों का प्रसार करने में अपने जीवन का बहुत-सा समय अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों में ही व्यतीत किया। महात्मा गांधी के 'नवजीवन' और 'हरिजन-सेवक' की बड़ी धूम रही। महात्माजी की इस दिशा की सेवाएँ भी स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी।

जिन पत्रकारों ने हिन्दी-पत्रकार-कला के विकास के लिए प्रशंसनीय प्रयत्न किया उनमें से कुछ के नाम नीचे दिये जाते हैं—

सर्वश्री दुर्गाप्रसाद मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, रुद्रदत्त शर्मा, गोपालराम गहमरी, अमृतलाल चक्रवर्त्ती, लज्जाराम महता, अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शङ्कर विद्यार्थी, सुन्दरलाल, पुरुषोत्तदास टण्डन, रमाशंकर अवस्थी, इन्द्र विद्यावाचस्पति, मूलचन्द अग्रवाल, रामशङ्कर त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, कृष्णकान्त मालवीय, नन्दकुमार देव शर्मा, बालकृष्ण शर्मा, शिव पूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, देवव्रत शास्त्री, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, दुलारेलाल भार्गव, रूपनारायण पाण्डेय, हरि भाऊ उपाध्याय, भवानी दयाल संन्यासी, लक्ष्मीधर वाजपेयी, माधवराव सप्रे, झाबरमल शर्मा, काशीप्रसाद जायसवाल, कुँ० गणेशसिंह, बाबूराम मिश्र, मातासेवक पाठक, देवीदत्त शुक्ल, ज्योतिःप्रसाद निर्मल, श्रीनाथसिंह, सत्यदेव विद्यालङ्कार, रामगोपाल विद्यालङ्कार, मुकुट विहारी वर्मा इत्यादि।

———०———